आचार्य वसुनंदि सैद्धान्तिकदेव विरचितः

आप्तमीमांसावृत्तिः

एवं

पं. जयचन्द जी छाबड़ा कृत

आप्तमीमांसा भाषा वचनिका

सम्पादक
ब्र. संदीप 'सरल'
संस्थापक
अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान
बीना, (सागर) म.प्र. ४७०११३
☎ (०७५८०) २२२२७६

अनुवादिका
डॉ. सूरजमुखी जैन
३५, अलका इमामबाड़ा
मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
☎ (०१३१) ४५०६२६

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना, (सागर) म.प्र. 470113

अनेकान्त भवनग्रन्थावली पुष्प क्र. १०

ग्रन्थ - आप्तमीमांसावृत्तिः

प्रणेता - आचार्य वसुनंदि सैद्धान्तिक देव

भाषा वचनिका - आप्तमीमांसा भाषा वचनिका

वचनिकाकार - पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा

अनुवादिका - डॉ. सूरजमुखी जैन

सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल'

संस्करण - प्रथम, प्रतियाँ - 1000

प्रकाशन वर्ष - २००३

अक्षर संयोजन - अनेकान्त कम्प्युटर

प्रकाशक - अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान,
बीना, (सागर) म.प्र. 470113

मुद्रक - सोलार आफसेट, जबलपुर
फोन - (0761) 2651995

मूल्य - संस्थान की यथायोग्य सदस्यता

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

प्रस्तुत कृति आप्तमीमांसावृत्ति आचार्य वसुनंदि सैद्धान्तिक देव द्वारा सृजित जैनदर्शनके तार्किक शिरोमणि आचार्य समन्तभद्र स्वामी की अद्भुत रचना आप्तमीमांसा अपरनाम देवागम स्तोत्र पर लिखी गई लघु परिमाण की सरल व्याख्या है।

आप्तमीमांसावृत्ति हिन्दी अनुवाद के साथ सर्वप्रथम पाठकोंके समक्ष आ रही है। आप्तमीमांसावृत्ति का प्रथम प्रकाशन लगभग सौ वर्ष पूर्व १९०५ में सनातन जैन ग्रन्थमाला कलकत्ता के माध्यमसे प्रथम गुच्छकके रूपमें प्रकाशित चौदह लघु रचनाओंके साथ विद्वत् द्वय पं. पन्नालाल एवं पं. बंशीधरजी ने किया था। किन्तु इस समय यह कृति पूर्णरूपेण अनुपलब्ध हो चुकी थी।

अनेकान्त दर्शन को सर्वोदयी तीर्थ की उद्घोषणा करने वाले जैन न्यायके प्रतिष्ठापक आचार्य समन्तभद्र ही हैं। उत्तरवर्ती समस्त आचार्यों ने बड़े ही गौरव एवं सम्मानके साथ न सिर्फ आपका गुणस्मरण किया है अपितु आप द्वारा स्थापित जैन न्यायके उस भव्य प्रासाद को संरक्षित किया है, जिसके माध्यमसे जैन न्याय विकास को प्राप्त हुआ है। आचार्य समन्तभद्रस्वामी की गौरवपूर्ण रचना आप्तमीमांसा जैन दर्शनमें अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आप्तमीमांसा अपरनाम देवागम स्तोत्रमें दस परिच्छेद एवं ११४ कारिकाएं हैं। आप्त अर्थात् ईश्वर, मीमांसा अर्थात् परीक्षा। आप्त की विशेष रूप से परीक्षा करते हुए दस परिच्छेदोंके अन्तर्गत दस प्रकार के मिथ्याएकांतों का निरसन करते हुए अनेकान्त, स्याद्वाद रूपमें वस्तुतत्त्व की व्यवस्था करने वाली यह बेजोड़ रचना है। आप्तमीमांसा ग्रन्थको आधार बनाकर भट्टाकलंकदेव ने आठ सौ श्लोक प्रमाण अष्टशती की रचना की। और आठ हजार श्लोक परिमाण अष्टसहस्री ग्रन्थ की रचना का गौरव आचार्य विद्यानंद स्वामी को प्राप्त हुआ है।

आप्तमीमांसावृत्ति का समापन करते हुए आचार्य वसुनंदि जी ने कितने गौरव एवं सम्मान के साथ आचार्य समन्तभद्र स्वामी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है जो कि द्रष्टव्य है। यथा –

सम्पूर्ण विश्वमें जयध्वजा फहराने वाले, प्रमाण तथा नय दृष्टियों से

समलंकृत, स्याद्वादमूर्ति समन्तभद्राचार्य की देवागमनाम की कृति पर संक्षिप्त विवरणशास्त्र विस्मरण स्वभाव वाले मुझ जड़बुद्धि वसुनंदि ने आत्महितार्थ बनाया है।

जैनन्यायके मूर्धन्य विद्वान् डॉ. दरबारीलाल कोठिया, बीना के समीप मुझे न्याय ग्रन्थोंके अध्ययन करने के साथ–साथ जैन न्याय का महान ग्रन्थ अष्टसहस्री के सम्पादन करनेमें सहभागी बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। कोठियाजी सदैव प्रेरणा दिया करते थे कि तुम्हें जैनन्यायके विलुप्त, अनुपलब्ध ग्रन्थोंके अनुसंधान, सम्पादन, प्रकाशन, अध्ययन–अध्यापन में ही अपना जीवन समर्पित करना है। मैंने अनुभव भी किया कि इस दिशा में नये विद्वान् आगे बढ़ना नहीं चाहते और पुराने विद्वान् प्रायः सभी अशक्य हो चुके हैं। अतः परम पूज्य गुरुवर श्री १०८ सरलसागर जी महाराज के आशीर्वाद स्वरूप एवं कोठियाजी की भावनानुसार इस दिशामें उपक्रम किया है।

न्यायाचार्य डॉ. दरबारीलाल कोठिया की द्वितीय पुण्य तिथि (वर्ष २००२) में आचार्य वादिराजसूरि विरचित प्रमाणनिर्णय ग्रन्थका प्रकाशन अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना ने किया था। तृतीय पुण्यतिथि (३ जनवरी२००३) पर आप्तमीमांसावृत्ति हिन्दी विवेचना के साथ प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

प्रस्तुत संस्करण के साथ कुछ विशेषताएं निम्न प्रकार दृष्टव्य हैं –

१. आप्तमीमांसा वृत्ति हिन्दी विवेचना के साथ प्रथम बार प्रकाश में आ रही है। साथ ही सारभूत प्रस्तावना भी दी गई है।
२. परिशिष्ट १ के अन्तर्गत पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा कृत भाषा वचनिका का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। यह भाषा वचनिका आज से ७५ वर्ष पूर्व अनंतकीर्ति ग्रन्थमाला, मुम्बई से प्रकाशित हुई थी।
३. परिशिष्ट २ के अन्तर्गत आप्तमीमांसा की ११४ कारिकाओंका अन्वयार्थ एवं कारिकार्थ भी दे दिया जिससे सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

"सामग्री जनिका कार्यस्य नैकं कारणं" न्याय की इस सूक्ति के अनुसार सामग्री कार्य की जनक होती है एक कारण नहीं। आप्तमीमांसावृत्ति

के प्रकाशमें आने में जिन–जिन महानुभावों ने अपना प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग प्रदान किया है उनका उल्लेख करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम पुज्य गुरुवर श्री १०८ सरलसागर जी महाराजके आशीर्वाद स्वरूप इस दिशामें कदम बढ़ाया अतः मुनि श्री के प्रति श्रद्धा से नम्रीभूत होकर नमोस्तु करता हूँ। सनातन जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित आप्तमीमांसावृत्ति की मुद्रित प्रति अनेक पुस्तकालयों में खोज करने पर भी प्राप्त न हो सकी, अंततः कोरेगाँव (महा.) निवासी जिनवाणी रसिक प्राचार्य रतिकान्त शहा ने उक्त प्रति भेजकर अनुग्रहीत किया। एतदर्थ आप भी धन्यवादके पात्र हैं। आप्तमीमांसावृत्तिके हिन्दी अनुवाद का कार्य डॉ. सूरजमुखी जैन मुजफ्फरनगर ने किया है। आप न्याय विदुषी, सरल स्वभावी, जिनवाणी सेवा के लिए सदैव समर्पित रहती हैं। आपने यह अनुवाद का कार्य अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करते हुए भावार्थ भी जोड़ दिए हैं। अतः आप भी धन्यवाद की पात्र हैं।

इस संस्करण को तैयार करने में अनेक आचार्यों एवं विद्वत्गणोंकी कृतियोंका सहारा लिया गया है अतः उन सभी रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पुस्तक के शब्द संयोजन में भाई अनेकान्त जैन ने पूर्ण लगन एवं निष्ठा से कार्य किया है साथ ही अन्य सहयोगियों ने भी इस कार्य में हाथ बटाया है, उन सभी के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ। प्रूफ रीडिंग सम्बन्धी त्रुटियाँ रह जाना स्वभाविक है अतः मनीषीगण त्रुटियोंका परिमार्जन करते हुए हमें भी सूचित करें ताकि अगले संस्करणोंमें परिमार्जन किया जा सके। पाठकों से अपेक्षा रखते हैं कि इस कृति का पूर्ण मनोयोग से समादर किया जावेगा।

इत्यलं

3 जनवरी 2003 **ब्र. संदीप 'सरल'**

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान,
बीना

प्रस्तावना

स्वामी समन्तभद्र

आप्तमीमांसा के रचियता स्वामी समन्तभद्र जैन वाङ्मय में प्रथम संस्कृत कवि और प्रथम स्तुतिकार हैं। स्तोत्र काव्य का सूत्रपात स्वामी समन्तभद्र से ही होता है। ये कवि होने के साथ–साथ महान् दार्शनिक और गम्भीर चिंतक भी हैं। इन्होंने अपने समय के समस्त दर्शनशास्त्रों का गहन अध्ययन कर उनका तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था। यही कारण है कि वे समस्त दर्शनों और वादों का युक्तिपूर्वक परीक्षण करके स्याद्वाद न्याय के अनुसार उनका समन्वय करते हुए वस्तु के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने में सफल हुए हैं। आचार्य समन्तभद्र परीक्षाप्रधानी थे और दूसरों को भी परीक्षाप्रधानी होने का उपदेश देते थे। वे कहते थे कि किसी भी तत्त्व या सिद्धांत की परीक्षा किए बिना उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके ही उसे स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए। उन्होंने भगवान महावीर को युक्तिपूर्वक परीक्षा करने के बाद ही उन्हें आप्त के रूप में स्वीकार किया है। अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण ही वे वीतरागी तीर्थंकर की स्तुतियों में दार्शनिक मान्यताओं का समन्वय कर सके हैं।

आदिपुराण में आचार्य जिनसेन ने इन्हें वादित्व, वाग्मित्व, कवित्व और गमकत्व इन चार उत्तम गुणों से विभूषित बताया है, यही नहीं इनको कविवेधा कह कर कवियों को उत्पन्न करने वाला विधाता भी कहा है –

कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि।
यशः समन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूड़ामणीयते ।।
नमः समन्तभद्राय महते कवि वेधसे।
यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्ना कुमतादयः।।[1]

मैं कवि समन्तभद्र को नमस्कार करता हूँ, जो कवियों में ब्रह्म हैं और जिनके वचन रूपी वज्रपात से मिथ्यामत रूपी पर्वत चूर–चूर हो जाते हैं। स्वतंत्र कविता करने वाले कवि, शिष्यों को मर्म तक पहुँचाने वाले गमक, शास्त्रार्थ करने वाले वादी और मनोहर व्याख्यान देने वाले वाग्मियों के मस्तक पर

1- महापुराण भाग 1,1/43-44

समन्तभद्र स्वामी का यश चूड़ामणी के समान आचरण करने वाला है। आचार्य समन्तभद्र के समक्ष बड़े–बड़े प्रतिपक्षी सिद्धान्तों का महत्त्व समाप्त हो जाता था और प्रतिवादी मौन रहकर स्तब्ध हो जाते थे। आचार्य वादीभसिंह अपने 'गद्य चिन्तामणी' ग्रन्थ में लिखते हैं–

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखाः मुनीश्वराः।
जयन्ति वाग्वज्रनिपातपारिप्रतीपराद्धान्त महीध्रकोटयः।।[2]

श्री समन्तभद्र मुनीश्वर सरस्वती की स्वच्छन्द विहारभूमि थे। उनके वचन रूपी पर्वतों की चोटियां चूर–चूर हो गयी थीं। श्रवणवेलगोला के शिलालेख में आचार्य समन्तभद्र की सूक्तियों को वादिरूपी हस्तियों को वश में करने के लिए वज्रांकुश कहा गया है तथा बतलाया गया है कि उनके प्रभाव से सम्पूर्ण पृथ्वी दुर्वादों की वार्ता से रहित हो गयी थी। –

समन्तभद्रस्य चिराय जीयाद्वादीभवज्रांकुश सूक्तिजालः।
यस्य प्रभावात्सकलावनीयं वन्ध्यास दुर्वादुकवार्त्तयापि।।[3]

इस प्रकार जैन वाङ्मय मे स्वामी समन्तभद्र पूर्ण तेजस्वी, विद्वान, महान दार्शनिक, वादविजेता और कविवेधा के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपनी अलौकिक प्रतिभा से इन्होंने तात्कालिक ज्ञान विज्ञान के समस्त विषयों पर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त कर लिया था।

जीवन परिचय –

इतने प्रभावशाली व्यक्तित्व के जीवन परिचय को जानने की उत्सुकता स्वाभाविक है, किन्तु यशकामना से उदासीन प्रायः प्राचीन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है, इस कारण उनके जन्म स्थान, माता पिता आदि के सम्बंध में निश्चित जानकारी कठिन रहती है। फिर भी उपलब्ध सामग्री के आधार पर स्वामी समन्तभद्र के जीवन के विषय में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं –

श्रवणबेलगोला के विद्वान श्री दोबर्लि जिनदास शास्त्री के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित आप्तमीमांसा की एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति में निम्नलिखित पुष्पिका काव्य अंकित है–'**इति श्री फणिमंडलालंकारस्योरग–पुराधिपसूनोः श्री समन्तभद्र मुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम्**' इस पुष्पिका

2- गद्यचिन्तामणि, वादीभसिंह

3- जैन शिलालेख संग्रह, प्रथमभाग, अभिलेख संख्या 105 पद्य 17,18

काव्य से ज्ञात होता है कि श्री समन्त फणिमंडल के अन्तर्गत उरगपुर राजा के पुत्र थे। उरगपुर चोल राजाओं की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी थी इसे ही त्रिचनापल्ली भी कहते हैं। 'राजाबलिकथे' में आपका जन्म उत्कलिका ग्राम में होना लिखा है, संभव है कि यह उत्कलिका ग्राम उरगपुर के ही अन्तर्गत रहा होगा। उरगपुर काबेरी तट पर बसा हुआ एक समृद्धशाली जनपद था। इससे स्पष्ट है कि स्वामी समन्तभद्र का जन्म दक्षिण में हुआ था और वे राजपुत्र थे।

'जिनस्तुतिशतम्' या स्तुतिविद्या के आधार पर इनका जन्मनाम शान्तिवर्मा कहा जाता है।

मुनिपद और भस्मकव्याधि –

मुनि दीक्षा ग्रहण करने के बाद ये भस्मकव्याधि नामक भयंकर रोग से पीड़ित हो गये। इस रोग के कारण मुनिपद का समुचित निर्वाह न होते देख इन्होंने अपने गुरू से समाधिमरण धारण करने की प्रार्थना की। किन्तु गुरू ने भविष्य में आप द्वारा की जाने वाली धर्म और साहित्य की आशातीत सेवा को ध्यान में रखते हुए समाधिमरण की अनुमति न देकर दीक्षा छोड़कर रोगशमन करने तथा रोगशमन होने के बाद पुनः दीक्षा धारण करने का आदेश दिया। गुरू के आदेशानुसार ये रोगोपचार के लिये दिगम्बर साधु का पद छोड़कर सन्यासी बन गये। सन्यासी बनकर विचरण करते हुए ये वाराणसी पहुँचे। वहाँ शिवकोटी राजा के भीमलिंग नामक शिवालय में जाकर राजा को आशीर्वाद दिया और उनसे कहा कि मैं शिवजी को अर्पण किये जाने वाले समस्त नैवेद्य को शिवजी को ही खिला दूँगा। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें अनुमति दे दी।

अब प्रतिदिन शिवजी को अर्पित किये जाने वाले नैवेद्य को शिवालय के किवाड़ बंद कर ये स्वयं खाने लगे। शिवजी को नैवेद्य खिलाने की बात से राजा बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु धीरे–धीरे जैसे जैसे रोग शमन होने लगा, नैवेद्य बचने लगा, राजा तथा उनके कर्मचारियों को शंका होने लगी। अतः कुछ कर्मचारी गुप्त रूप से शिवालय में छुपकर जाँच पड़ताल करने लगे, उन्होंने समन्तभद्र को नैवेद्य भक्षण करते हुए देख लिया और राजा से शिकायत कर दी। राजा शिवकोटी ने इन्हें डरा धमकाकर शिवजी को नमस्कार करने को कहा। उन्होंने उपसर्ग समझकर चौबीस तीर्थंकर की

स्तुति प्रारम्भ की। जब ये चन्द्रप्रभु स्वामी की स्तुति कर रहे थे तभी भीमलिंग शिव की पिंडी विदीर्ण हो गयी और उसके मध्य से चन्द्रप्रभु स्वामी की सुन्दर मूर्ति प्रकट हो गयी। सभी को महान आश्चर्य हुआ। स्वामी समन्तभद्र ने चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति पूर्ण हो जाने पर राजा को आशीर्वाद दिया।

यह कथा राजा बलिकथे तथा सेनगण की पट्टावलि में भी उपलब्ध है। श्रवणबेलगोला के अभिलेख से भी इसकी पुष्टि होती है। अभिलेख में समन्तभद्र स्वामी के भस्मक रोग तथा रोगमुक्त होने पर पुनः मुनि दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। लिखा है –

वन्द्यो भस्मकभस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवताः।
दत्तोदात्तपदस्वमन्यवचनन्याहूत चन्द्रप्रभः।।
आचार्यस्य समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ।
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्र समन्तान्मुहुः।।[1]

जो अपने भस्मक रोग को भस्मसात् करने में चतुर हैं पद्मावती देवी की दिव्य शक्ति के द्वारा जिन्हें उदात्त पद की प्राप्ति हुई, जिन्होंने अपने मन्त्र वचनों से चन्द्रप्रभु को प्रकट किया और जिनके द्वारा कल्याणकारी जैन मार्ग सब रूप से भद्र रूप हुआ, वे गणनायक आचार्य समन्तभद्र बार–बार वंदनीय हैं।

समय निर्धारण –

आचार्य समन्तभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानों ने पर्याप्त खोजबीन की है। इनके समय के संबंध में विद्वानों की दो विचारधाराएं उपलब्ध हैं। पं० नाथूराम प्रेमी[2], श्री सुखलाल संघवी[3] और डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य[4] के अनुसार इनका समय छटवीं शताब्दी है। किन्तु डॉ. दरबारीलाल कोठिया[5], आचार्य श्री जुगलकिशोर मुख्तार[6] तथा डॉ. ज्योतिप्रसाद[7] ने समन्तभद्र साहित्य का गहन अध्ययन कर उनका समय विक्रम की द्वितीय शती निर्धारित किया है। डॉ लेविस राईसने भी समन्तभद्रका समय ई. की प्रथम या द्वितीय शताब्दीमें होने का अनुमान किया है। कर्नाटक कविचरिते[8] नामक कन्नड़ ग्रन्थके रचियता आइ नरसिंहाचार्यने भी समन्तभद्र का समय

1- जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या 54, पृ. 102

ई. सन् १३८ के लगभग माना है। अधिकतर विद्वानोंने इनका समय ई. की द्वितीय शताब्दी ही माना है। डॉ. महेन्द्र कुमारने भी बाद में सिद्धिविनिश्चय की टीका की प्रस्तावना एवं जैन दर्शन ग्रन्थोंमें समन्तभद्रका समय ई. की द्वितीय शताब्दी ही स्वीकार कर लिया है। अतः समन्तभद्रका समय ई. की द्वितीय शताब्दी ही मानना तर्क संगत है।

रचनाएं –

समन्तभद्र द्वारा लिखित निम्न रचनाएं मानी जाती है :–

1 - वृहद् स्वयंभू स्तोत्र 2 - स्तुतिविद्या – जिनशतक, 3 - युक्त्यनुशासन, 4 - रत्नकरंडश्रावकाचार, 5 - देवागम स्तोत्र(आप्तमीमांसा) 6 - जीवसिद्धि, 7- तत्त्वानुशासन, 8 - प्राकृतव्याकरण, 9 -प्रमाण पदार्थ, 10-कर्मप्राभृत टीका 11- गन्धहस्तिमहाभाष्य

किन्तु अब तक वृहद् स्वयंभू स्तोत्र,स्तुतिविद्या– जिनशतक, युक्त्यनुशासन, रत्नकरंडश्रावकाचार, देवागम स्तोत्र ये पांच कृतियॉं ही उपलब्ध हैं। जीवसिद्धि, तत्त्वानुशासन, प्राकृतव्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्मप्राभृत टीका, गन्धहस्तिमहाभाष्य उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

1-वृहद् स्वयंभू स्तोत्र[1] – इसका नाम स्वयंभू स्तोत्र तथा चतुर्विंशति स्तोत्र भी है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। इस स्तोत्र मे भक्ति रस के साथ साथ गम्भीर चिन्तन एवं अनुभूति पायी जाती है।

2- स्तुतिविद्या[2]– जिनशतक, एवं जिनशतकालंकार भी इसके नाम पाये जाते हैं। इसमें चौबीस तीर्थंकरों की चित्रबंधों में स्तुति की गई है। इस स्तोत्र में कुल ११६ पद्य हैं, जिसके बाहर के षष्ठ वलय में शान्तिवर्मकृतम् और चतुर्थ वलय में जिनस्तुतिशतम् का उल्लेख है।

3- युक्त्यनुशासन[3], इसमें युक्तिपूर्वक भगवान महावीर के शासन का मण्डन और विरूद्ध मतों का खंडन किया गया है। वीर के सर्वोदय तीर्थ का महत्त्व बताने के लिये ही उनकी स्तुति की गई है। समस्त जिनशासन को

2- जैन साहित्य और इतिहास, पृ० 45, 46, 3- न्यायकुमुदचन्द्र भाग २ की प्रस्तावना, 4- न्यायकुमुदचन्द्र भाग २ का प्राक्कथन, 5- अनेकांत, वर्ष 5, किरण 6,7 तथा 10,11, 6- अनेकात, वर्ष14, किरण1, पृ०3-8, 7- अनेकात, वर्ष14, किरण 11,12पृ० 324, 8- Inseription of shravan Belgol,पुस्तक की प्रस्तावना,

केवल ६४ पद्यों में समाविष्ट कर गागर में सागर भरने का अद्‌भुत प्रयास किया गया है।

4-रत्नकरंडश्रावकाचार, इस ग्रन्थ में सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय का वर्णन करते हुए सल्लेखना(समाधिमरण) तथा श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। आपकी दृष्टि में मन की साधना ही सच्ची साधना है। आप कहते हैं कि मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ हैं।[4] चाण्डाल भी यदि सम्यग्दृष्टि है तो वह देवों के द्वारा भी पूज्यनीय है।[5] लोकमूढ़ता का वर्णन करते हुए आपने नदी तथा समुद्र में स्नान, मिट्टी आदि के ढेर लगाकर स्तूप आदि बनाने तथा पर्वत से कूँद कर प्राणान्त करने अथवा अग्नि में शरीर को जलाकर प्राणविसर्जन आदि क्रियाओं को धर्म समझने की भर्त्सना की है।[6] आप बाह्याडम्बर के प्रवल विरोधी थे।

5- आप्तमीमांसा - इस ग्रन्थ में स्तोत्र के रूप में तर्क और आगम के आधार पर आप्त की मीमांसा की गई है। 'देवागम पद द्वारा स्तोत्र का आरंभ होने के कारण इसका अपर नाम देवागम स्तोत्र भी है। इस स्तोत्र में ११४ पद्य हैं। आप्त का मूल्यांकन करते हुए सर्वज्ञाभाववादी मीमांसक, भावैकान्तवादी सांख्य, एकान्तपर्यायवादी बौद्ध तथा सर्वथा उभयवादी वैशेषिकों की मान्यता का विवेचन करते हुए उनका तर्कपूर्वक निराकरण किया गया है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव का समर्थन करते हुए सर्वथा अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद का निरसन कर अनेकान्तात्मकता सिद्ध की गयी'है। विषयविभाजन की दृष्टि से आप्तमीमांसा को दस परिच्छेदों में विभक्त किया गया है।

प्रथम परिच्छेद –

प्रथम परिच्छेद में २३ कारिकाएं हैं। प्रथम तीन कारिकाओं में देवागमन, नभोयन आदि अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग अतिशय अथवा तीर्थंकरत्व आदि उन विशेषताओं की समीक्षा की गयी है, जिनके कारण आप्तता मानी

1- अनुवादक और संपादक पं. जुगलकिशोर मुख्तार, युगवीर प्रकाशन, वीर सेवा मंदिर, दिल्ली 2-अनुवादक पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्र. वीर सेवा मंदिर दिल्ली 3-संपादक आ. जुगलकिशोर मुख्तार, 4- रत्नकरंडश्रावकाचार 33. 5-वही 28 6. वही प्र.अ. 22

जाती है। चतुर्थ कारिका में दोष और आवरणों से रहित निर्दोष व्यक्ति विशेष की सिद्धि की गयी है। पांचवी कारिका में अनुमेयत्व हेतु के द्वारा सूक्ष्म, अंतरित और दूरवर्ती पदार्थों की प्रत्यक्षता सिद्ध की गयी है। छठी कारिका में अर्हन्त को ही निर्दोष आप्त सिद्ध किया गया है, क्योंकि उनके वचन युक्ति और आगम के विरोधी नहीं हैं। उनके वचनों का किसी प्रमाण से खण्डन नहीं होता। ७ वीं कारिका में बताया गया है कि एकान्तवादियों द्वारा प्ररूपित तत्त्व प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। ८ वीं कारिका में एकान्तवादियों को अपना तथा दूसरों का बैरी बताया गया है, क्योंकि उनके एकान्तवाद में उनके द्वार मान्य पुण्य–पाप, इहलोक–परलोक आदि कुछ भी सिद्ध नहीं होते। ९ से ११ तक तीन कारिकाओं द्वारा बताया गया है कि भावैकान्त मानने पर प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव चारों प्रकार के अभाव का निरोध हो जायेगा और किसी भी अभाव को न मानने पर प्रागभाव के बिना सभी वस्तु अनादि हो जायेगी। प्रध्वंसाभाव के न होने पर सभी वस्तु अनन्त हो जायेगी। अन्योन्याभाव के अभाव में सभी वस्तु सबरूप हो जायेगी और अत्यन्ताभाव के अभाव में वस्तु का अपना कोई निश्चित स्वरूप नहीं रहेगा, फिर चेतन अचेतन का भेद भी नहीं रहेगा। अतः वस्तु व्यवस्था भी नहीं बन सकेगी। १२ वीं कारिका में अभावैकान्त मानने वालों का विरोध किया गया है। बताया गया है कि सर्वथा अभाव रूप वस्तु स्वीकार करने पर ज्ञान और वचन भी नहीं होंगे, उनके अभाव में न तो स्वयं किसी वस्तु का ज्ञान हो सकेगा और न ही दूसरों को ज्ञान कराया जा सकेगा। अतः अभावैकान्त मानने वालों के यहाँ किसी वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। १३ वीं कारिका में वस्तु को सर्वथा भाव और सर्वथा अभाव दोनों रूप मानने का विरोध तथा सर्वथा अवाच्य मानने पर उसका अवाच्य शब्द के द्वारा कथन न कर सकने का दोष दिखाया गया है।

१४ से २२ तक ९ कारिकाओं द्वारा स्याद्वाद नय से वस्तु को अनेकात्मक बताते हुए भाव और अभाव दो विरोधी धर्मों को एक ही वस्तु में सप्तभङ्गीनय से सिद्ध किया गया है। २३ वीं कारिका द्वारा एक,अनेक, नित्य, अनित्य आदि विरोधी धर्मी की भी वस्तु में सप्तभङ्गीनय से योजना करने को कहा गया है।

द्वितीय परिच्छेद –

द्वितीय परिच्छेद – में २४ से ३६ तक १३ कारिकाएं हैं। चौबीसवीं और पच्चीसवीं कारिका में अद्वैतैकान्त की समीक्षा की गयी है। बताया गया है कि वस्तु को सर्वथा एक मानने पर क्रिया भेद, कारक भेद, पुण्य–पाप रूप कर्मद्वैत, सुख दुःखरूप फलद्वैत, इहलोक परलोक रूप लोकद्वैत, विद्या अविद्यारूप ज्ञानद्वैत, बन्ध मोक्षद्वैत तथा विद्या अविद्या का द्वैत नहीं बन सकेगा। २६वीं कारिका में कहा गया है कि हेतु से अद्वैत की सिद्धि करने पर हेतु और साध्य का द्वैत हो जायेगा और हेतु के बिना अद्वैत सिद्धि करने पर वचनमात्र से द्वैत की भी सिद्धि की जा सकती है। २७ वीं कारिका में कहा गया है कि द्वैत के अभाव में अद्वैत की सिद्धि नहीं की जा सकती, जैसे कि हेतु के बिना अहेतु की सिद्धि नहीं हो सकती। किसी भी नाम वालेका निषेध, जिसका निषेध किया जाय, उसके अस्तित्व के बिना नहीं हो सकता। द्वैत शब्द भी संज्ञी है, अतः उसका निषेध करने वाला जो अद्वैत शब्द है, वह द्वैत के अस्तित्व के बिना नहीं हो सकता। २८ वीं कारिकामें वैशेषिकों के अनेकवाद की आलोचना की गयी है। कहा गया है कि जिस पृथक्त्व गुण से द्रव्यादि पदार्थों को अनेक कहा जाता है, वह द्रव्यादिसे पृथक् है या अपृथक्' अपृथक् तो कहा नहीं जा सकता क्योंकि यह उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल है, और पृथक् माननेपर उसकी सत्ता ही नहीं रहेगी, क्योंकि अनेकों में रहकर ही वह अपने अस्तित्व को स्थिर रखता है। २९ से ३१ तक तीन कारिकाओंके द्वारा बौद्धोंके अनेकवादकी समीक्षा की गयी है। बौद्ध अन्वय रूप एकान्त न मान कर सर्वथा पृथक् पृथक्, अनेक विसदृश क्षणोंको ही वस्तु मानते हैं, उनकी इस मान्यता के मानने पर सन्तान, सादृश्य, समुदाय और प्रेत्यभाव नहीं बन सकते। ज्ञान और ज्ञेय को सत् की अपेक्षा से भी भिन्न मानने पर न तो ज्ञान ही रहेगा, न बाह्य और अन्तस्तत्त्वरूप ज्ञेय ही रहेगा। वचन से भी उनकी सिद्धि नहीं की जा सकती, क्योंकि वचन सामान्य (अन्यापोह) मात्र का कथन करते हैं और वह अवस्तु है, वस्तु रूप विशेष को वचन नहीं कहते, अतः उनके वचन भी मिथ्या ही हैं। ३२ वीं कारिका द्वारा सर्वथा एक और सर्वथा अनेक उभयरूप मानने पर 'अवाच्य' द्वारा

उसका कथन न हो सकने का दोष दिखाया गया है। ३३ से ३६ तक चार कारिकाओं द्वारा स्याद्वाद नय से एक और अनेक विरोधी धर्मों की अपेक्षा से सप्तभङ्गी की योजना कर अनेकान्त की सिद्धि की गयी है। इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद में एक अनेक आदि विरोधी सिद्धान्तों की समीक्षा कर वस्तु को सप्तभङ्गात्मक सिद्ध किया गया है।

तृतीय परिच्छेद –

तृतीय परिच्छेद में ३७ से ६० तक २४ कारिकाएं हैं। ३७ से ४० तक चार कारिकाओं द्वारा सांख्य के सर्वथा नित्यवाद की आलोचना की गयी है। कहा गया है कि पुरूष और प्रधान को एकान्त रूप से नित्य मानने पर उनमें किसी भी विकार की संभावना नहीं होगी। क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व न किसी को कारक कहा जा सकता है और न ज्ञप्ति से पूर्व किसीको प्रमाण कहा जा सकता है।एक रूप होनके काराण एकान्तरूपसे नित्य प्रधान और पुरूष से किसी की उत्पत्ति और ज्ञप्ति आदि कोई क्रिया संभव नहीं है, अतः उसे न कारक कहा जा सकता है न प्रमाण। इन्द्रियों से घटादि अर्थ की अभिव्यक्ति के समान प्रधान रूप कारक या प्रमाण से महदादि की अभिव्यक्त होती है यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सर्वथा नित्य प्रधान में अभिव्यक्ति के लिये भी क्रिया नहीं हो सकती। अतः महदादि को प्रधान से अभिव्यक्ति भी नहीं कहा जा सकता। सर्वथा नित्य पक्ष में पुरूष की तरह सत् कार्य की न तो उत्पत्ति हो सकती है न अभिव्यक्ति/परिणमन के अभाव में पुण्य–पाप प्रेत्यभाव तथा बन्ध मोक्ष आदि भी नहीं हो सकते। ४१ से ५४ तक १४ कारिकाओं द्वारा सर्वथा अनित्यपक्ष में दोष दिखाया गया है। वस्तु को सर्वथा क्षणिक मानने पर पूर्वापर क्षणों में अन्वय न होने के कारण प्रत्यभिज्ञा, स्मरण, अनुभव आदि नहीं होने के कारण प्रेत्यभाव आदि भी नहीं बन सकते। सर्वथा क्षणिकवाद में कार्यकारण भाव हिंस्यहिंसक भाव, गुरू शिष्य भाव, पति–पत्नी भाव, बद्धमुक्त भाव तथा स्कंध सन्ततियाँ भी नहीं बन सकती हैं।

५५ वीं कारिका में सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य के उभयैकान्त में विरोध तथा सर्वथा अवाच्यता के एकान्त में अवाच्य शब्द के द्वारा उसका

कथन न हो सकने के कारण दोष दिखाया गया है। ५६ से ६० तक ५ कारिकाओं द्वारा स्याद्वादनयसे कथचिंत नित्य, कथचिंत अनित्य, कथचिंत उभय, कथचिंत अवाच्य आदि सात भङ्गों के द्वारा अनेकान्त की सिद्धि की गयी है।लौकिक तथा अलौकिक दृष्टान्तों के द्वारा भी एक ही वस्तु को उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य त्रयात्मक सिद्ध किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद –

चतुर्थ परिच्छेद में ६१ से ७२ तक १२ कारिकाएं हैं। इस परिच्छेद में सर्वथा भेद तथा सर्वथा अभेद में दोष दिखाया गया है। ६१ से ६६ तक ६ कारिकाओं में सर्वथा भेदवादी वैशेषिकों की समीक्षा की गयी है। कहा गया है कि कार्य–कारण, गुण–गुणी तथा सामान्य और सामान्यवान में सर्वथा भेद मानने पर एक अवयवी अनेक अवयवों में नहीं रह सकता। सामान्य और समवाय दोनों में परस्पर सम्बंध नहीं हो सकता, ऐसी स्थिति में इनका दृव्यादिसे भी संबंध नहीं हो सकता। अतः संबंधके बिना सामान्य, समवाय और द्रव्यादि सभी आकाशपुष्प के समान असत् हो जायेंगे। ६७ वीं तथा ६८ वीं कारिका के द्वारा अणुओं के अनन्यतैकान्त की समीक्षा की है। कहा गया है कि यदि अणु द्वयणुकादि संघात दशा में भी विभाग के समान असंहत ही रहेंगे तो पृथ्वी आदि चारों भूत भी भ्रान्त ही हो जायेंगे। और जब पृथ्वी आदि चारों भूत भी भ्रान्त होंगे तो उनके कारण परमाणु भी भ्रान्त ही हो जायेंगे। कार्य कारण दोनों का अभाव होने पर गुण,जाति, क्रिया आदि भी नहीं बनेंगे। ६६ वीं कारिका द्वारा कार्य तथा कारण दोनों में सर्वथाअभेद मानने पर दोनों में से एक का ही अस्तित्व रहेगा। दूसरे का अभाव हो जायेगा और दोनों में अविनाभाव होने से दूसरे के अभाव में एक का भी अभाव हो जायेगा। इसके अतिरिक्त अभेदैकान्त में कार्य कारण दो की संख्या नहीं बन सकती, कल्पना से द्वित्व संख्या मानी जाये तो कल्पना भी मिथ्या ही होगी। ७० वीं कारिका द्वारा सर्वथा भेद तथा सर्वथा अभेद दोनों के उभयैकान्त में विरोध तथा अवाच्यता में दोष दिखाया गया है। ७१ वीं तथा ७२ वीं कारिका द्वारा अवयव–अवयवी, गुण–गुणी आदि में कथचिंत भेद, कथंचित अभेद, कथंचित उभय आदि सप्तभङ्गी प्रक्रिया की योजना द्वारा अनेकान्त की सिद्धि की गयी है।

पंचम परिच्छेद –

इस परिच्छेद में ७३ से ७५ तक तीन कारिकाओं द्वारा कार्य कारण, धर्म–धर्मी, विशेषण–विशेष्य तथा प्रमाण–प्रमेय आदि की सिद्धि सर्वथा अनपेक्षा, सर्वथा उभय, सर्वथा अनुभय के द्वारा मानने पर दोष दिखाते हुए स्याद्वादनय से वस्तुस्वरूप की सिद्धि की गयी है। बताया गया है कि धर्म–धर्मी, कार्य–कारण, विशेषण–विशेष्य तथा प्रमाण–प्रमेय का व्यवहार तो अपेक्षा से होता है किन्तु उनका स्वरूप स्वतः सिद्ध है। जैसे कर्ता का स्वरूप कर्म की अपेक्षा से होता है किन्तु उनका स्वरूप स्वतः सिद्ध है। जैसे कर्ता का स्वरूप कर्म की अपेक्षा तथा कर्म का स्वरूप कर्ता की अपेक्षा नहीं रखते, बोध्य का स्वरूप बोधक की और बोधक का स्वरूप बोध्य की अपेक्षा नहीं रखते, किन्तु उनका व्यवहार सापेक्ष होता है, उसी प्रकार धर्म–धर्मी, कारण–कार्य आदि भी स्वरूप की दृष्टि से स्वत. सिद्ध है, एक दूसरे की अपेक्षा नही रखते, किन्तु उनका व्यवहार सापेक्ष होता है। इस परिच्छेद में अपेक्षा और अनपेक्षा के विरोध को सप्तभङ्गी के द्वारा समन्वित किया गया है।

षष्ठ परिच्छेद –

षष्ठ परिच्छेद मे ७६ से ७८ तक तीन कारिकाओं द्वारा हेतुवाद और अहेतुवाद की एकान्तता का निराकरण करते हुए स्याद्वाद नय के द्वारा अनेकान्तात्मकता सिद्ध की गयी है। सर्वथा हेतुवाद में प्रत्यक्षादि प्रमाणो से वस्तु सन्तान का अभाव तथा सर्वथा आगम से वस्तुतत्त्व की सिद्धि मानने पर परस्पर विरोधी सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित विरोधी तत्त्वो की सिद्धि का प्रसंग आयेगा। उभयैकान्त तथा अवाच्यता के एकान्त में भी पूर्ववत् दोष दिखाते हुए सप्तभङ्गी प्रक्रिया द्वारा अनेकान्त की सिद्धि की गयी है। कहा गया है कि वक्ता के आप्त होने पर उसके वचन से वस्तु की सिद्धि होती है, जिसे आगम साधित कहा जाता है और वक्ता के आप्त नहीं होने पर हेतु से साध्य की सिद्धि की जाती है, जिसे हेतु साधित कहा जाता है।

सप्तम परिच्छेद –

सप्तम परिच्छेद में ज्ञानैकान्त और बाह्य अर्थ के एकान्त में आने वाले

दोषो को दिखाते हुए अनेकान्त की सिद्धि की गयी है। ७६ वीं कारिका द्वारा ज्ञानैकान्त में दोष दिखाते हुए कहा गया है कि केवल ज्ञान को ही एकान्त रूप से मानने तथा बाह्य अर्थ को न मानने पर किसी की बुद्धि और वचन की प्रमाणता का निश्चय नहीं हो सकेगा। अतः वे मिथ्या होने के कारण प्रमाणाभास ही होगे किन्तु प्रमाण के बिना प्रमाणाभास भी नहीं हो सकते। कारिका ८० द्वारा साध्य और साधन की विज्ञप्ति से, विज्ञप्ति मात्र की सिद्धि मानने पर प्रतिज्ञादोष और हेतु दोष दिखाकर उसका निराकरण किया गया है। ८१ वीं कारिका द्वारा सर्वथा बाह्यार्थ को मानने तथा अन्तरंगार्थ ज्ञान को न मानने पर दोष दिखाते हुए कहा है कि सर्वथा बाह्यार्थ के होने पर सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रूप प्रमाणाभास का अभाव हो जायेगा और सत्य, असत्य का निर्णय न होने पर विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वालों को भी मोक्षादि कार्यों की सिद्धि हो जायेगी। ८२ वी कारिका द्वारा उभयैकान्त और अवाच्यतैकान्त मे दोष दिखाया गया है। ८३ वी कारिका द्वारा स्याद्वाद नय से वस्तु व्यवस्था का समर्थन करते हुए कहा गया है कि स्वरूप सवेदन की अपेक्षा कोई ज्ञान प्रमाणाभास नहीं है और बाह्य प्रमेय की अपेक्षा प्रमाण तथा प्रमाणाभास दोनों है। ८४ वीं कारिका मे बताया गया है कि कोई भी शब्द हो उसका वाच्य बाह्य अर्थ अवश्य होता है, 'जीव' शब्द का भी अपना वाच्य बाह्य अर्थ अवश्य होता है। ८५ से ८७ कारिका तक उक्त कथन का समर्थन करते हुए कहा गया है कि प्रत्येक वस्तु की तीन संज्ञाएं क्रमशः बुद्धि, शब्द और अर्थ की वाचिका हैं। अतः जीव शब्द भी केवल जीव बुद्धि और जीव शब्द का ही वाचक नहीं है, अपितु 'जीव' अर्थ का वाचक है। बुद्धि और शब्द की प्रमाणता बाह्य अर्थ के होने पर ही होती है, बाह्य अर्थ के नहीं होने पर नहीं होती। जिस शब्द और ज्ञान के अनुसार बाह्य अर्थ की प्राप्ति होती है, वह शब्द और ज्ञान प्रमाण है और जिसके द्वारा बाह्य अर्थ की प्राप्ति नहीं होती, वह प्रमाणाभास है।

अष्टम परिच्छेद –

अष्टम परिच्छेद में ८८ से ९१ तक चार कारिकाओं द्वारा सर्वथा दैववाद और सर्वथा पौरूषवाद का निराकरण कर स्याद्वाद नय से सप्तभंगी योजना द्वारा दैव और पुरूषार्थ दोनों में समन्वय किया गया है। ८८वीं कारिका में

सर्वथा दैववाद में दोष दिखाते हुए कहा है कि सर्वथा दैव से ही इष्टानिष्ट वस्तुओं की सिद्धि मानने पर वह दैव किससे बनता है, यह प्रश्न उपस्थित होता है। पौरुष से वह दैव बनता है, ऐसा कहने पर सर्वथा दैववाद की मान्यता समाप्त हो जाती है। दूसरे, दैव भी किसी अन्य दैव से मानना पड़ेगा, इस प्रकार किसी को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी और पौरुष व्यर्थ सिद्ध होगा। ८६ वीं कारिका में सर्वथा पौरुषवाद का खण्डन किया गया है। पौरुष से ही सब पदार्थों की सिद्धि मानने पर पौरुष किससे होता है, यह प्रश्न उपस्थित होता है, दैव से मानने पर सर्वथा पौरुषवाद का निराकरण हो जाता है, पौरुष से ही पौरुष की सिद्धि मानने पर सभी का पौरुष सदैव सफल होना चाहिए। किन्तु देखा जाता है कि समान पुरुषार्थ करने पर भी किसी को फल की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है और किसी को अधिक समय में फल की प्राप्ति होती है और किसी को होती ही नहीं। ९० वीं कारिका द्वारा सर्वथा उभयैकान्त और अवाच्यतैकान्त का निराकरण किया गया है। ९१ वीं कारिका द्वारा स्याद्वाद नय से कहा गया है कि जहाँ इष्ट और अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति बुद्धि व्यापार के बिना होती है, वहां उनकी प्राप्ति दैव से तथा जहाँ उनकी प्राप्ति बुद्धि व्यापार पूर्वक होती है, वहाँ पुरुषार्थ से होती है, ऐसा मानना चाहिये।

नवम् परिच्छेद –

नवम् परिच्छेद में ९२ से ९५ तक चार कारिकाओं द्वारा दैव के कारणभूत पुण्य और पाप का बन्ध किससे होता है, इस विषय में एकान्तवादियों की मान्यता का निराकरण करते हुए स्याद्वाद नय से स्वमत की स्थापना की गयी है। कहा गया है कि यदि दूसरों को दुःख देने से पाप का और दूसरों को सुख देने से पुण्य का बंध होना माना जाता है तो अचेतन पदार्थ विष, कंटक आदि तथा कषाय रहित मुनि आदि को भी बंध का प्रसंग आता है। क्योंकि अचेतन विष कंटक आदि से दूसरों को दुःख होता है और दूध मलाई, मिठाई आदि से दूसरो को सुख होता है। कषाय रहित मुनि भी दूसरों के सुख दुःख के कारण देखे जाते हैं, अतः उन्हें भी बंध होना चाहिए किन्तु वीतरागी के बंध नहीं होता। यदि कहा जाये कि स्वयं को दुःख देने से पुण्य का तथा स्वयं को सुख देने से पाप का बंध होता है तो वीतरागी मुनि तथा विद्वानों को भी पुण्य और पाप का बंध होना चाहिए, क्योंकि उन्हें भी कायक्लेश आदि जन्य दुःख और तत्त्वज्ञान जन्य सुख होता है। उभयैकान्त और अवाच्यतैकान्त

भी नहीं माना जा सकता। अतः अपने या पर के सुख या दुःख में जहां परिणाम विशुद्धि और संक्लेश के हैं, वहीं पुण्य और पाप का आस्रव होता है। विशुद्ध परिणाम होने पर पुण्य का एवं संक्लिष्ट परिणाम होने पर पाप का आस्रव होता है। यदि अपने यां पर के सुख दुख में परिणामों में विशुद्धि या संक्लेश नहीं होंगे तो पुण्य या पाप का आस्रव नहीं होगा।

दशम परिच्छेद –

दशम परिच्छेद में ९६ से ११४ तक १९ कारिकाएं हैं। ९६ से ९८ तक की कारिका में अज्ञान से बन्ध और अल्पज्ञान से मोक्ष के एकान्तवाद का निराकरण करते हुए अज्ञान तथा अल्पज्ञान से मोक्ष की निर्दोष विधि का प्रतिपादन किया गया है। कहा गया है कि यदि अज्ञान से एकान्तरूप से बंध माना जाये तो कोई भी कभी केवली नहीं हो सकेगा। क्योंकि ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं, किसी न किसी का अज्ञान बना ही रहेगा। यदि अल्पज्ञान से मोक्ष कहा जाये तो वह भी युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि अल्पज्ञान वाले को अज्ञान अधिक अंश में होगा, अतः उसे मोक्ष न होकर बन्ध ही होगा। अज्ञान तथा अल्पज्ञान दोनों के उभयैकान्त में भी उक्त दोष बने रहेंगे। अवाच्यता का एकान्त भी मान्य नहीं है, अवाच्य कहने मात्र से ही वह वाच्य हो जाता है। अतः मोह सहित अज्ञान से बंध और मोहरहित अल्पज्ञान से मोक्ष होता है। जो अज्ञान मोह से रहित है, वह बंध का कारण नहीं होता, इसी प्रकार जो अल्पज्ञान मोक्ष सहित है, वह मोक्ष का कारण नहीं होता। ९९वीं कारिका द्वारा बताया गया है कि काम, क्रोध, मान, माया आदि से उत्पन्न होने वाला संसार अपने अपने कर्मबन्ध के अनुसार होता है। ईश्वर कर्ता नहीं है। वह कर्मबंध अपने अपने शुभ और अशुभ परिणामों के कारण होता है। इसी कारण शुद्धि और अशुद्धि के भेद से जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। शुभ परिणाम वाले जीव शुद्ध और अशुभ परिणाम वाले जीव अशुद्ध माने गये हैं। १०१वीं कारिका में बताया गया है कि शुद्धि और अशुद्धि जीव की शक्तियाँ है जैसे मूंग उड़द आदि के कुछ दाने पकने वाली शक्ति से युक्त होते हैं और कुछ नहीं। इन शक्तियों की अभिव्यक्ति सादि तथा अनादि होती है। जीव अनादि काल से अशुद्धि से युक्त होता है। शुद्धि सम्यक्त्व आदि के द्वारा बाद में होती है, यही वस्तु स्वभाव है।

१०१ वीं कारिका में प्रमाण का लक्षण तथा उसके क्रमभावि और अक्रमभावि ये दो भेद बताये गये हैं। अक्रमभावि युगपत् सब पदार्थों को जानने वाला केवलज्ञान है और क्रमभावि श्रुतज्ञान है, जो स्याद्वाद और नय दोनों रूप होता है।

१०२ वीं कारिका द्वारा दोनों प्रकार के प्रमाणों का फल बताया गया है दोनों प्रमाणों का साक्षात् फल अज्ञाननाश है और परम्परा फल अक्रमभावि ज्ञान की उपेक्षा (उदासीनता) तथा क्रमभावि ज्ञान का हान उपादान तथा उपेक्षा तीनों हैं।

१०३ से १०५ तक की कारिकाओंमें बताया गया है कि वक्ताके प्रत्येक वाक्यमें अनेकान्त का द्योतक 'स्यात्' निपात पद प्रकट या अप्रकट रूप से अवश्य रहता है। यह सामान्य वक्ता के ही वाक्य में नहीं अपितु केवलियों के भी वाक्यों में होता है। कथचिंत वाद स्याद्वाद है तथा तत्त्व प्रकाशन में इसका महत्त्व केवलज्ञान के ही समान है। अन्तर इतना ही है कि केवलज्ञान साक्षात् तत्त्वों को प्रकाशित करता है और स्याद्वाद परोक्षरूप से।

कारिका १०६ में नय का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कहा गया है कि नय तत्त्वज्ञान का वह महत्त्वपूर्ण उपाय है, जो स्याद्वाद (प्रमाण) द्वारा जाने गये अनेकान्त के एक एक धर्म का बोध कराता है। समग्र को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है और एक एक धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय है। प्रमाण और नय में यही अन्तर है।

१०७वीं कारिका में वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि जो नय तथा उपनयों के द्वारा जाने जाते हैं ऐसे त्रिकालवर्ती धर्मी (गुण पर्यायों) के समूह का नाम द्रव्य है। द्रव्य में अनेक धर्म सह अस्तित्व के साथ रहते हैं। १०८वीं कारिका में नयों और उपनयों के विषयभूत एकान्तों के समूह रूप द्रव्य को मिथ्या एकान्तों का समूह होने से मिथ्या कहने वालों के मत का निराकरण करते हुए कहा गया है कि निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं, सापेक्ष नय मिथ्या नहीं होते और स्याद्वादमत में सापेक्ष नय को स्वीकार किया गया है। अतः वह मिथ्या नहीं है।

१०९ वीं कारिका में विधिवाक्य और निषेध वाक्य की स्याद्वाद नय से व्यवस्था की गयी है। कहा गया है कि विधि वाक्य तथा निषेधवाक्य दोनों ही विधि और निषेधरूप अनेकान्तात्मक वस्तु का बोध कराते हैं। विधिवाक्य के द्वारा विवक्षित विधि धर्म के साथ प्रतिषेध धर्म का अस्तित्व भी मौनरूप से स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार प्रतिषेध वाक्य के द्वारा विवक्षित

प्रतिषेध धर्म के साथ विधि धर्म का अस्तित्व भी मौन रूप से स्वीकार किया जाता है। क्योंकि दोनों एक दूसरे के अविनाभावि हैं। एक का सर्वथा निषेध करने पर दूसरे का भी अभाव हो जायेगा, ऐसी स्थिति में वस्तु में कोई धर्म नहीं रहने से वह शून्य हो जायेगी।

११० से ११३ तक चार कारिकाओं द्वारा स्याद्वाद नय से वाक्य के स्वरूप का निर्देश किया गया है। प्रत्येक वचन तत् और अतत् दोनों रूप वस्तु का कथन करता है। जो वचन केवल तत् का ही कथन करता है, वह सत्य नहीं है और असत्य वचनों के द्वारा यथार्थ वस्तु का कथनं संभव नहीं है। वचन का स्वभाव है कि वह अन्य वचन द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ का निषेध करते हुए अपने अर्थ सामान्य का भी प्रतिपादन करता है। जो वाक्य ऐसा नहीं, वह आकाश कुसुम के समान असत् है। बौद्धों का कहना है कि सामान्य को कहने वाला वाक्य भी विशेष का ही कथन करता है, किन्तु उनका यह कथन समीचीन नहीं है। क्योंकि अन्यापोह शब्द का अर्थ नहीं है, अतः वह मिथ्या ही होगा। विशेष अर्थ की प्राप्ति के लिये 'स्यात्' पद ही उपयुक्त है। इसी से यथार्थ अर्थ की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विधि और प्रतिषेध एक दूसरे के अविनाभावी हैं, उसी प्रकार हेय और उपादेय भी एक दूसरे के अविनाभावी हैं। इस प्रकार स्याद्वाद की सम्यक् स्थिति है।

११४ वीं कारिका में आचार्य ने अपनी कृति का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि यह आप्तमीमांसा अपने कल्याण की इच्छा रखने वालों के सम्यक् उपदेश और मिथ्या उपदेश के अर्थ विशेष को जानने के लिये की गयी है, जिससे वे सम्यक् कथन को सत्य और उपादेय तथा मिथ्या कथन को असत्य और हेय जानकर तदनुसार आचरण कर आत्मकल्याण कर सकें।

आप्तमीमांसा की व्याख्याएं –

आप्तमीमांसा पर संस्कृत में तीन व्याख्याएं उपलब्ध है–1. अष्टशती (आप्तमीमांसाभाष्य) 2. अष्टसहस्री (आप्तमीमांसालंकार, देवागमालंकार), 3. आप्तमीमांसावृत्ति (देवागमवृत्ति)

1. अष्टशती – आचार्य अकलंक देव द्वारा रचित यह अत्यन्त क्लिष्ट और गूढ़ रचना है। इसका अपरनाम आप्तमीमांसाभाष्य भी है। आठ सौ श्लोक प्रमाण रचना होने के कारण इसका नाम अष्टशती रखा गया होगा।

2- अष्टसहस्री – इसके आप्तमीमांसालंकार, आप्तमीमांसालंकृति,

देवागमालंकार और देवागमालंकृति नाम भी पाये जाते हैं। आठ हजार श्लोक प्रमाण रचना होने से इसका नाम अष्टसहस्री हुआ होगा। यह व्याख्या अत्यन्त विस्तृत है। अष्टसहस्री के बिना अष्टशती का गूढ़ रहस्य समझ में नहीं आ सकता है। आचार्य विद्यानंद ने अष्टसहस्री के अंत में एक श्लोक लिखा है जिसमें कष्टसहस्री कहा गया है।[1] इसका तात्पर्य है कि अष्टसहस्री की रचना में हजारों कष्ट उठाने पड़े हैं तथा इसका अध्ययन भी कष्टकारी है।

3. आप्तमीमांसावृत्ति – यह आचार्य वसुनन्दी द्वारा रचित आप्तमीमांसा की लघु वृत्ति है। आचार्य वसुनंदी ने वृत्ति के अंत में लिखा है कि मैंने अपने उपकार के लिये ही देवागम का यह संक्षिप्त विवरण लिखा है।[2]

आप्तमीमांसा की हिन्दी व्याख्याएं –

आप्तमीमांसा पर हिन्दी में निम्न व्याख्याएं लिखी गई हैं –

1- हिन्दी वचनिका – विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान जयचन्द छाबड़ा ने वि० सं० १८८६ में ढूंढारी भाषा में (राजस्थानी हिन्दी) में आप्तमीमांसा की हिन्दी वचनिका लिखी थी, जिसका प्रकाशन अनन्तकीर्तिग्रन्थमाला बम्बई से हुआ। किन्तु अब यह प्राप्य नहीं हैं।

2. हिन्दीभाष्य (मूलानुगामीहिन्दी हिन्दी अनुवाद) विक्रम की बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध साहित्यसेवी पं० जुगलकिशोर मुख्तार ने देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा) का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद लिखा है, जिसका प्रकाशन वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट से 1967 में हुआ है।

3. पं. मूलचन्द जी शास्त्री ने आप्तमीमांसा का हिन्दी विवेचन लिखा है, जिसका प्रकाशन श्री शान्तिवीर दि० जैन संस्थान द्वारा सन् 1970 में हुआ है।

4. आप्तमीमांसा की तत्त्वदीपिका व्याख्या – प्रो. उदयचंद जैन द्वारा आप्तमीमांसा की तत्त्वदीपिका व्याख्या लिखी गयी है, जिसका प्रकाशन श्री गणेशवर्णी दि० जैन संस्थान नरिया, वाराणसी द्वारा वीर निर्वाण सं० 2501 में हुआ है। यह व्याख्या अष्टशती अथवा अष्टसहस्री का अनुवाद नहीं है

---

1. कष्टसहस्री सिद्धा साष्टसहस्रीय में पुष्यात्–अष्टसहस्री आचार्य विद्यानंद
2. श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्राचार्यस्य देवागमाख्यायाः कृतेः संक्षेपभूतं विवरणं कृतं श्रुतविस्मरणशीलेन वसुनन्दिना जडमतिना आत्मोपकाराय। आप्तमीमांसावृत्तिः पृ० 50

किन्तु इस व्याख्या में इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया है कि उसमें अष्टशती और अष्टसहस्री में प्रतिपादित कोई भी मुख्य तत्त्व छूटने न पाये। यह व्याख्या इतनी सरल और सुबोध है कि दर्शनशास्त्र तथा संस्कृत भाषा को न जानने वाले भी इस व्याख्या को पढ़कर अष्टशती और अष्टसहस्री के प्रतिपाद्य विषय को सरलता से समझ सकते हैं। प्रसंग प्राप्त न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध और चार्वाक आदि के सिद्धान्तों का भी संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

5. पूज्या आर्यिका 105 ज्ञानमति माता जी द्वारा भी अष्टसहस्री का हिन्दी अनुवाद किया गया है जिसका प्रकाशन श्री जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा कई भागों में हुआ है।

आचार्य वसुनन्दी और उनकी आप्तमीमांसा–

डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के अनुसार वसुनन्दी नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। एक ही वसुनन्दी की आप्तमीमांसावृत्ति, जिनशतकटीका, मूलाचारवृत्ति, श्रावकाचार और प्रतिष्ठासार संग्रह रचनाएं संभव नहीं हैं। उन्होंने आप्तमीमांसावृत्ति और जिनशतक टीका के रचियता एक वसुनन्दी तथा प्रतिष्ठापाठ और श्रावकाचार के रचियता अन्य वसुनन्दी के होने का उल्लेख किया है।[1] किन्तु इस सम्बंध में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है न किसी अन्य वसुनन्दी का अपने ग्रन्थ में कहीं उल्लेख किया है। अतः एक ही आचार्य वसुनन्दी द्वारा उक्त सभी ग्रन्थ लिख गये हों, यह संभावना भी की जा सकती है।

आचार्य वसुनन्दी संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। उत्तरवर्ती आचार्यों ने इनका उल्लेख सैद्धान्तिक उपाधि द्वारा किया है। श्रावकाचार में वसुनन्दी ने अपनी गुरूपरम्परा का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि श्री नयनन्दि इनके दादागुरू और नेमिचन्द्र गुरु थे।[2]

आचार्य वसुनन्दी का समय–

आचार्य वसुनन्दी ने अपने किसी ग्रन्थ के निर्माण का समय नहीं लिखा है परन्तु उनके श्रावकाचार का उल्लेख १३ वीं शताब्दी के विद्वान पं० आशाधर

1. डॉ० नेमिचन्द जयोतिषाचार्य,तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग3 पृ० 223
2. वसुनन्दि श्रावकाचार, भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण प्रशस्ति गाथा 540-544
3. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा डॉ० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य भाग3 पृ० 225-226

ने अपने सागार धर्मामृत की टीका में किया है और वसुनन्दि ने अपने मूलाचार की आचारवृत्ति में ग्यारहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य अमितगति के उपासकाचार से पांच श्लोक उद्धृत किए हैं इससे स्पष्ट है कि ये पं० आशाधर से पूर्व तथा आचार्य अमितगति के बाद हुए हैं। उक्त आधार पर इनका समय १२वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए। डॉ० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री का भी यही अभिमत है।[3]

आप्तमीमांसावृत्ति – यह आचार्य वसुनन्दि द्वारा रचित आप्तमीमांसा की लघु वृत्ति है। आचार्य वसुनन्दि ने वृत्ति के अंत में लिखा है कि मैंने अपने उपकार के लिए ही देवागम का यह संक्षिप्त विवरण लिखा है। आचार्य वसुनन्दि द्वारा रचित आप्तमीमांसा वृत्ति अष्टशती के समान गूढ़ अथवा अष्टसहस्री के समान विस्तृत नहीं है। यह वृत्ति संक्षिप्त होने के साथ–साथ अत्यन्त सरल और स्पष्ट है। प्रायः प्रत्येक पद का प्रश्नोत्तर रूप में विश्लेषण करने के उपरांत भावार्थ भी प्रस्तुत किया हैं, जिससे आप्तमीमांसा जैसी कृति का प्रतिपाद्य विषय पाठक को सरलता से हृदयंगम हो सके। कृति के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में दो श्लोकों के द्वारा भगवान महावीर तथा आचार्य समन्तभद्र की स्तुति की गई है। ग्रन्थकी समाप्ति पर ११५वीं कारिका द्वारा यतिपति भगवान महावीर को तथा कारिका १ और २ द्वारा भगवान महावीर तथा आचार्य समन्तभद्र को पुनः नमस्कार किया गया है।

अभी तक उक्त वृत्ति की कोई टीका नहीं लिखी गयी है। अतः संस्कृत भाषा को न जानने वाले जिज्ञासु पाठक भी आचार्य वसुनन्दि की उक्त कृति से लाभान्वित हो कर संक्षेप में आप्तमीमांसा में प्रतिपादित अनेकान्त, स्याद्वाद, प्रमाण, प्रमेय, नय, सर्वज्ञसद्भाव, जीवतत्त्व, उत्पाद ध्रौव्यात्मक वस्तुतत्त्व, दैववाद, पौरुषवाद, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष हेयतत्त्व, उपादेय तत्त्व आदि को भलीभांति समझकर आत्मकल्याण कर सकें, इस भावना के साथ मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा आप्तमीमांसा वृत्ति का यह हिन्दी अनुवाद किया गया है। अनुवाद में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञ पाठक उसमें संशोधन कर मुझे अवगत कराने की कृपा करें।

डॉ. सूरजमुखी जैन
मुजफ्फरनगर

श्री वीतरागाय नमः

श्री समन्तभद्र स्वामि विरचिता

आप्तमीमांसा

(श्री समन्तभद्र स्वामी द्वारा रचित आप्तमीमांसा)

श्री वसुनंदिसैद्धान्तिक विरचिता वृत्त्या सहिता।

(वसुनन्दी सैद्धान्तिक द्वारा लिखी गयी वृत्ति सहित)

सार्वश्री कुलभूषणं क्षतरिपुं सर्वार्थसंसाधनं
सन्नीतेरकलङ्क भावविधृतेः संस्कारकं सत्पथम्।
निष्णातं नयसागरे यतिपतिं ज्ञानांशु सद्भास्करं
भेत्तारं वसुपालभावतमसो वन्दामहे बुद्धये।।१।।

सबका हित करने वाले,मोक्ष लक्ष्मी के कुल को सुशोभित करने वाले, कर्म रूपी शत्रु को नष्ट कर दिया है जिन्होंने, सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले,निर्मल भाव वीतराग भाव को धारण करने वाले,समीचीन नीति से सन्मार्ग का संस्कार करने वाले, नय रूपी सागर के पारगामी, आठों कर्म रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले, ज्ञान रूपी किरणों से युक्त सूर्य, अर्हन्त भगवान को समीचीन बोध के लिए नमस्कार करता हूँ।।१।।

लक्ष्मीभृत्परमं निरुक्ति निरतं, निर्वाणसौख्यप्रदं
कुज्ञानातपवारणाय विधृतं छत्रं यथा भासुरम्।
सज्ज्ञानैर्नययुक्तिमौक्तिकफलैः संशोभमानं परं
वन्दे तद्धतकालदोषममलं सामन्तभद्रं मतम्।।२।।

ज्ञान लक्ष्मी को धारण करने वाले, श्रेष्ठ तत्त्वों की समीचीन व्याख्या करने में तत्पर, मोक्ष सुख को देने वाले, मिथ्याज्ञान रूपी आतप को दूर करने के लिये, ज्ञान ज्योतिरूपी छत्र को जिन्होने धारण किया है, सम्यक् ज्ञान के द्वारा नय और युक्तिरूपी मुक्तावली से अत्यधिक शोभायमान, काल के दुष्प्रभाव को जिसने नष्ट कर दिया है उस निर्मल - सब प्रकार से सबका कल्याण करने वाले, समन्तभद्राचार्य अथवा भगवान महावीर के मत को मैं नमस्कार करता हूँ।।२२।।

समीचीनासमीचीनोपदेशविशेषप्रतिपत्तये सकलदोषातीतानन्तचतुष्टय समेत प्रकटिताशेषद्रव्यपर्याय सामान्यविशेष परमात्मपरीक्षाभिधायकमसंख्या-तगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणोपायं, निराकृतसामान्यान्यापोहशब्दार्थगृहीतविद्वन्मनः सन्तोषकरम् परमार्थभूतवाच्यवाचकसम्बन्धमनेकसूक्ष्मार्थप्रतिपादनचटुलम् निःश्रेयसाभ्युदयसुखफलम्, स्वभक्तिसम्भारप्रेक्षापूर्वकारित्वलक्षणप्रयोजनवद्

गुणस्तवं कर्तुकामः श्रीमत्समन्तभद्राचार्यःसर्वज्ञं प्रत्यक्षीकृत्यैवमाचष्टे— हे भट्टारक! संस्तवो नाम माहात्म्यस्याधिक्यकथनम्। त्वदीयं च माहात्म्यमतीन्द्रियं मम प्रत्यक्षागोचरं, अतः कथं मया स्तूयसे?।।१।।

समीचीन और असमीचीन उपदेश विशेष को जानने के लिये, सम्पूर्ण दोषों से रहित, अनंत चतुष्टय सहित, सम्पूर्ण द्रव्यपर्याय तथा सामान्य विशेष को जिन्होंने प्रकट कर लिया है, परमात्मा की परीक्षा का कथन करने वाले, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा के उपायभूत, सामान्य और अन्यापोह शब्द के अर्थ का निराकरण करने वाले,विद्वानों के मन को संतुष्ट करने वाले, वास्तविक वाच्य वाचक सम्बंध से युक्त, अनेक सूक्ष्म अर्थ का प्रतिपादन करने में निपुण, मोक्षरूपी सुख के फल को प्रदान करने वाले, अपनी भक्ति सहित विचार पूर्वक सप्रयोजन गुणों की स्तुति को करने के इच्छुक श्रीयुत समन्तभद्राचार्य सर्वज्ञ के समक्ष इस प्रकार कहते हैं। हे भट्टारक महिमा को बढ़ा-चढ़ा कर कहना ही स्तुति है। आपका महत्त्व अतीन्द्रिय है। इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता, अतः मैं कैसे आपकी स्तुति करूँ।।१।।

अतः आह भगवान—ननु भो वत्स, यथाऽन्ये देवागमादिहेतोर्मम माहात्म्यमवबुध्य स्तवं कुर्वन्ति तथा त्वं किमिति न कुरुषे?।।२।।

तब भगवान कहते हैं कि हे बालक! देवों का आगमन आदि कारण से मेरे महत्त्व को जानकर अन्यजन स्तुति करते हैं। उसी प्रकार तुम क्यों नहीं करते।।२।।

अत आह,—अस्माद्धेतोर्न महान् भवान् मां प्रति, व्यभिचारित्वादस्य हेतोः, इति व्यभिचारं दर्शयति —।।३।।

तब आचार्य कहते हैं इस कारण से आप मेरे लिए महान नहीं हैं, इस हेतु के व्यभिचारी होने से, इसी व्यभिचार को दिखाते हैं।।३।।

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्।।१।।

देवास्त्रिदशास्तेषां स्वर्गावतरण जन्मनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्ति मुक्ति—गमनस्थानेषु आगमनम् आगमः अवतारः देवागमः। नभसि गगने हेममयाम्भोजोपरि यानं नभोयान् चामरादीनि चतुःषष्टिचामराणि। आदिशब्देन अशोकवृक्षसुरदुन्दुभिसिंहासनादीनि परिगृह्यन्ते, एतेषां द्वन्द्वः। विभूतयः। मायाविष्वपि इन्द्रजालेष्वपि दृश्यन्ते उपलभ्यन्ते न अतः न अस्मात्। त्वमसि त्वं भवसि। नः अस्माकं महान् गुरुः। किमुक्तं भवति, देवागमादिहेतोर्नास्माकं भवान् गुरुर्भवति, यतो देवागमादयः पूरणादिष्वपि दृश्यन्ते। यतो अनैकान्तिको हेतुः।।४।।

स्वर्गवासीदेवों का गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान की उत्पत्ति तथा मोक्षगमन के समय आना, पृथ्वी पर अवतरित होना देवागम, आकाश में स्वर्णकमलों के ऊपर गमन नभोयान, चौंसठ प्रकार के चमर आदि शब्द से अशोक वृक्ष, देवदुन्दुभि, सिंहासन आदि ग्रहण किए जाते हैं। इन सभी का द्वन्द्व समास है, विभूतियां जादूगरों में भी देखी जाती हैं। इस कारण से नहीं आप हो हमारे लिए महान, क्या कहा गया है - देवागम आदि कारणों से आप हमारे लिए महान नहीं हो। क्योंकि देवागमादि हेतु जादूगर में भी देखे जाते है, अतः देवागमादि हेतु व्यभिचारी है।।४।।

अथ मतम्। अयं तर्हि हेतुबर्हिरन्तरङ्गलक्षणो महोदयः पूरणादिष्वसम्भवी इत्ययमपि व्यभिचारी, तथैव प्रतिपादयति–।।५।।

यदि यह कहो तव यह अंतरंग और बहिरंग लक्षण महोदय हेतु जादूगर आदि में असम्भव हैं। आचार्य कहते हैं कि यह हेतु भी व्यभिचारी है। वही बताते हैं -

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः।।२।।

आत्मनि अधि अध्यात्म। सः अन्तः। क्षुत्पिपासाजरारुजापमृत्य्वाद्यभाव इत्यर्थः। बहिरपि बाह्योऽपि। एषः प्रत्यक्षनिर्देशः। विग्रहो दिव्यशरीरमादिर्येषां तान्येव वा महोदयः, विभूतेः पूर्वावस्थाया अतिरेकोऽतिशयो वा विग्रहादिमहोदयः अमानुषातिशय इत्यर्थः। दिवि भवो दिव्यः। सत्यः अवितथः मायास्वरूपो न भवति। दिवि ओकः अवस्थानं येषां ते दिवौकसः नाकसदनाः, तेष्वपि दिवौकस्स्वपि। अथवा दिवशब्दः अदन्तेनेष्टव्यः। रागो लोभमायेत्यादिर्येषां द्वेषादीनां ते रागादयः, ते सन्ति येषां ते रागादिमन्तः तेषु रागादिमत्सु अक्षीणकषायेष्वित्यर्थः। सः महोदय इति। अयं महोदयो यद्यपि समासेऽन्तर्भूतस्तथापि अध्यात्ममहोदय इति सम्बन्धः कर्त्तव्यः, अन्यस्य श्रुतत्वात्। अथवा बहिर्विग्रहादि महोदयः अध्यात्मं च। किमुक्तं भवति–योऽपि विग्रहादिमहोदयो मायाविष्वसम्भवी हेतुत्वेनोपन्यस्तः सोऽपि व्यभिचारी। स्वर्गिषु सम्भवात्।।६।।

आत्मा के अंदर होने वाला अध्यात्म है, वह अंतरंग है। क्षुधा, तृपा, जरा, रोग, अपमृत्यु आदि का अभाव यह तात्पर्य है, बाहरी भी यह प्रत्यक्ष निर्देश है। दिव्य शरीर हैं आदि में जिनके वे महोदय अतिशय विभूति से पूर्व अवस्था का अतिरेक अथवा अतिशय शरीरादि की महानता मनुष्यों में न होने वाला अतिशय, स्वर्ग में होने वाला सत्य है। मायास्वरूप नहीं है। स्वर्ग में रहने वाले उन देवों में भी अथवा दिव् शब्द को अदन्त माना जाना चाहिए। राग, लोभ, माया, द्वेषादि जिनके हैं वे रागादिमान हैं।

उन रागादि वालों में कषाय सहित के भी यह भाव हुआ। वह अंतरंग और बहिरंग महोदय, यह महोदय शब्द यद्यपि विग्रहादि के साथ समास में गर्भित है तो भी अध्यात्म महोदय यह सम्बंध करना चाहिए, बहिरंग के श्रुत होने से बाह्य शरीरादि की विभूति तथा अंतरंग क्षुधादि का अभाव। क्या कहा गया है जो विग्रहादि महोदय मायावियों में नहीं होने के कारण बताये गये हैं वह भी व्यभिचारी हैं। स्वर्गवासियों में होने के कारण।

द्वयोर्हेत्वोरनैकान्तिकत्वं प्रदर्श्य अन्यैर्यस्तीर्थकरत्वेनोपन्यस्तस्तस्य हेतोरसाधकत्वं सर्वासर्वज्ञत्वं प्रदर्शयन्नाह – ।।७।।

दोनों हेतुओं को व्यभिचारित्व दिखाकर अन्य लोगों के द्वारा जो तीर्थंकरत्व के कारण बताया गया है, उस हेतु की असाधकता सभी के सर्वज्ञपने का अभाव दिखाते हुए कहते हैं।।७।।

तीर्थकृत्समयानां च परस्पर विरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः।।३।।

तीर्थं संसारनिस्तरणोपायं करोतीति तीर्थकृत्। यतस्तीर्थकृत् भवान् अतः सर्वज्ञः। इत्ययमपि हेतुरनैकान्तिकः, सुगतादिषु दर्शनात्, इत्यनुक्तोपि द्रष्टव्यः।।८।।

तीर्थ को अर्थात् जो संसार को पार करने का उपाय करता है, वह तीर्थकृत है, आप तीर्थकृत हैं इसीलिए सर्वज्ञ हैं। यह हेतु भी व्यभिचारी है, बुद्ध आदि में भी देखे जाने से सुगतादिषु दर्शनात् यह अनुक्त होने पर भी द्रष्टव्य है।।८।।

अस्मिन्नवसरे वैनयिकः प्राह–इष्टमस्माकं सर्वेषां सर्वज्ञत्वं। अत आह– समयानां च परस्परविरोधतः अन्योऽन्यविसंवादात्सर्वेषामाप्तता नास्ति, विश्वेषां सर्वज्ञत्वं न भवति। अथवा तीर्थकरत्वात्सर्वज्ञो न भवति, सुगतादिषु दर्शनात्। अतः सर्वे सर्वज्ञाः सन्तु, इत्येतत्सर्वमुक्त्वा पश्चादिदं वक्तवयं सर्वेषामाप्तता नास्ति। कुतः, यतस्तीर्थकृतां तत्समयानां च परस्पर विरोधात् स्वरूपपदार्थ विवाददर्शनात्।।६।।

इस अवसर पर वैनयिक कहते हैं हमें सबको सर्वज्ञ मानना इष्ट है। आचार्य कहते हैं सिद्धान्तों में परस्पर विरोध है, अतः सभी सर्वज्ञ नहीं हो सकते। संसार को पार करने का उपाय बताने वाला होने से सर्वज्ञ नहीं होता, सुगतादि में भी तीर्थकृत हेतु देखा जाने से तीर्थकृत होने के कारण सभी सर्वज्ञ हो जायेंगे, ऐसा कहकर पश्चात् यह कहना चाहिए कि सभी को आप्तता नहीं हो सकती। क्यों? क्योंकि तीर्थ करने वाले

लोगों के सिद्धान्तों में परस्पर विरोध होने से अपने स्वरूप और पदार्थ के सम्बंध में विवाद देखा जाने से।।६।।

अत्रावसरे सर्वज्ञाभाववादी प्राह–सत्यं युक्तमेव, न कश्चित् सर्वदर्शी, इति। अत आह– कश्चिदेव कोऽप्येव तेषां मध्ये भवेत् स्यात् गुरुः महान् स्वामी। किमुक्तं स्यात् न सर्वेषामाप्तता परस्परविरोधात्समयानामागमानाम्। एकोऽपि न भवति प्रमाणाभावात्। अतः केनचिदेव भवितव्यम्। एवमत्यन्ताभावाभावः कृतः। यदि परस्परविरोधात्सर्वज्ञत्वभावो न भवति, तर्हि येषां सर्वज्ञविच्छेदकः सम्प्रदायस्तेषामाप्तता स्यात्, अत आह– तीर्थकृदित्यादि। तीर्थं सर्वज्ञं कृन्तन्ति छिन्दन्ति इति तीर्थकृतः समया आम्नायाः सम्प्रदाया येषां ते तीर्थकृत्समयास्तेषां अन्योऽन्यविरोधात्। सर्वं निरवशेषं अवगतं अगम्यावगमनं वा इच्छन्ति अभ्युपगच्छन्ति इति सर्वेषां। तेषां सर्वेषां आप्तता परमार्थवादित्वं नास्ति न विद्यते। अतः, कः आत्मजीवः चित् चेतनोऽचेतनो, न भवति। एवकारः अवधारणार्थः। भवं संसारं यान्ति गच्छन्ति इति भवेतः, तेषां भवेतां शक्रचक्रधरादीनामित्यर्थः। गुरुर्नाथः। भवेद्गुरुः भवेतां गुरुः। न च लब्धात्मस्वरूपाणां। किमुक्तं भवति– तीर्थकृच्छेदकाम्नायानामपि सर्वमेकेन प्रमाणेनषड्भिः(र्वा) अभ्युपगच्छतां आप्तता नास्ति, परस्परविरोधात्। अतो यतिपतिरेव स्यान्नान्यः।।१०।।

इस अवसर पर सर्वज्ञ का अभाव मानने वाले कहते हैं ठीक है कोई सर्वज्ञ नहीं है। आचार्य उत्तर देते हैं उन में कोई ही महान् या गुरू हो सकता है, क्या कहा जाना चाहिए शास्त्रों के परस्पर विरूद्ध होने से सबको आप्तता नहीं हो सकती। प्रमाण का अभाव होने से एक भी आप्त नहीं है। अतः किसी को होना ही चाहिए। इस प्रकार सर्वज्ञ के अन्यन्ताभाव का अभाव किया गया है। यदि परस्पर विरोध होने से सर्वज्ञत्व नहीं होता तो जिनका सम्प्रदाय सर्वज्ञ का विरोधी है उन्हीं को आप्तता हो जायेगी। इसीलिये तीर्थकृत आदि कहा है। जो सर्वज्ञ का विरोध करने वाले हैं उनका आम्नाय, सम्प्रदाय तीर्थकृत्समय है उनमें परस्पर विरोध होने से जो अशेष को अगम्य को भी जानना चाहते हैं वे सर्वेश हुए। उन सभी को आप्तता परमार्थवादिता नहीं है। क्यों? कोई आत्मजीव चेतन सर्वज्ञ नहीं होता; होता ही है। यहाँ एव का प्रयोग निश्चयार्थ में हुआ है। जो संसार में भ्रमण करते हैं वे भवेत हैं उन इन्द्र चक्रवर्ती आदि का यह अर्थ है गुरू संसार भ्रमण करने वालों का गुरू आत्म स्वरूप को मोक्ष को प्राप्त कर लेने वालों का नहीं। क्या कहा गया है? एक प्रमाण से अथवा छः प्रमाणो से सर्वज्ञ का भाव मानने वालों को भी सर्वज्ञता नहीं है, परस्पर विरोध होने से। अत

यतिपति अर्हन्त भगवान ही सर्वज्ञ हैं, अन्य नहीं।।१०।।

भावार्थ - संसार को पार करने का उपाय बताने वाले कितने ही आम्नाय हैं, उन सभी आम्नाय को बनाने वाले सर्वज्ञ नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें परस्पर विरोध देखा जाता है। किन्तु कोई सर्वज्ञ नहीं है यह कहना भी ठीक नहीं है। कोई न कोई सर्वज्ञ अवश्य है जो संसारी जीवों को सन्मार्ग बताने वाला है।

पूर्वकारिकोपात्तमर्थं समर्थयन्सुपुष्कलहेतुमाह– ।।११।।

पूर्व कारिका के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का समर्थन करते हुए सर्वोत्तम हेतु कहते हैं ।।११।।

दोषावरणयोर्हानि र्निशेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः।।४।।

दोषः अज्ञानादि, कार्यरूपं। आवरणं कारणभूतं कर्म। अथवा मोहान्तराया दोषाः ज्ञानदर्शनावरणे आवरणं। तयोर्हानिर्विनाशो विश्लेषो दोषावरणयोर्हानिः सिद्धसाधनतानिराकरणार्थं निःशेषा समस्ता समूलतप्रहाणिः इत्युक्तं । अस्ति भवति।अतिशायनात् प्रकृष्यमाणाज्ञानहानेः पूर्वावस्थातिरेकात्। क्वचित् कस्मिंश्चित्पुरुषविशेषे। यथा शब्दः दृष्टान्त प्रदर्शकः स्वस्यः आत्मनो हेतवः कारणानि ते तथाभूतास्तेभ्यः स्वहेतुभ्यः। बहिः किट्टकादिकम् अभ्यन्तरं कालिमादि तच्च तन्मलं च तस्य क्षयो विगमः विश्लेषः बहिरन्तर्मलक्षयः। एतदुक्तं भवतिकस्मिंश्चिदतिशायनाद्दोषावरण–योर्हानिरस्ति। यथा धातुपाषाणस्य अन्तर्मलक्षयः। स कश्चिद्भवत्येव गुरुरिति सम्बंधः। एकत्र स्वहेतवः सम्यग्दर्शनादयः। अन्यत्र पिण्डीबन्धनप्रयोगादयः। तथा एकत्र बहिर्मलः शरीरेन्द्रियादिकम् अन्तर्मलः कर्म। अन्यत्र बहिर्मलः किट्टकादिकं। अन्तर्मलः कालिमादिः।।१२।।

दोष अज्ञान आदि कार्य रूप हैं। आवरण कारणभूत कर्म हैं। अथवा अज्ञान और अंतराय आदि दोष हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण आवरण हैं, उन दोनों अज्ञान, अन्तराय तथा आवरणों का विनाश, पृथक होना दोषावरण की हानि है। सिद्ध साधनता का निराकरण करने के लिए निःशेष अर्थात् सम्पूर्ण हानि या विश्लेष कहा गया है। प्रकृष्टमान अज्ञान हानि होने से, पूर्वावस्था का अतिरेक होने से, किसी पुरुषार्थ विशेष में यथा शब्द दृष्टांत को बताने के लिए प्रयुक्त हुआ है। अपनी आत्मा के कारणों से बाह्य किट्टकादि और अंतरंग कालिमादि ये ही हुए, मल उनका क्षय, पृथक होना बहिरन्तर्मल क्षय है। तात्पर्य यह है कि किसी पुरुष विशेष में पूर्ण रूप से दोष तथा आवरणों की हानि या पृथककरण है। जैसे स्वर्ण आदि धातु के आन्तरिक मल का

विनाश होता है। ऐसा कोई विशेष पुरुष गुरु या महान ही होता है। एक जगह किसी पुरुष विशेष में स्वहेतु सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चारित्र हैं। अन्यत्र स्वर्णादि में अग्नि में तपाने आदि का कार्य है। एक जगह पुरुष विशेष में बाह्यमल शरीर इन्द्रिय आदि तथा अन्तरंग मल कर्म हैं। स्वर्णादि में बाह्यमल कीचड़ आदि हैं और अन्तरंगमल कालिमा आदि हैं।।१२।।

भावार्थ- जैसे स्वर्णादि धातुओं का बाह्यमल कीचड़ आदि और अन्तरंगमल कालिमादि अग्नि में तपा कर नष्ट कर दिये जाते हैं उसी प्रकार कोई पुरुष सम्यक्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्र रूपी अपने ही कारणों से बाह्यमल शरीर इन्द्रिय आदि तथा अन्तरगमल ज्ञानावरणादि कर्मों का समूल विनाश कर देता है।

ननु विध्वस्तदोषोऽप्यात्मा कथं विप्रकर्षिणमर्थं प्रत्यक्षीकुर्यात्? (इति शंकायां) साधनान्तरस्य बाधकाभावस्य भावनिरूपणमाह —।।१३।।

शंकाकार कहते हैं कि दोषों को नष्ट कर देने पर भी कोई पुरुष कैसे व्यवहरित पदार्थों को प्रत्यक्ष देखता है? इस प्रकार की शंका होने पर अन्य किसी बाधक हेतु का अभाव दिखाते हुए कहते हैं - ।।१३।।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः।।५।।

सूक्ष्माः स्वभावविप्रकृष्टाः। अन्तरिताः कालविप्रकृष्टाः। दूराः देशविप्रकृष्टाः। ते च ते अर्थाश्च सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः। तथा च स्वभाव विप्रकृष्टा मन्त्रौषधिशक्ति चित्तादयः। काल विप्रकृष्टाः लाभालाभसुखदुःख– ग्रहोपरागादयः। देशविप्रकृष्टा मुष्टिस्थादिद्रव्यम्। दूरा हिमवन्मन्दर मकराकरादयः। प्रत्यक्षाः अध्यक्षाः प्रत्यक्षज्ञानगोचराः कस्यचित्। सामान्यकथनमेतत्। अनिर्दिष्टनाम– धेयस्य। यथा दृष्टान्तप्रदर्शकः। अनुमेयाः अनुमानगम्याः। अथवा अनुगतं मेयं मानं येषां ते अनुमेयाः प्रमेया इत्यर्थः। तेषां प्रमाणं भावस्तस्मादनुमेयत्वतः। अग्निः पावकः आदिर्यस्यासावग्न्यादिः। इत्येवमनेन प्रकारेण सर्वज्ञस्य विश्वदर्शिनः संस्थितिर्व्यवस्था सर्वज्ञसंस्थितिः सर्वज्ञास्तित्व मित्यर्थः भागासिद्धानैकांति वि प्रमेयास्ते ते प्रत्यक्षाः यथा अग्न्यादय। प्रमेयाश्च स्वभावकाल देशविप्रकृष्टा अर्थाः कस्यचित्पुरुषविशेषस्य तस्मात्तेऽपि प्रत्यक्षाः। अथवा ये अनुमानगम्यास्ते प्रत्यक्षाः कस्यचित्, यथा अग्न्यादयः। अनुमानगम्याश्च सूक्ष्मान्तरितदूरार्थास्तस्मात्तेऽपि प्रत्यक्षाः। सुनिश्चितासम्भवबाधकप्रमाणस्य समर्थनमेतत्।।१४।।

सूक्ष्म स्वभाव से व्यवहित, अन्तरित काल से व्यवहित, दूर देश से व्यवहित, वे पदार्थ सूक्ष्मान्तरित दूरार्थ हैं। स्वभाव से व्यवहित मन्त्र औषधि आदि की शक्ति तथा चित्त आदि हैं। काल से व्यवहित लाभ-अलाभ तथा सुख दुःख आदि के कारण रागादि भाव हैं। देश से व्यवहित मुट्ठी आदि में रखे हुए पदार्थ हैं। दूरवर्ती हिमालय पर्वत, मन्दारपर्वत तथा समुद्र आदि हैं। किसी पुरुष विशेष के प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय हैं। यह सामान्य कथन है। किसी का नाम निर्देश नहीं किया गया है, यथा शब्द दृष्टान्तवाची है, अनुमेय हैं अर्थात् अनुमान से जाने जाते हैं। अथवा जिनका मान (प्रमाण) जाना गया है। वे अनुमेय या प्रमेय हैं। उनका भाव होने से अनुमेयपना होने से अग्नि है आदि में जिसके वह अग्न्यादि इस प्रकार से सर्वज्ञ की सिद्धि हो जाती है। सर्वज्ञ का अस्तित्व सिद्ध होता है, यह अर्थ हुआ अनुमेयत्व हेतु में भागासिद्ध अनैकान्तिक और विरूद्ध आदि हेत्वाभास का अभाव होने से जो जो प्रमेय हैं वे भी प्रत्यक्षः हैं जैसे अग्नि आदि। अथवा जो अनुमान से जाने जाते हैं वे भी किसी के प्रत्यक्षः है जैसे अग्नि आदि। स्वभाव काल तथा देश व्यवहित पदार्थ अनुमानगम्य हैं। अतः वे भी प्रत्यक्ष हैं। किसी भी बाधक प्रमाण का अभाव होने से यह सुनिश्चित समर्थन है।।१४।।

भावार्थ :– स्वभाव से व्यवहित, अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ परमाणु आदि तथा मन्त्र औषधि आदि की शक्ति, चित्त आदि तथा काल से व्यवहित रागादि भाव या राम, रावण आदि देश से व्यवहित मुट्ठी आदि मे रखे हुए पदार्थ तथा दूरवर्ती हिमालय, मन्दारपर्वत तथा समुद्र आदि भी किसी पुरुष विशेष के प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय हैं। अनुमेय होने से अथवा प्रमेय (प्रमाण का विषय) होने के कारण जैसे पर्वत पर धुआं देख कर अग्नि का अनुमान किया जाता है, यह अनुमान तभी संभव है जब किसी ने प्रत्यक्षरूप से धुआं और अग्नि के सम्बंध को देखा हो। इस प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना धुएं से अग्नि का अनुमान नहीं हो सकता। उसी प्रकार सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों को अनुमान से तभी जाना जा सकता है जब किसी ने उनको प्रत्यक्ष देखा हो। अथवा प्रमेय होने के कारण भी उक्त पदार्थ किसी पुरुष के प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय अवश्य हैं। जो जो प्रमेय हैं वे किसी न किसी के ज्ञान के विषय अवश्य हैं।

विगतकर्मकलङ्कोऽपि विप्रकृष्टार्थदर्शी सामान्येन यः प्ररूपितः स कः इति विशेषं दर्शयन्नाह– ।।१५।।

कर्मकलङ्क से रहित तथा व्यवहित पदार्थों को प्रत्यक्ष देखने वाला कौन है? इस विशेष बात को बताते हुए कहते हैं।।१५।।

**स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ।।६।।**

स पूर्वप्रकान्तः तच्छब्दः पूर्वप्रकान्तदर्शी त्वमेव भवानेव नान्यः। अन्ययोगव्यवच्छेदफल एवकारः। असि भवसि। निर्दोष अविद्यारागादिवि—रहितः क्षुधादिविरहितो वा अनन्तज्ञानादि सम्बन्धेन इत्यर्थः। कुत एतत्। युक्ति शास्त्राविरोधि वाक् यतः। युक्ति अनुमानं न्यायः तत्सहोच्चरितं अध्यक्षमपि शास्त्रं आगमः स्याद्वादः ताभ्यां अविरोधिनी अविसंवादिनी वाक् वाणी वचनं यस्यासौ युक्ति शास्त्राविरोधिवाक्। बहिर्व्याप्तिमन्तरेणान्त र्व्यप्त्यासिद्धं। यतः इयमेवान्यत्रापि प्रधाना।।१६।।

वह पूर्व प्रकार से वर्णित आप ही हैं, अन्य नहीं। एव का प्रयोग अन्य किसी का निराकरण करने के लिए हुआ है। दोष रहित, अविद्या, रागादि से रहित अथवा क्षुधा आदि अठारह दोषो से रहित अनन्त ज्ञानादि के सम्बंध से यह अर्थ हुआ। यह कैसे? क्योंकि आपकी वाणी युक्ति और शास्त्र के अविरूद्ध है। युक्ति अनुमान अथवा न्याय उसके साथ प्रत्यक्ष भी शास्त्र, आगम या स्याद्वाद है उन दोंनो युक्ति और शास्त्र से जिसकी वाणी का विरोध नहीं है। वह युक्ति शास्त्रा विरोधिवाक् है। बाह्यव्याप्ति के बिना अन्तर्व्याप्त नहीं होती। क्योंकि यही अन्यत्र भी प्रधान है।।१६।।

ननु वचनस्य अविरोधः कुतः, यावत् यत्र वचनं तत्र विरोधां दृश्यते। अत आह—अविरोधः अविसंवादः । यत् यस्मात्। इष्टं मतं प्रवचनम्। कुतो वीतरागस्य इच्छा? उपाचारेण, सयोगिध्यानवत्। इष्टशब्दस्यापि जहत्स्वार्थे वृत्तित्वात् कुशलशब्दवत्। ते तव। प्रसिद्धेन परमतापेक्षं विशेषणमेतत् (परमतेन) अनेकान्तवस्तुत्वेन। अथवा व्यवहिताव्यवहितप्रसिद्धलक्षणवता प्रमाणेन। न बाध्यते अन्यथा न क्रियते तेनैव स्वरूपेण दृश्यत इत्यर्थः। किमुक्तं भवति। यो निर्दोषो विप्रकृष्टदर्शी च स त्वमेव भवसि। न्यायागमाविसंवादिवचनम्। यतः अविरोधोऽपि तव मतं न बाध्यते प्रसिद्धेन यस्मात्।।१७।।

शंकाकार कहते हैं कि वचन का अविरोध कैसे है? क्योंकि वचन जहाँ भी हैं वहीं विरोध देखा जाता है। इसीलिए कहा है विरोध नहीं हैं, विसंवाद नहीं है। क्योंकि आपका जो अभीष्ट मत है, प्रवचन है। प्रश्न उठता है कि वीतराग के इच्छा कैसे? आचार्य कहते हैं उपचार से सयोग केवली के ध्यान के समान, इष्ट शब्द को भी अपने वाच्य अर्थ को छोड़कर प्रवृत्त होने से कुशल शब्द के समान। जैसे कुशल शब्द अपने अर्थ को छोड़ते हुए निपुण अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार इष्ट शब्द इच्छा/अर्थ

को छोड़कर मत या प्रवचन अर्थ में प्रयुक्त है। आपका अभिमत मोक्ष, संसार तथा उनके कारणों के विषय में अनेकान्तात्मक होने के कारण अन्य मतों के द्वारा अथवा व्यवहित और अव्यवहित प्रसिद्ध लक्षण वाले प्रमाण से बाधित नहीं है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता। आपने जैसा कहा है यह अर्थ है, क्या कहा गया है तो दोष रहित हैं और स्वभाव, काल तथा देश से व्यवहित पदार्थों के दृष्टा हैं, वह आप ही हैं अनुमान और आगम से आपके वचन विरोध रहित हैं। अविरोध भी है, क्योंकि आपका मत किसी प्रमाण से बाधित नहीं है।।१७।।

भावार्थ :– हे अर्हन्त भगवान्! सम्पूर्ण दोषों से रहित तथा सर्वज्ञ आप ही हैं, आपकी वाणी अनुमान तथा आगम से विसंवाद रहित है। मोक्ष संसार तथा उनके कारणों के विषय में आपका मत अनेकान्तात्मक होने के कारण न तो किसी प्रमाण से बाधित है और न परवादी, एकान्तवादियों के द्वारा ही खंडित किया गया है।

ननु भो वत्स, मदीयं मतं न बाध्यते, अन्येषां किं बाध्यते? अत आह– ।।१८।।

हे वत्स मेरा मत बाधित नहीं है, अन्य लोगों का कैसे बाधित है? अतः आचार्य कहते हैं-।।१८।।

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम्।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते।।७।।

त्वद्युष्मन्मतमेव आगम एव अमृतं सर्वात्मप्रदेशसुखकारणं दुःखनिवृत्ति–लक्षणस्य परमानन्दमुक्तिसुखस्य निमित्तं वा मतं अमृतं तस्माद्बाह्याः बहिर्भूता मिथ्यादृष्टयः त्वन्मतामृतबाह्यायाः तेषां त्वन्मतामृतबाह्यानां युष्मदागमद्विषतां। सर्वथा सर्वप्रकारैः स्वरूपपररूपविधिप्रतिषेधात्मकैः एकान्तं एकं धर्मं नित्यत्वादिकमेव वदितुं शीलं येषां ते सर्वथैकान्तवादिनः तेषां सर्वथैकान्तवादिनां एकस्वभावाभ्युपगच्छताम्। आप्तः सर्वज्ञः इति अभिमानः गर्वः अहंकारः तेन दग्धाः भस्मसात्कृताः प्रलयं नीताः तेषां आप्ताभिमानदग्धानाम्। स्वस्य आत्मनः इष्टं मतं स्वेष्टं आत्माभ्युपगत–प्रमाणफलं सर्ववस्तु। दृष्टेन प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षप्रमितेन अनेकान्तात्मवस्तुना वा। बाध्यते विरोधमुपनीयते अन्यथा क्रियत इत्यर्थः। किमुक्तं भवति भवदागमबाह्या आप्ताभिमानदग्धा सर्वथैकान्तवादिनः तेषां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते। धर्मकीर्त्तिमतनिरासार्थं अन्वयव्यतिरेकावुक्तवानाचार्यः। द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकानुग्रहार्थं वा।।१६।।

आपका आगम ही अमृत है, सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों को सुख का कारण और दुःख को दूर करने वाले परमानन्दस्वरूप मोक्ष सुख का कारण जो मत है, वही अमृत है।

उससे बाहर मिथ्यादृष्टि हैं जो आपके मतरूपी अमृत से बाहर हैं उनके जो आपके मत से भिन्न हैं, आपके आगम के विरोधी हैं, जो सब प्रकार से स्वरूप और पररूप से खण्डन तथा मंडन के द्वारा एक ही धर्म नित्यत्वादि को कहने का स्वभाव है जिनका वे सर्वथा एकान्तवादी हैं, उन सर्वथा एकान्तवादियों के वस्तु को एक स्वभाव वाला मानने वालों के जो सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी अपने को सर्वज्ञ मानकर अभिमान करते हैं, उस अभिमान से दग्ध हुए अर्थात् नष्ट हुए लोगों के अपना अभीष्ट मत स्वयं का माना हुआ प्रमाणित वस्तु स्वरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से अथवा अनेक धर्मवाली वस्तु से विरोध को प्राप्त होता है, अन्यथा सिद्ध किया जाता है, क्या कहा जाता है? आपके आगम से भिन्न, जो आप्त न होते हुए भी अपने को आप्त मानने के अभिमान से दग्ध हैं, एकान्तवादी हैं उनका अपना अभिमत प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। आचार्य ने धर्मकीर्ति के मत का निराकरण करने के लिए अन्वय और व्यतिरेक का कथन किया है अथवा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथन किया है। धर्मकीर्ति का मत है कि अन्वय और व्यतिरेक में से किसी एक का ही कथन करने से अर्थ का ज्ञान हो जाता है, दोनों के प्रयोग को वे दोष मानते हैं।।१६।।

भावार्थ :- हे भगवन! आपका मत अनेकान्तवाद अमृत है, जो सब प्रकार से सुख देने वाला है, आपके मत अनेकान्तवाद के जो विरोधी हैं, सर्वथा एकान्तवाद के समर्थक हैं और स्वयं सर्वज्ञ न होते हुए भी अपने को सर्वज्ञ मानकर गर्व करते हैं, उनके द्वारा जो वस्तु का स्वरूप माना गया है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। (क्योंकि वस्तु अनेकान्तात्मक हैं)

परवादिस्वेष्टस्य दृष्टेन बाधां प्रदर्श्य इदानीं स्वेष्टेन स्वेष्टस्य बाधां दर्शयितुमाह– ।।२०।।

परवादियों के मत को प्रत्यक्ष से बाधित दिखाकर अपने ही मत के द्वारा अपने मत की बाधा दिखाने के लिये कहते हैं।।२०।।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ।।८।।

कुशलं सुखनिमित्तं, अकुशलं दुःखहेतुकं,कर्म मिथ्यात्वासंयमकषाय–योगकारणसंचितपुद्गलप्रचयः। कुशलं चाकुशलं च कुशलाकुशलं कर्म शुभाशुभमित्यर्थः। परलोकोभवान्तरगतिरन्यजन्म। च शब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन तत्फलबन्धमोक्षेहलोकादयो गृह्यन्ते। न शब्दः प्रतिषेधार्थः। क्वचित् केषुचित्। एकः एवान्तो धर्मः एकान्तः तस्य ग्रहणमभ्युपगमो ग्रहः एकान्तग्रहः तस्मिन् तेन वा रक्ता रञ्जिताः प्रविष्टाः भक्ता एकान्तग्रहरक्ताः। अथवा ग्रह

इव ग्रह: तेन व्याकुलिता: तेषु एकान्तग्रहरक्तेषु। नाथ स्वामिन्, श्रद्धावचनमेतत्। स्वश्चात्मा च परे चान्ये च स्वपरे तेषां वैरिण: शत्रव: तेषु स्वपरवैरिषु। किमुक्तं भवति– हे नाथ अर्हन् एकान्तग्रह रक्तेषु स्वपरवैरिषु केषुचिदपि शुभाशुभं कर्म नास्ति। परलोकादयश्च न सन्ति। एकान्ततत्त्वग्रहणात्। यद्यपि पक्षान्तर्भूतो हेतुस्तथापि पृथग्दृष्टव्य:। अन्तर्व्याप्तिसंग्रहात्। न केवलमेकान्तवादे कुशलाकुशलादिकं कर्म न घटते किंतु प्रमाणप्रमेय पक्षविपक्ष हेतुहेत्वाभासदूषणदूषणाभासादिकमपि सर्वथार्थक्रियायोगात्।।२१।।

कुशल जो सुख का कारण है, अकुशल दु:ख का कारण। कर्म, मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के कारण संचित पुद्गल समूह कुशल और अकुशल कर्म अर्थात् शुभ और अशुभ कर्म परलोक अन्य गति में जन्मग्रहण च शब्द से जो नहीं कहा गया है, वह ग्रहण किया जाता है। अत: च शब्द से बन्ध, मोक्ष, इहलोक आदि ग्रहण किए जाते हैं। न शब्द प्रतिषेध के लिए है, एक ही है एक धर्म, वह एकान्त है उसको मानना, ग्रहण करना एकान्तग्रह है। उसमें जो अनुरक्त हैं, या उसके जो भक्त हैं वे एकान्त ग्रहरक्त हैं। अथवा ग्रह के समान ग्रह, एकान्त ही ग्रह एकान्त ग्रह, उससे पीड़ित-व्याकुलित उनके यहाँ हे स्वामी! यह श्रद्धा युक्त संबोधन है। जो स्व और पर के अर्थात् अपने और दूसरों के भी बैरी हैं, उनके यहाँ क्या कहा गया है, हे नाथ, हे अर्हन्त भगवान जो एकान्त के हठग्राही हैं, वे अपने तथा दूसरों दोनों के शत्रु हैं, उनके किसी के यहाँ कोई शुभ अथवा अशुभ कर्म नहीं हैं। परलोक आदि भी नहीं हैं। एकान्त तत्त्व के ग्रहण करने के कारण एकान्ततत्त्वग्रहणात् यह हेतु पक्ष में ही है तो भी अलग से देखना चाहिए। अन्तर्व्याप्ति को ग्रहण करने से एकान्तवाद में न केवल शुभ और अशुभ कर्म ही घटित होते हैं किन्तु प्रमाण, प्रमेय, पक्ष, विपक्ष, हेतु, हेत्वाभास, दूषण और दूषणाभास आदि भी नहीं घटित होते। सर्वथा अर्थक्रिया नहीं होने से।।२१।।

भावार्थ – हे भगवन्! आपके मत के आपके मत का तो विरोध करते ही हैं। विरोधी जो एकान्तवाद के हठग्राही हैं, वे अपने तथा दूसरे दोनों के ही शत्रु हैं। क्योंकि वे अपने स्वयं के मत के भी विरोधी ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनके यहाँ न कोई शुभ और अशुभ कर्म घटित होते हैं न परलोक आदि। यही नहीं उनके यहाँ प्रमाण, प्रमेय, हेतु, हेत्वाभास, दूषण, दूषणाभास आदि कुछ भी घटित नहीं होते। इस प्रकार वे अनेकान्त के ही बैरी नहीं हैं स्वयं अपने भी बैरी हैं।

सामान्येनैकान्तवाद्यभ्युपगतस्य वाचं प्रदर्श्येदानीं दूषयितुमना: स्वल्पोऽपि शत्रुर्नोपेक्षणीय इति न्यायमनुसरन्प्रथमतरं तावद्भावैकान्तं भस्मसात्कर्तुमाह– ।।२२।।

सामान्यरूप से एकान्तवादियों द्वारा मानी गयी बात को दिखाकर अब एकान्तवाद को दूषित दिखाने की इच्छा से "अल्प शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए" इस न्याय का अनुशरण करते हुए पहले भावैकान्त का निराकरण करने के लिये कहते है।।२२।।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्।।९।।

भाव एवेति सन्नेवेति एकान्तः असहायधर्मग्रहो भावैकान्तः। सर्वथा सत्त्वाभ्युपगम इत्यर्थः। तस्मिन्भावैकान्ते। पदार्थानां पंचविंशतितत्त्वानां चेतनाचेतनदेवमनुजपशुनारकस्तम्भकुम्भाम्भःप्रभृतीनां वा अभावानां वस्तुधर्माणां हेत्वङ्गानां विशेषणमित्यर्थः। बहुवचनाच्चत्वारोऽपि परिगृह्यन्ते। अपहन्वान्निराकरणादित्यर्थः। किं स्यात्सर्वं निरवशेषमात्मा स्वरूपं यस्य तत्सर्वात्मकं विश्वमेकस्वरूपमित्यर्थः। आदिरुत्पत्तिः पूर्वस्मिन्नसत्त्वमन्तोऽव-सानं विनाशो वा। आदिश्चान्तश्चाद्यन्तौ तौ न विद्येते यस्य तदनाद्यन्तम-नाद्यनन्तमित्यर्थः। स्वमात्मीयं रूपमाकारः स्व आत्मैव वा-रूपं स्वरूपं न विद्यते तद्यस्य तदस्वरूपम्। अभाव इत्यर्थः। तवेदं तावकं न तावकमतावकं। किमुक्तं भवतिपदार्थानां भावैकान्ताभ्युपगमे अतावकं सर्वाद्यात्मकमनाद्यनन्तम-स्वरूपं स्यात। कस्मात्सर्वाभावापह्नवात्।।२३।।

भाव ही सद्भाव ही एकान्त है। अन्य धर्म के बिना एक मात्र धर्म का ग्रहण भावैकान्त है सर्वथा सत्त्व को ही मानना यह तात्पर्य है, उस भावैकान्त पक्ष में, पदार्थों के पच्चीस तत्त्वों के चेतन, अचेतन, देव, मनुष्य, पशु, नारकी, स्तंभ, कुंभ जल आदि के अभावों का, वस्तुधर्मों का, हेतुओं का यह विशेषण है। अभाव के बहुवचन में प्रयुक्त होने के कारण प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव चारों ही ग्रहण किए जाते हैं। निराकरण करने से यह अर्थ है। क्या होगा? सब एक स्वरूप हो जायेंगे। आदि से तात्पर्य है उत्पत्ति, उत्पत्ति से पूर्व में नहीं होना। अन्त, अवसान, विनाश, आदि और अन्त दोंनो जिसके नहीं हैं वह अनाद्यनन्त है। जिसका अपना कोई रूप नहीं है, वह अस्वरूप है, अभाव यह तात्पर्य है। आपके मत से भिन्न मत वाले, एकान्तमत वालों के यहाँ। क्या कहा गया है? पदार्थों के सद्भाव को ही एकान्तरूप से मानने पर आपके मत से भिन्नमत वालों के यहाँ प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव के नहीं होने से। सभी पदार्थ सर्वात्मक, अनादि, अनन्त और अस्वरूप हो जायेंगे। सभी अभावों का निराकरण हो जाने से।।२३।।

भावार्थ :– आपके मत से भिन्न मतवाले एकान्तवादी जो पदार्थों के सद्भाव को ही एकान्तरूप से मानते हैं, अभाव को नहीं मानते, उनके यहाँ प्रागभाव,प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव चारों प्रकार के अभाव के नहीं मानने से सभी पदार्थ सर्वात्मक, अनादि, अनन्त, और अस्वरूप हो जायेंगे।

अथ मतं केऽभावाः, कियन्तोवा, कान्यानाद्यनन्तानि? कस्मादभावात् किं स्यादत, आहः– ।।२४।।

यदि यह कहो कि अभाव क्या हैं? कितने हैं? अनादि अनन्त कौन हैं? किसके अभाव से क्या होगा? तब कहते हैं - ।।२४।।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत्।।१०।।

कार्यं च द्रव्यं च कार्यद्रव्यं वस्त्तवन्यथाभावः। घटादिकं क्रियत इति कार्यम्। अवस्थान्तरं द्रवति गच्छतीति द्रव्यम्। अनाद्यनन्तसर्वकालैकस्वरूपं नित्यमादिरहितं स्याद्भवेत्। प्राक् पूर्वस्मिन्नभावः असत्त्वं प्रागभावः। मृत्पिण्डे घटस्यासत्त्वमित्यर्थः। तस्य प्रागभावस्य निह्नवे विलोपे निराकरणे।प्रध्वसंस्य च विनाशस्य च घटस्य कपालनाशादय इत्यर्थः। धर्मस्य विशेषस्य गुणस्य। प्रच्यवे अभावे निराकरणे। अनन्तस्य भावोऽनन्तता तामनन्ततामपर्यवसानं सर्वकालकार्यमिति सम्बंधनीयम्। व्रजेत् गच्छेत्। किमुक्तं भवति– प्रागभावस्य निह्नवो यदि स्यात्कार्यद्रव्यमनादि स्यात्। प्रध्वंसाभावास्या– भावस्य चाभावे तदेव कार्यद्रव्यमनन्ततां व्रजेत्।।२५।।

कार्य तथा द्रव्य वस्तु का दूसरा रूप होना घटादि किये जाते हैं, अतः कार्य हैं। दूसरी अवस्था को प्राप्त होते हैं, अतः उन्हें द्रव्य कहते हैं। अनादि, अनन्त, सभी समय में एक रूप रहने वाले नित्य आदि रहित हो जायेंगे। पहले नहीं होना प्रागभाव है। मिट्टी के पिण्ड में घड़े का अभाव, यह तात्पर्य है, उस प्रागभाव का लोप करने पर प्रध्वंस के विनाश के अर्थात् घड़े के कपाल आदि विनाश रूप के यह तात्पर्य है। उस धर्म विशेष का अभाव होने पर अनन्त का भाव अनन्तता विनाश रहितता। सभी समय में एक सा होना, अन्तरहित होना समझना चाहिए। प्राप्त हो जायेगा, क्या कहा गया है? यदि प्रागभाव का निराकरण किया जायेगा तो सभी कार्य अनादि हो जायेंगे। प्रध्वंसाभाव के अभाव में वही कार्यद्रव्य अनन्तता को प्राप्त हो जायेंगे।।२५।।

भावार्थ :- यदि प्रागभाव को नहीं माना जायेगा तो सभी कार्य अनादि हो जायेंगे, मिट्टी में यदि घड़ा बनने से पूर्व घड़े का अभाव नहीं माना जायेगा तो घड़ा अनादि

हो जायेगा। क्योंकि मिट्टी में घड़े का अभाव नहीं माना जाता। प्रध्वंसाभाव के नहीं मानने पर घड़े के टूटने पर जो कपाल रूप हो जाता है, वह कभी नहीं होगा, घड़ा सदा घड़ा ही रहेगा। ये दोनों कार्य प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित हैं।

तृतीयचतुर्थाभावस्वरूपं तदभावे च यद्भवति– ।।२६।।

तृतीय चर्तुथ अभाव का स्वरूप और उसके अभाव में जो होता है।।२६।।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा।।११।।

सर्वो निरवशेषः आत्मा स्वरूपं यस्य तत् सर्वात्मकम्। तत् किंचिद्वस्तु विवक्षितरूपम्। एकं अभेदरूपं स्यात् भवेत्। अन्यस्य अपरस्य अपोहो निराकरणं तस्य व्यतिक्रमः। निह्नवः निराकृतिः स तथाभूतः तस्मिन्नन्यापोहव्यतिक्रमे इतरेतराभावाभावे इत्यर्थः। अन्यत्र अत्यन्ताभावा–भावे। समवायेन मीलनेन समुदायेन। व्यपदिश्येत कथ्येत अभ्युपगम्येत। सर्वथा सर्वप्रकारैः। खरविषाणादि। अथानयोरभावयोः को विशेष, इति चेत्, घटे पटाभाव इतरेतराभावः। कदाचित्कालान्तरे तत् तेन स्वरूपेण भवति शक्तिरूपेण विद्यमानत्वात्। अत्यन्ताभावः पुनर्जीवत्वेन पुद्गलस्याभावः कदाचिदपि तेन स्वरूपेण न भवति। एतदुक्तं भवति– अन्यापोहव्यतिक्रमे सति, किंचिद्विवक्षितं सर्वात्मकमेकं भवति। अत्यन्ताभावाभावे पुनरैक्येन सर्वप्रकारैर्व्यपदिश्येत। ततो न किंचित्स्यात्।।२७।।

सभी स्वरूप हैं जिसके वह सर्वात्मक है। वह कोई भी विवक्षित वस्तु एक रूप अभेदरूप हो जायेगी। अन्य का निराकरण अन्यापोह है। उस अन्यापोह का निराकरण करने पर इतरेतराभाव का अभाव होने पर अत्यन्ताभाव के अभाव में समुदाय रूप से मिले हुए रूप से मानना पड़ेगा। सब प्रकार से खर विषाण आदि का भी अस्तित्व मानना पड़ेगा। इन दोनों अभावों में क्या विशेषता है यदि यह कहते हो तो, घड़े में कपड़े का अभाव इतरेतराभाव है। किसी समय घड़े का कपड़े के स्वरूप से विद्यमान से पुनर्जीवत्वेन अत्यन्ताभाव जीवत्व में पुद्गलत्व का अभाव है। कभी भी जीव पुद्गलत्व रूप नहीं होता, यह कहा गया है। अन्यापोह का निराकरण करने पर कोई विवक्षित वस्तु सर्वात्मक एक रूप हो जायेगी। अत्यन्ताभाव का अभाव होने पर सभी वस्तु सभी प्रकार हो जायेगी। अतः वह कुछ भी नहीं रहेगी।।२७।।

भावार्थ :– अन्योन्याभाव-इतरेतराभाव घड़े में कपड़े का अभाव और कपड़े में घड़े का अभाव नहीं मानने पर घड़ा कपड़ा हो जायेगा और कपड़ा घड़ा। ऐसी स्थिति में कपड़े से घड़े का काम और घड़े से कपड़े का काम किया सकता है, किन्तु यह प्रत्यक्ष

के विरूद्ध है। अत्यन्ताभाव के नहीं मानने पर खरविषाणादि जो कभी होते ही नहीं। उनका अस्तित्व भी मानना पड़ेगा, जीव कभी पुद्गलत्व और पुद्गल कभी जीव रूप नहीं होते, किन्तु जीवत्व में पुद्गलत्व और पुद्गलत्व में जीवत्व भी मानना पड़ेगा।

भावैकान्तपक्षे कुशलाकुशलकर्मादेरघटनां प्रदर्श्य अभावैकान्तपक्षेऽपि भृशं न घटेतेति प्रदर्शयन्नाह–।।२८।।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम्।।१२।।

भावैकान्त में शुभ-अशुभ आदि कर्मों का अभाव दिखाकर अभावैकान्त पक्ष में भी क्या घटित नहीं होंगे, यह दिखाते हुए कहते हैं –।।२८।।

अभाव इति असन्निति एकान्तो मिथ्याभिप्रायोऽभावैकान्तः। स एव पक्षोऽभ्युपगमस्तस्मिन्नप्यभावैकान्तपक्षेऽपि। न केवलं भावैकान्ते, किं त्वभावैकान्तेऽपि भावस्य सत्त्वस्य अपह्नवः अभावो निराकरणं तं वदितुं शीलं येषां ते तथाभूतस्तेषां भावापह्नववादिनाम्। बोधो ज्ञानं स्वार्थानुमानं, वाक्यं आगमः परार्थानुमानं। बोधश्च वाक्यं च बोधवाक्यम्। प्रमीयतेऽनेनेतिप्रमाणं स्वपरावभासकं ज्ञानम्। न प्रतिषेधवचनम्। केन कतरेण। साधनं च दूषणं च साधनदूषणं द्वन्द्वैकवद्भावः। स्वपक्षसिद्धिः परपक्षनिराकरणं। भावापह्नववादिनामभावैकान्ते बोधवाक्ययोरप्यभावस्ततः प्रमाणाभावात् केन साधनं केन वा दूषणं क्रियत इति सम्बन्धः।।२९।।

अभाव का तात्पर्य है न होना, इस प्रकार का जो एकान्तरूप मिथ्या अभिप्राय है वह अभावैकान्त है। उस अभाव को ही एकान्तरूप से मानने पर केवल भावैकान्त पक्ष में ही नहीं किन्तु अभाव को एकान्त रूप से मानने पर भी भाव का सत्व निराकरण अभाव उसको कहने का स्वभाव है जिनका, वे भावापह्नववादी हैं, उनके यहाँ बोध अर्थात् ज्ञान स्वार्थानुमान, आगम अर्थात् परार्थानुमान बोध और वाक्य जिससे जाना जाता है वह प्रमाण है। स्व और पर को प्रकाशित करने वाला ज्ञान, न निषेध सूचक वचन है। किसके द्वारा साधन और दूषण यहाँ द्वंद्वैकवद्भाव है। साधन से तात्पर्य है स्वपक्ष की सिद्धि और दूषण से तात्पर्य है परपक्ष का निराकरण किया जाय, यह सम्बन्ध है।।२९।।

भावार्थ :– अभाव को ही एकान्तभाव से मानने वाले भाव का सर्वथा निराकरण करने वालों के यहाँ स्वार्थानुमान और परार्थानुमान प्रमाण नहीं होंगे। स्वार्थानुमान और परार्थानुमान दोनों के अभाव में अपने पक्ष की सिद्धि और परपक्ष का निराकरण किसके द्वारा किया जायेगा। अर्थात् भाव का सर्वथा निराकरण कर अभाव को ही

एकान्तभाव से मानने वालों के यहाँ प्रमाण के अभाव में न तो अपने पक्ष की सिद्धि हो सकती है, न परपक्ष का निराकरण।

भावाभावैकान्ते विरोधं निरूप्योभयैकान्तवादिनामपि न किंचित्सङ्गच्छत इत्याह–।।३०।।

भावैकान्त और अभाव एकान्त में विरोध दिखाकर उभयैकान्त मानने वालों के यहाँ कुछ भी संगत नहीं है। अतः कहते हैं- ।।३०।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।१३।।

विरोधाद् व्यभिचारात् पूर्वापरासङ्गतत्वात्। न प्रतिषेधवचनम्। एक आत्मा स्वभावो ययोस्तौ तथा तयोर्भावस्तदैकात्म्यम्। उभयोः सत्त्वासत्त्व–योरैकात्म्यमुभयैकात्म्यं भावाभावैक्यमित्यर्थः। न्यायो युक्तिप्रमाणेन प्रमेयस्य घटना। स्याद्वाद एव न्यायः स्याद्वादन्यायस्तस्मै विद्विषस्तं वा विद्विषन्ती–तिस्याद्वादन्यायविद्विषस्तेषां स्याद्वादन्यायविद्विषामनेकान्तवैरिणाम्।।३१।।

विरोध व्यभिचार होने से पूर्वापर संगति न होने कारण न निषेध सूचक शब्द है। एक ही है स्वभाव जिन दो का, वे दोनों तथा उनका भाव उनकी एकात्मता दोनों की सत्त्व और असत्त्व की एकात्मता उभयैकात्म्य अर्थात् भावाभाव की एकता न्याय से तात्पर्य है युक्ति अर्थात् प्रमाण से प्रमेय की सिद्धि स्याद्वादन्याय अर्थात् कथंचित् वाद उनसे जो द्वेष रखते हैं अर्थात् जो अनेकान्त के विरोधी हैं उनके यहाँ ।।३१।।

अथ भावाभावोभयैकान्तपक्षदोषदर्शनादवाच्यतैकान्त आश्रीयते, तथापि दोष एवात आह। उच्यत इति वाच्यं न वाच्यमवाच्यं तस्य भावोऽवाच्यता सैव एकान्तो विद्याध्यवसायोऽवाच्यतैकान्तस्मस्मिन्नवाच्यतैकान्ते। अपि शब्दार्थयोरवाच्यवाचकत्वेऽपि। उक्तिर्वचनमवाच्यमित्यवक्तव्यमिति। न युज्यते न घटते। स्याद्वादन्यायविद्विषां वादिनामुभयैकात्म्यं न भवति। विरोधात्। विज्ञानशून्यवत्। तथावक्तव्यैकान्तपक्षेऽपि अवाच्यमित्येवं या उक्ति साऽपि न युज्यते। सर्वथाऽवाच्यत्वात्। एकशब्देनघटपटादिवत्।।३२।।

यदि भावाभावैकान्तपक्ष में दोष देखकर अवाच्यता को ही एकान्तरूप से स्वीकार करते हो तो आचार्य कहते हैं तो भी एकान्तपक्ष में दोष ही है अतः कहते हैं- कहा जाता है वह वाच्य, न कहा जाय वह अवाच्य, उसका भाव अवाच्यता वह ही है एकान्तरूप से मान्य, वह अवाच्यतैकान्त है, उस अवाच्यतैकान्त पक्ष में शब्द और अर्थ में वाच्य वाचकता न होने पर भी वचन अवाच्य है, यह अवक्तव्य है घटित नहीं होता। स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ उभयैकात्म्य नहीं हो सकता विरोध होने से,

शून्य के ज्ञान के समान तथा अवक्तव्यता के एकान्तपक्ष में भी अवाच्य है इस प्रकार का जो कथन है वह भी नहीं हो सकता। एकान्तरूप से अवाच्य होने से एक ही शब्द से जैसे घड़ा और वस्त्र दोनों नहीं कहे जा सकते, उसी प्रकार ।।३२।।

भावार्थ - जो अनेकान्त के विरोधी हैं और सर्वथा एकान्त को मानने वाले हैं, उनके यहाँ भावाभावैकान्त भी नहीं हो सकता। क्योंकि भावैकान्त और अभावैकान्त दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं अवक्तव्यता का एकान्त भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सर्वथा अवक्तव्य मानने पर अवक्तव्य यह कथन भी नहीं किया जा सकता। अवक्तव्य कहने पर ही वह वक्तव्य हो जाता है।

एकहेलया यदि सर्वथा सदसदुभयावक्तव्यरूपं तत्त्वं नास्ति कथं तर्हीत्याह।।३३।।

यदि एकान्तरूप से सत्, असत्, उभयरूप या अवक्तव्यं रूप वस्तु नहीं है तो फिर कैसी है ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं ।।३३।।

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चितदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा।।१४।।

कथंचित्केनचित्प्रकारेण। ते तव सदेव भाव एव। इष्टं मतमभ्युपेतम्। कथंचित्केन– चित्प्रकारेण। असदेव अभाव एव, तत् यदेवसत् तथा तेनैव केनचित्प्रकारेण उभयं सदसदात्मकम्। अवाच्यमवक्तव्यम्। चकारात्कथंचिदित्यर्थः। नयस्य वक्तुरभिप्रायस्य योगो युक्तिर्नययोगस्तस्मान्नय योगादभिप्रायवशादित्यर्थः। न सर्वथा सर्वप्रकारैर्न। किमुक्तं भवति –सदसदुभयावक्तव्यं वस्तु न भवति। किन्तुकेनचित्प्रकारेण।।३४।।

किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से आपके मत में सत् रूप ही भावरूप ही माना गया है किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से असत् रूप ही, अभाव रूप ही वह वस्तु जो सत् रूप है तथा उसी प्रकार किसी प्रकार किसी अपेक्षा से उभयरूप सदसदात्मक रूप है, अवाच्य, अवक्तव्य रूप है। चकार से कथंचित यह तात्पर्य है। वक्ता के अभिप्राय का योग होने से अर्थात् वक्ता के अभिप्रायवश सब प्रकार से नहीं, क्या कहा गया है? सत्, असत्, उभयरूप अथवा अवक्तव्य वस्तु नहीं होती किन्तु किसी अपेक्षा से सत्, असत् आदि है।।३४।।

भावार्थ :– आपके अर्हन्त भगवान के स्याद्वाद नय के अनुसार वक्ता के अभिप्रायवश वस्तु कथंचित किसी अपेक्षा से सत् रूप है कथंचित् किसी अपेक्षा से असत्रूप है, किसी अपेक्षा से उभयरूप है, और कथंचित् किसी अपेक्षा से अवक्तव्यरूप है।

तदेव स्पष्टयति अनवस्थां च निराकरोति उत्तरकारिकया –।।३५।।

आगे की कारिका के द्वारा उसी बात को स्पष्ट करते हैं।।३५।।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।१५।।

सदेव सत्त्वमेव सर्वं निरवशेषं विश्वम्। को नेच्छेत्को न मन्यसे कस्य नेष्टं? किन्तु इष्टमेव सर्वस्य। स्परूपमात्मरूपं स्वस्य वा रूपं तदादिर्यस्य तत्स्वरूपादितच्चैतच्चतुष्टयं चतुर्विकल्पं तत्तथाभूतं। तस्मात्स्वरूपादिचतुष्टयात्। किं तत्? स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावः तस्मात्। असदेव नास्तित्वमेव। विपर्यासादस्वरूपादि अस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावात्। न चेद् यद्येवं न व्यवतिष्ठते न घटते नात्मस्वरूपं लभत इत्यर्थः। किमुक्तं भवति—स्वरूपादिचतुष्टयात्सर्वं सदेव को नेच्छेत? विपर्ययाद्विपर्ययं को नेच्छेत्? यदि पुनर्येनैव सत्त्वं तेनैवासत्त्वमिति स्यान्न किंचिदपि स्यात्।।३६।।

सभी वस्तु का अस्तित्व ही कौन नहीं मानता किसको इष्ट नहीं है। अपने स्वरूप आदि से। वह स्वरूप चार प्रकार से है, उस स्वरूप आदि चतुष्टय से वह क्या है? स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव उससे असत् ही अभाव ही परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, और परभाव से यदि ऐसा नहीं मानोगे तो वस्तु की व्यवस्था नहीं होगी, वह अपने स्वरूप को नहीं प्राप्त करेगा। क्या कहा जाता है, स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सभी वस्तु को सत् ही कौन नहीं मानेगा। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से विपरीत अर्थात् असत् ही कौन नहीं मानेगा। यदि जिस रूप से सत् है, उसी रूप से असत् कहा जाये तो कुछ भी नहीं होगा।।३६।।

भावार्थ :— वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र, काल तथा भाव की अपेक्षा सत् है तथा पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा असत् है, इस प्रकार अनेकान्त मत में वस्तु कथंचित सत् है, कथंचित असत् है, यदि स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल,भाव की अपेक्षा ही सत्–असत् दोनों रूप तथा परद्रव्य, क्षेत्र, काल,भाव की अपेक्षा ही सत्–असत् दोनों रूप कहा जाये तो वस्तु किसी वस्तु की व्यवस्था नहीं बन सकेगी।

शेषभङ्गप्ररूपणार्थमाह — ।।३७।।

शेष भङ्गों को बताने के लिये कहते हैं ।।३७।।

क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गा स्वहेतुतः।।१६।।

क्रमेण, परिपाट्या, अर्पितं विवक्षितं क्रमार्पितं तच्च तद्द्वयं द्वितयं क्रमार्पितद्वयं तस्मात्क्रमार्पितद्वयात्। द्वाभ्यामितं द्वीतं द्वीतमेव द्वैतं द्वयात्मकमस्तित्वनास्तित्त्व स्वरूपं क्रमविवक्षितस्वपरचतुष्टयादस्तित्व–नास्तित्वरूपमित्यर्थः। सहयुगपदेकहेलया विवक्षितस्वपरचतुष्टयादित्यर्थः।

यद्यपि द्वयशब्दःसमासान्तर्भूतस्तथापि तेन सम्बन्धोऽन्यस्याश्रुतत्वात्। अवाच्यमवक्तव्यमुच्चारयितुमशक्यत्वात्। कुतोऽशक्तितोऽसामर्थ्यात्। अवक्तव्यमवाच्यमुत्तरं परं येषां भङ्गानां तेऽवक्तव्योत्तरा। शेषाः अन्ये त्रयो भङ्गास्त्रयो विकल्पाः। स्वहेतुतः स्वकीयकारणात्। के ते स्वहेतवः, स्वरूपादि चतुष्टयात्सहविवक्षतस्वरूपादि चतुष्टयाच्चास्ति चावक्तव्यं। तथा पररूपादिचतुष्टयाद् युगपद्दर्शितस्वपररूपादि चतुष्टयाच्च नास्ति चावाच्यम् नास्ति चावाच्यम्। तथा क्रमार्पित स्वपरपररूपादि चतुष्टयाद युगपद् विवक्षितस्वपररूपादि चतुष्टयाच्चास्ति नास्ति चावक्तव्यं च। किमुक्तं भवति–स्वहेतोः १. स्यादस्ति। २. स्यान्नास्ति। ३. स्यादस्ति नास्ति च। ४. स्यादवक्तव्यम्। ५.स्यादस्ति चावक्तव्यम्। ६.स्यान्नास्ति चावक्तव्यम्। ७. स्यादस्तिनास्ति चावक्तव्यं च वस्तुत इत्यर्थः।।३८।।

क्रम से विवक्षित दोनों से क्रम से विवक्षित स्वरूपचतुष्टय और पररूपचतुष्टय से अस्तित्व नास्तित्वरूप है। एक साथ स्वपरचतुष्टय की विवक्षा होने से यद्यपि द्वयशब्द समास के अन्तर्गत है तो भी उससे सम्बन्ध है, अन्य के नहीं सुने जाने से कहने में अशक्य होने से, कैसे? शक्ति नहीं होने से, असमर्थताके कारण अवक्तव्य है बाद में जिनके ऐसे तीन भङ्ग अपने कारण से वे कारण क्या हैं? स्वरूपादि चतुष्टय से तथा एक साथ स्वरूपादि चतुष्टय और पर रूपादि चतुष्टय की विवक्षा से अस्तवक्तव्य है। तथा पररूपादि चतुष्टरूप से और एक साथ स्वपररूपादि चतुष्टय से नास्त्यक्तव्य है। क्रम से विवक्षित स्वपररूपादि चतुष्टय से तथा एक साथ स्वपररूपादि चतुष्टय की विवक्षा से अस्तिनास्त्यक्तव्य रूप है। क्या कहा गया है? अपने कारण स्वरूपादि चतुष्टय से कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, कथंचित् है भी नहीं भी, कथंचित् अवक्तव्य है, कथंचित् है और अवक्तव्य है, कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है कथंचित् है भी नहीं भी और अवक्तव्य भी है।।३८।।

भावार्थ - क्रम से स्वरूपचतुष्टय तथा पररूपचतुष्टय की विवक्षा से वस्तु कथंचित् सदसद् रूप है। एक साथ स्वपररूपादि चतुष्टय से वस्तु को कहा नहीं जा सकता, अत. वह कथंचित अवक्तव्य है। स्वपररूपादि चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु कथंचित है और एक साथ स्वरूपादिचतुष्टय और पररूपादि चतुष्टय से कहा नहीं जा सकता। अतः वह कथंचित है भी और अवक्तव्य भी है। पररूपादि चतुष्टय से वस्तु नहीं है और एक साथ स्वरूपादि चतुष्टय और पररूपादि चतुष्टय से कहा नहीं जा सकता, अतः वस्तु नहीं भी है और अवक्तव्य भी है। क्रम से विवक्षित स्वरूपादिचतुष्टय और पररूपादिचतुष्टय से वस्तु है भी और नहीं भी है और एक साथ स्वरूपादि चतुष्टय

और पररूपादि चतुष्टय से कहा नहीं जा सकता अतः अस्तिनास्त्यवक्तव्य है अर्थात् कथंचित है भी नहीं भी है और अवक्तव्य भी है।

अस्तित्वादीन् धर्मान् युक्तितः समर्थ्य, अधुना तेषामेकस्मिन्न –धिकरणेऽवस्थानस्य विरोधमन्तरेण परस्परपरिहारेण रूपादीनामिव युक्तितः समर्थनार्थमाह – ।।३६।।

अस्तित्वादि धर्मों का युक्तिपूर्वक समर्थन करके अब उन अस्तित्वादी धर्मों का एक अधिकरण धर्मी में विरोध के बिना रूप, रस आदि के समान युक्तिमूर्वक समर्थन करने के लिए कहते हैं।।३६।।

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येक धर्मिणि।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं तथा भेदविवक्षया।।१७।।

अस्तित्वं सत्त्वं प्रतिषेध्येन नास्तित्वेन अविनाभावि नास्तित्वेन विना न भवति पृथग्भूतं नोपलभ्यत इत्यर्थः। धर्मा अस्य सन्ति धर्मी एकश्चासौ धर्मी च तस्मिन्नेकधर्मिणि। विशेषणत्वात्। उपाधिवशात्। समानो धर्म सधर्मस्तस्य भावः साधर्म्यमन्वयः। यथा दृष्टान्तप्रदर्शकः। भेदस्य विवक्षाऽर्पणा, तया इत्यर्थः। एक धर्मिणि शब्दादौ अस्तित्वं नास्तित्वाविनाभावि, कुतो, विशेषणत्वात्। यथा कृतकत्वादौ साधर्म्यं वैधर्म्येण विना न भवति यद्विशेषणं तत्प्रतिषेध्याविनाभावि, यथा साधर्म्यं व्यतिरेक विवक्षया। द्रुमादौ शब्दादौ विशेषणं चास्तित्वं। तस्मात्प्रतिषेध्यधर्माविनाभावि।।४०।।

अस्तित्व नास्तित्व के साथ अविनाभावि है अर्थात् बिना नास्तित्व के अस्तित्व नहीं होता। अस्तित्व नास्तित्व से अलग नहीं देखा जाता। धर्म जिसके हैं, वह धर्मी है। एक धर्मी में विशेषण होने के कारण समान धर्म-सधर्म और समान धर्मपना साधर्म्य, यह अन्वय है। यथाशब्द दृष्टान्त को बताने वाला है भेद की विवक्षा से एक धर्मी शब्द आदि में अस्तित्व नास्तित्व के बिना नहीं होता। क्यों? विशेषण होने के कारण जैसे कृतकत्व आदि में साधर्म्य वैधर्म्य के बिना नहीं होता। जो विशेषण है वह अपने विपक्ष के बिना नहीं होता। वृक्षादि का विशेषण अस्तित्व है अतः वह अपने प्रतिपक्षी धर्म नास्तित्व के बिना नहीं होता।।४०।।

तथा – ।।४१।।

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया।।१८।।

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनास्तित्वेनाविनाभावि विशेषणत्वात्। यथा वैधर्म्यम– भेदविवक्षया। यत्किचिंत् विशेषणं तत्सर्वमेव

प्रतिपक्षधर्माविनाभावि, यथा वैधर्म्यं साधर्म्यविवक्षया। हेतोर्विशेषणं च नास्तित्वम्।।४२।।

नास्तित्व विशेषण होने के कारण अपने प्रतिपक्षी अस्तित्व के बिना नहीं होता। जैसे वैधर्म्य अभेदविवक्षा से साधर्म्य के बिना नहीं होता। जो भी विशेषण हैं वे सभी अपने प्रतिपक्षी धर्म के बिना नहीं होते, जैसे वैधर्म्य साधर्म्यी की विवक्षा के बिना नहीं होता। नास्तित्व हेतु का विशेषण है अतः वह अस्तित्व के बिना नहीं होता।।४२।।

भावार्थ :- अस्तित्व विशेषण है, अतः वह अपने प्रतिपक्षी धर्म नास्तित्व के बिना नहीं होता, जैसे साधर्म्य वैधर्म्य के बिना नहीं होता। इसी प्रकार नास्तित्व शब्द भी विशेषण है, वह भी अपने प्रतिपक्षी धर्म अस्तित्व के बिना नहीं होता, जैसे कि वैधर्म्य साधर्म्य के बिना नहीं होता।

पुनरप्यविरोधं दर्शयन्नाह – ।।४३।।

फिर विरोध का परिहार दिखाते हुए कहते हैं - ।।४३।।

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया।।१६।।

विधेयशब्दवाच्यः साध्य इत्यर्थः। प्रतिषेध्यो निराकरणीयः। द्वन्द्वः। तावात्मा स्वरूपं यस्य स विधेयप्रतिषेध्यात्मा। विशेष्यो धर्मी पक्ष इत्येकार्थः। शब्दगोचरः शब्दविषयः। साध्यस्य धर्मः साध्यधर्मः। यथा दृष्टान्त प्रदर्शकः। हेतु साधनमहेतुरसाधनम्। अपिः सम्भावनायाम्। अपेक्षया विवक्षया। विशेष्यो विधेयप्रतिषेध्यात्मा शब्दगोचरत्वात्। यथा साध्य धर्मो हेतुश्चाहेतुश्च भवति विवक्षया। विशेष्यो विधेयप्रतिषेध्यात्मा शब्दगोचरत्वात्। यथा साध्यधर्मो हेतुश्चाहेतुश्च भवति विवक्षया। अग्निमत्त्वे साध्ये धूमो हेतुर्भवति जलवत्त्वे साध्येऽहेतुरेकस्मिन्धर्मिणि। एवमत्रापि यो – यः शब्दविषयः स सर्वोऽपि विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्य, यथा साध्यधर्मो हेतुरहेतुश्चापेक्षया। शब्दविषयश्च विशेष्यः तस्माद्विधेयप्रतिषेध्यात्मा।।४४।।

विधेय शब्द के द्वारा कहे जाने योग्य साध्य प्रतिषेध्य निराकरण करने योग्य विधेय प्रतिषेध स्वरूप विशेष्य धर्मी पक्ष यह तात्पर्य है। हेतु साधन अहेतु असाधन है। सम्भावना के लिए है विवक्षा से विशेष्य, विधेय और प्रतिषेध दोनों रूप हैं। शब्द गोचर होने से जैसे साध्य का धर्म हेतु विवक्षा से हेतु भी होता है और अहेतु भी। अग्निमान साध्य में धुआं हेतु होता है, जलवान साध्य में धुआं अहेतु होता है एक ही धर्मी में। इसी प्रकार यहाँ भी जो-जो शब्द का विषय है, वह सभी विधेय प्रतिषेध्यात्मा विशेष्य है।

जैसे साध्य धर्म अपेक्षा से हेतु भी है अहेतु भी है। शब्द का विषय विशेष्य है, इसीलिए विधेय प्रतिषेध्यात्मा है ।।४४।।

भावार्थ :- वक्ता के अभिप्राय वश जैसे एक ही धर्मी में जब उसे अग्नि से युक्त सिद्ध करना हो तो धुआं हेतु होता है और जलवान सिद्ध करने के लिए धुआं अहेतु होता है। उसी प्रकार कोई भी विशेष्य केवल अस्तित्वरूप अथवा केवल नास्तित्वरूप नहीं होता। वक्ता के अभिप्राय वश स्वरूप आदि चतुष्टय से वह अस्तित्वरूप भी होता है। और पररूपादिचतुष्टय से नास्तित्व रूप भी होता है।

शेषभङ्गान् समर्थयन्नाह — ।।४५।।

शेष भङ्गों का समर्थन करते हुए कहते हैं।।४५।।

शेषभङ्गाश्च नेतव्या यथोक्त नययोगतः
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र तव शासने।।२०।।

शेषभङ्गाश्च अवक्तव्यादयः नेतव्या ज्ञातव्या योजनीयाः। यथोक्तश्चासौ नयश्च यथोक्तनयः तस्य योगस्तस्मात् विशेषणत्वादिति हेतोरित्यर्थः। विरोधोऽपि न कश्चित्। उपलक्षणमेतत्। विरोध इति संशय विरोधवैयधिकरण्योभयदोषप्रसङ्ग— सङ्करावस्थाऽभावानाक्षिपति, एते दोषा न सन्ति। कस्मादनेकान्तत्वाद्वस्तुनः। जीवादिपदार्थयाथात्म्यमननान्मुनयस्तेषामिन्द्रो भगवान् केवली तस्य सम्बोधनं हे मुनीन्द्र तव शासने युष्मन्मते। अनभिलाप्यादयोऽपि धर्माः क्वचिदेक— धर्मिणि प्रत्यनीकस्वभावाविनाभाविनो विशेषणत्वात्, पूर्वोक्तमुदाहरणम् ।।४६।।

शेष अवक्तव्य आदि भङ्ग भी जानने चाहिए। यथोक्त नय के योग से विशेषण होने के कारण कोई विरोध भी नहीं है। यह उपलक्षण है। संशय, विरोध, वैयधिकरण्य, उभयदोष, संकर, अनवस्था आदि दोष नहीं हैं। किस कारण? वस्तु के अनेक धर्मवाला होने से। जीवादि पदार्थों का यथार्थ मनन करने वाले मुनि उसका जो इन्द्र वह मुनीन्द्र संबोधन अर्थ में हे मुनीन्द्र! आपके शासन में अर्थात् आपके मत में अवक्तव्य आदि धर्म भी एक ही धर्मी में अपने विरोधी धर्म के साथ अविनाभाव रूप से रहते हैं विशेषण होने के कारण, उदाहरण पहले कहा जा चुका है।।४६।।

भावार्थ :— वक्ता के अभिप्राय वशना कथंचित् रूप से स्यादवक्तव्य, स्यादस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्त्यवक्तव्य तथा स्यादस्निस्त्यवक्तव्य, भी एक ही धर्मी में पाये जाते हैं। हे भगवन्! आपके अनेकान्त मत में उक्त सभी धर्मों के एक ही धर्मी में होने में कोई विरोध नहीं है। पहले उक्त सातों भङ्गों को स्पष्ट किया जा चुका है।

अनेकान्तात्मकं तत्त्वं व्यवस्थाप्यैकान्तं निराकर्तुमाह– ।।४७।।

अनेकान्तात्मक तत्त्व को बताकर एकान्त का निराकरण करने के लिये कहते हैं – ।।४७।।

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत।
नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्तरूपाधिभिः।।२१।।

एवमनेन प्रकारेण। विधिनिषेधाभ्यामस्तित्वनास्तित्वाभ्याम्। अनवस्थितमनवधारितं यद्वस्तु तदर्थकारि भवति। नेति चेत् यद्येवं न भवति । न। यथाकार्यं यथाभूतं कार्यमुपलभ्यते तस्य कारकं न स्यात्। बहिरन्तरुपाधिभिः बाह्याभ्यन्तरहेतुभिः सहितैरपि। अथवा अनवस्थितं शून्यं अयथाकार्यम्।।४८।।

इस प्रकार से अस्तित्व और नास्तित्व के द्वारा अनिर्णीत जो वस्तु है वह अर्थ-क्रियाकारी होती है। यदि ऐसा नहीं है, नहीं जैसा कार्य होता है। उसको करने वाला नहीं होगा। बाह्य और अन्तरंग हेतुओं के होने पर भी अथवा अनवस्था शून्य हो जायेगा।।४८।।

भावार्थ :– इस प्रकार केवल विधि रूप अथवा विशेष रूप न होने पर ही कोई भी वस्तु अर्थक्रियाकारी होती है। यदि ऐसा न मानकर वस्तु को सर्वथा विधिरूप अस्ति रूप अथवा निषेधरूप, नास्ति रूप ही माना जाये तो कोई भी वस्तु अर्थक्रियाकारी नहीं होगी, चाहे बाह्य और अभ्यन्तर कारण भी उपस्थित हों। अर्थात् बाह्य और अंतरंग कारण के होने पर भी वस्तु में अपेक्षाकृत अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्मों के होने पर ही उसे किसी कार्य में लिया जा सकता है अन्यथा नहीं।

अथ मतं स्यादस्तीत्यनेनैव स्याच्छब्देन सर्वेभङ्गा गृहीताः। किमेतेषां प्रपञ्चोऽत आह– ।।४९।।

यदि कोई यह कहे कि स्यादस्ति, इसी एक भङ्ग के द्वारा स्यात् शब्द के कारण सभी भङ्ग ग्रहण हो जाते हैं। फिर इन सात भङ्गों की क्या आवश्यकता हैं, तो आचार्य कहते हैं –।।४९।।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्मणः।
अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता।।२२।।

धर्मेधर्मे धर्मनिर्देशे। भङ्गे भङ्गे इति वा पाठान्तरम्। अन्य एवार्थोऽपूर्वार्थः। कुतो, धर्मिणो वस्तुनः। अनन्ता धर्माः स्वभावा यस्य सोऽनन्तधर्मा तस्यानन्तधर्मणः। अङ्गित्वे प्रधानत्वे। अन्यतमान्तरस्यास्तित्वादीनां मध्ये एकतमस्य। शेषान्तानां परिशेषध– र्माणां नास्तित्वादीनाम्। तत्तस्मात्। अङ्गता अप्रधानता। अथवा तदाङ्गता इति पाठान्तरम्। तदा तस्मिन्काले। शेषाणामप्रधानता। अतः

पुनरुक्तता नास्ति। अथवा सुनयसप्तभङ्गीनिरूपणार्थमियं कारिका, सङ्क्षेपार्था चेयम्।।५०।।

प्रत्येक धर्म में, प्रत्येक भङ्ग में यह भी पाठान्तर है। अपूर्व अर्थ होता है। कैसे? वस्तु के अनन्त धर्म स्वभाव हैं जिसके वह अनन्तधर्मा है, उस अनन्तधर्म वाली वस्तु के मुख्य होने पर अस्तित्वादि में से किसी एक धर्म के नास्तित्व आदि शेष धर्मों की इस कारण से गौणता अथवा उस समय यह भी पाठान्तर है। शेष धर्मो की गौणता रहती है। इसलिए पुनरूक्तता नहीं है अथवा नय के द्वारा सप्तभङ्गी को बताने के लिए संक्षिप्त अर्थ वाली यह कारिका है। ।५०।।

भावार्थ :– वस्तु अनेक धर्मवाली होती है और उस प्रत्येक धर्म का अपना विशेष अर्थ होता है। विवक्षानुसार वक्ता वस्तु के एक धर्म का जब कथन करता है इस समय वह धर्म प्रधान होता है। अन्य धर्म गौण हो जाते हैं। किन्तु अन्य धर्मों का अभाव नहीं होता। अतः सप्तभङ्गी की व्यवस्था की गई है। सात भङ्गों के निरूपण में पुनरूक्तता का दोष नहीं है।

सप्तभङ्गी योजयन्नाह – ।।५१।।

सप्तभङ्गी को घटित करते हुए कहते हैं- ।।५१।।

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्राऽपि योजयेत्
प्रक्रियां भङ्गिनीमेनां नयैर्नयविशारदः।।२३।।

नयविशारदो नयः प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशो वस्त्वध्यवसायस्तस्मिन्कुशलः। नयैःस्वहेतुभिर्विशेषणत्वादिभिः। एनां प्रक्रियाम्। भङ्गिनीं भङ्गवतीं भङ्गबहुलाम्। उत्तरत्रापि इह ऊर्ध्वमपि। योजयेदुद्घाटयेत्। क्व एकश्च अनेकश्च तावेव विकल्पौ तावादिर्यस्य तस्मिन्नेकानेकविकल्पादौ। कथं। स्यादेकः। स्यादनेकः। स्यादेकश्चानेकश्च स्यादवक्तव्यः। स्यादेकश्चावक्तव्यः। स्यादनेकश्चावक्तव्यश्च। स्यादेकश्चानेकश्चावक्तव्यश्च। एवमनेन द्वैताद्वैतादिषु योज्यम्।।५२।।

प्रमाण के द्वारा जाने गये पदार्थ के एक देश को जानना नय है, उसमें जो कुशल है वह नयविशारद है। नयों से,अपने कारणों से, विशेषणत्वादि से इस प्रक्रिया को अनेक भङ्गों वाली इससे आगे भी लगायें। कहाँ? एक अनेक आदि विकल्पों में, कैसे? कथंचित एक है। कथंचित अनेक है। कथंचित एक भी है, अनेक भी है। कथंचित अवक्तव्य है। कथंचित एक और अवक्तव्य है। कथंचित अनेक और अवक्तव्य है। कथंचित एक अनेक और अवक्तव्य है। इसी प्रकार द्वैत अद्वैत आदि में भी प्रयोग करना चाहिए।।५२।।

भावार्थ :— जो नय के सुविज्ञ हैं उन्हें उक्त सप्तभङ्गी प्रक्रिया को एक तथा अनेक आदि विकल्पों में भी प्रयोग करना चाहिये। जैसे वस्तु किसी अपेक्षा से एक है, किसी अपेक्षा से अनेक है, क्रम से कथन की विवक्षा से एक और अनेक भी है। युगपत् एक साथ कहने की विवक्षा से कथंचित् अवक्तव्य है। क्रम से कथन की विवक्षा तथा युगपत् कथन की विवक्षा से कथंचित् एक अनेक तथा अवक्तव्य भी है। किसी अपेक्षा से वस्तु एक है और युगपत् एक अनेक को कहने की अपेक्षा और अवक्तव्य भी है। अतः कथंचित् एक और अवक्तव्य है। किसी अपेक्षा से वस्तु अनेक भी हैं और युगपत् एक, अनेक को कहने की विवक्षा से अवक्तव्य भी है। अतः वह कथंचित अनेक और अवक्तव्य है। इसी प्रकार द्वैत और अद्वैत आदि में भी प्रयोग करना चाहिये। जैसे वस्तु कथंचित द्वैत है। कथंचित अद्वैत है। कथचित द्वैताद्वैत है। कथंचित अवक्तव्य है आदि।

सदाद्येकान्तेषु दोषमुद्भाव्यैवमद्वैतकान्तं दूषयितुमाह — ।।५३।।

अस्तित्व आदि एकान्त में दोष दिखाकर अद्वैत एकान्त में दोष दिखाने के लिये कहते हैं।।५३।।

अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते।।२४।।

अद्वैतमेवेत्येकान्तोऽसद्ग्रहः स एव पक्षो जिज्ञासितविशेषो धर्मी तस्मिन्नपि दृष्टोभेदः प्रत्यक्षप्रमाणपरिच्छिन्नं नानात्वं लोकप्रसिद्धं वा। विरुध्यते मिथ्या भवेत्। कारकाणि कर्त्रादीनि क्रिया आकुन्चनादिका पाकादिका वा, एतेषां परस्परेणेयं क्रिया इमानि कारकाणि, "इदं कर्तृकारकमिदं कर्मेत्यादि। इयं दहनक्रिया, इयं पचनक्रियेत्यादि। च शब्दादिदं प्रमाणमिदं परिच्छेद्यं वस्तु" इति भेदो न स्यात्। कुतः, नेति एकान्त प्रतिषेध वचनम्। एकमसहायम् स्वस्मादात्मनः। प्रजायत उत्पद्यते।५४।।

अद्वैत को ही एकान्तरूप से मानना असदग्रह, दुराग्रह है। उसको ही पक्ष मानने पर प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात अनेक भेद तथा लोक में प्रसिद्ध अनेक भेद असत्य हो जायेंगे। कर्त्ता, कर्म, आदि कारकों के भेद तथा सिकुड़ना, पकाना आदि विभिन्न क्रियाओं की विविधता यह जलाने की क्रिया है, यह पकाने की क्रिया है इत्यादि। च शब्द से यह प्रमाण है, यह प्रमेय है यह भेद नहीं होगा। कैसे? न यह एकान्तरूप से निषेधात्मक शब्द है। अकेला अपने आप से उत्पन्न होता है।५४।।

भावार्थ :— अद्वैत् को ही एकान्तरूप से मानने पर प्रत्यक्ष से जो नानाभेद दिखाई देते हैं वे असत्य हो जायेंगे। साथ ही कारकों के सात भेद तथा अनेक प्रकार की

क्रियाएं भी नहीं होगीं। इसके अतिरिक्त स्वयं अपने आप से कोई नहीं उत्पन्न होता, उसका जनक, जन्म का कारण मानना ही पड़ेगा और मानने पर अद्वैत एकान्त पक्ष सिद्ध नहीं होगा।

तथैवमपि – ।।५५।।

तथा इस प्रकार भी अद्वैत की सिद्धि नहीं होती।।५५।।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्याद्वयं न स्यात् बन्धमोक्षद्वयं तथा।।२५।।

शुभकर्माशुभकर्मेति द्वयं न स्यात्। पुण्यमिदं पापमिदं इहलोकः परलोको, ज्ञानमज्ञानं, बन्धो मोक्षश्च जीवप्रदेशकर्मप्रदेशान्यो श्लेषो बन्धः अष्टविध कर्ममोक्षो मोक्ष इत्येवमापि न स्यात्।।५६।।

अद्वैत मानने पर शुभकर्म और अशुभकर्म दो कर्म नहीं होगे। यह पुण्य है, यह पाप है, इहलोक, परलोक, ज्ञान, अज्ञान, बन्ध और मोक्ष जीव प्रदेश और कर्म प्रदेशों का परस्पर मिलना बन्ध तथा आठ प्रकार के कर्मों से छूटना मोक्ष, यह कुछ भी नहीं होगा।।५६।।

भावार्थ :- अद्वैत को ही एकान्त रूप से मानने पर न तो शुभ और अशुभ दो प्रकार के कर्म होंगे, न सुख दुःख रूप दो प्रकार के फल होंगे, न इहलोक और परलोक दो होंगे, न ज्ञान अज्ञान दो होंगे और न बन्ध और मोक्ष दो होंगे। उक्त दो-दो मानने पर अद्वैत का निराकरण स्वयं हो जाता है।

प्रमाणादद्वैतं निराकर्तुमाह – ।।५७।।

प्रमाण से अद्वैत का निराकरण करने के लिए कहते हैं- ।।५७।।

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम्।।२६।।

अद्वैतस्य सिद्धिः किं हेतोराहोस्विद्वचनमात्रात्। यदि हेतोरिदं साधनमिदं साध्यमिति द्वैतं स्यात्। साधनमन्तरेणाद्वैतस्य सिद्धिश्चेदेवं वचनमात्राद्द्वैतं कस्मान्न स्यादिति समानम्।।५८।।

अद्वैत की सिद्धि हेतु से होती है कि वचनमात्र से, यदि हेतु से कहते हो तो यह हेतु है, यह साध्य है इस प्रकार द्वैत हो जायेगा। यदि साधन के बिना द्वैत की सिद्धि कहते हो तो, इस प्रकार वचनमात्र से द्वैत की सिद्धि क्यों नहीं होगी। दोनों में समान स्थिति है।।५८।।

भावार्थ :— अद्वैत की सिद्धि हेतु से यदि करना चाहते हो तो हेतु और साध्य दो हो जायेंगे, अद्वैत की सिद्धि ही नहीं होगी। यदि हेतु के बिना केवल कथनमात्र से अद्वैत की सिद्धि करना चाहते हो तो वचनमात्र से तो द्वैत की भी सिद्धि हो सकती है। जैसे तुम अपने कथन से अद्वैत को सिद्ध करना चाहते हो वैसे अन्य कोई कथन मात्र से द्वैत की भी सिद्धि कर सकता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

पुनरप्यद्वैतं निराकर्तुमाह — ।।५६।।

पुनः अद्वैत का निराकरण करने के लिए कहते हैं - ।।५६।।

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
सञ्ज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित्।।२७।।

द्वैताद्विना न भवत्यद्वैतं। यथा अहेतुर्हेतुमन्तरेण न भवति। संज्ञिनो नामवतः प्रतिषेध्यमन्तरेण प्रतिषेधो यस्मात् क्वचिदपि न भवति। यो यः संज्ञी तस्य तस्य प्रतिषेध्यमन्तरेण प्रतिषेधो न भवति। यथा कुसुममन्तरेणाकाशादौ कुसुमस्य। संज्ञी चाद्वैतं तस्माद्तस्य द्वैतेन विना प्रतिषेधो न भवति।।६०।।

द्वैत के बिना अद्वैत नही होता है। जैसे अहेतु हेतु के बिना नहीं होता है। जैसे किसी नाम वाली वस्तु का निषेध निषिध्य वस्तु के बिना कहीं भी नहीं होता। जैसे कि पुष्प के बिना आकाशादि में पुष्प का निषेध नहीं किया जा सकता। अद्वैत संज्ञी है अतः उसका द्वैत के बिना निषेध नहीं होता।।६०।।

भावार्थ :— द्वैत के बिना अद्वैत की सिद्धि उसी प्रकार नहीं हो सकती जैसे कि हेतु के बिना अहेतु की सिद्धि नहीं हो सकती। पर्वत की अग्नि में धुआँ हेतु है तभी जलाशय में वह अहेतु है, अन्यथा वह अहेतु नहीं हो सकता। किसी भी नामावली वस्तु का निषेध तव तक नहीं किया जा सकता, जब तक उस नाम की कोई वस्तु न हो। जैसे आकाश में पुष्प का निषेध तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कहीं पुष्प न हों।

अधुना सर्वथासर्वपदार्थपृथक्त्वैकान्तवादि वैशेषिकादिमतकदर्थनार्थमाह—।।६१।।

अब सर्वथा सब पदार्थों के पृथक्त्वैकान्त वादी वैशेषिकों के मत का निराकरण करने के लिए कहते हैं।।६१।।

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्कृतौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौगुणः।।२८।।

यद्यप्यद्वैतैकान्तपक्षे दोषभयात् पृथक्त्वमित्येकान्तपक्षोऽभ्युपगम्यते

तथापि पृथग्गुणात्तावदपृथग्भूतावभ्युपगन्तव्यौ गुणगुण्यादी। अन्यथा तस्मादपि यदि तौ पृथक् भिन्नौ स्यातां तदानीं पृथक्त्वादिर्गुणो न स्यात्। कुतः। यतोऽनेकस्थो ह्यसौ गुणो दृष्ट इत्यर्थः। न च तयोः पृथक्त्वगुणः पृथग्गति सर्वेषामभावः स्यात्। तस्मात् भेदपक्षोऽपि न श्रेयान्।।६२।।

अद्वैत पक्ष में दोष होने से 'पृथक्त्व' इस एकान्त पक्ष को नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं तो पृथक गुण से गुणी द्रव्य और गुण को अपृथक् मानना चाहिए। अन्यथा यदि पृथक्त्व गुण से भी वे दोनों पृथक रहें तो पृथक्त्वादि गुण नहीं होगें। कैसे? क्योंकि यह पृथक्त्व गुण अनेकों में स्थित माना गया है। गुण गुणी में पृथक्त्व गुण नहीं होगा, न उनकी पृथक गति होगी, सभी का अभाव हो जायेगा। इसलिये पृथक्त्व एकान्त पक्ष भी ठीक नहीं है।।६२।।

भावार्थ :– नैयायिक तथा वैशेषिक पृथक्त्व एकान्त को मानते हैं। ऐसी स्थिति में भी उन्हें पृथक् गुण से गुणी द्रव्य और उसके गुण को अपृथक ही मानना पड़ेगा, अन्यथा पृथक्त्वादि गुण होंगे ही नहीं। क्योंकि पृथक्त्व गुण अनेक द्रव्यों में पाया जाता है। फिर गुण, गुणी में पृथक्त्व एकान्त पक्ष, पृथक्त्वगति, आदि सबका अभाव हो जायेगा। अतः पृथक्त्व एकान्त पक्ष भी ठीक नहीं है।

इदानीं पृथक्त्वैकान्तवादिविशेषमायासु क्षणिकत्वैकान्तकदर्थनार्थमाह –।।६३।।

अब पृथक्त्वैकान्तवादी वैशेषिकों के मत का निराकरण कर क्षणिकत्व एकान्त का निराकरण करने के लिए कहते हैं ।।६३।।

सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे।।२९।।

एकत्वस्य सादृश्यस्य कथंचित्तादात्म्यस्य। निह्नवोऽपह्नतिर्निराकरणम्। अथवा एकशब्दो द्रव्यवचनोऽयं ततः स्वार्थिकस्त्वप्रत्ययः तस्मिन्नेकत्वनिह्नवे। क्रमभाविनां कारणतद्वतामालीनकमन्दकमधुरकादानीं गोरस जातिमजहता–मुत्तरोत्तरपरिणामप्रवाहः सन्तानो न स्यान्न भवेत्। तथा रूपरसादीनां धर्माणां सहभुवां नियमतो युगपदुत्पादव्ययभाजा– मेकस्मिन्नवस्थानं समुदयो न स्यात् तथा शब्दघटादीनां साधर्म्यं च न स्यात् मृत्वाऽमुत्र प्राणिनः प्रादुर्भावः प्रेत्यभावः सोऽपि न स्यात्। निरङ्कुशो निर्बाधोऽस्खलितरूपः सर्वत्र सम्बन्धनीयः। च शब्देन प्रत्यभिज्ञानादयोऽपि न स्युः। तदेतत्सर्वं न स्यादिति समुदायेन निर्देशात् यथायोग्यं सम्बन्धो भवति। सामान्यनिर्देशान्नपुंसकलिङ्गता।।६४।।

एकत्व सादृश्य तथा कथंचित् तादात्म्य के निराकरण अथवा एक शब्द द्रव्यवाची है, उससे स्वार्थिक'त्व' प्रत्यय करने पर एकत्व बना, उस एकत्व का निराकरण करने पर क्रम से होने वाले गोरस को न छोड़ते हुए दही आदि सन्तान नहीं होंगे। तथा एक साथ होने वाले रूपरसादि धर्मों तथा एक साथ उत्पाद व्यय होने वाले धर्मों का एक स्थान पर समुदाय नहीं होगा। यदि अनेकान्तात्मक द्रव्य न हो तो शब्द और घड़े आदि में साधर्म्य भी नहीं होगा। मरकर परलोक में जीव की उत्पत्ति भी नहीं होगी। निर्बाध रूप से इसका सबके साथ सम्बन्ध करना चाहिए। च शब्द से प्रत्यभिज्ञान आदि भी नहीं होंगे। जहाँ जैसा योग्य है वहाँ वैसा सम्बन्ध होता है। सामान्य कथन होने से सर्वशब्द नपुंसकलिंग प्रयुक्त है।।६४।।

भावार्थ :– बौद्ध सभी पदार्थ को क्षणिक मानते हैं। उनका मत है **'सर्वक्षणिकं सत्त्वात्'** जो भी पदार्थ हैं वह एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं, अगले क्षण में केवल उसी के सदृश्य सन्तान उत्पन्न होती रहती है, उस सदृश्य सन्तान के कारण ही स्थिरत्व की, एकत्व की प्रतीति होती है। वे अग्रिमक्षणों में पदार्थ में एकत्व को नहीं मानते हैं। किन्तु सन्तान, समुदाय, साधर्म्य और प्रेत्यभाव (परलोक) को मानते हैं। आचार्य कहते हैं कि युक्तिपूर्वक विचार करने पर एकत्व के अभाव में सन्तान, समुदाय, साधर्म्य और परलोक आदि कुछ भी सिद्ध नहीं होता। अतः कथंचित् एकत्व का मानना आवश्यक है।

पुनरपि भेदैकान्ते दूषणमाह–।।६५।।

पुनः भेद एकान्त में दोष का कथन करते हैं - ।।६५।।

सदात्मना च भिन्नं चेत् ज्ञानं ज्ञेयाद्द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम्।।३०।।

तथा चैतन्यस्वरूपेण ज्ञेयात्प्रमेयात् ज्ञानमवबोधो भिन्नमन्यच्चेद्यदि सदात्मना चास्तित्वरूपेणापि पृथक् स्यात्। द्वेधाऽपि ज्ञानं ज्ञेयं चासत्स्यात्। अभावः स्यात्। कुतः, ज्ञानाभावे बोधशून्ये कथं ज्ञेयम्। बहिर्बाह्यं। अन्तः अन्तरङ्गं च। ते द्विषां तुभ्यं द्विषतां मिथ्यादृशाम्। यस्माज्ज्ञाने सतिज्ञेयं विषयत्वात् ज्ञेये सति ज्ञानं च भवति तत्परिच्छेदकत्वात्। तस्मात् ज्ञानं कथंचिदभिन्नमेषितव्यं सदाद्यात्मनाऽन्यथाऽवस्तु स्यात्।।६६।।

और यदि चैतन्य रूप से ज्ञान ज्ञेय से भिन्न कहते हो और अस्तित्व रूप से भी भिन्न कहते हो तो दोनों प्रकार से ज्ञान और ज्ञेय असत् हो जायेंगे। कैसे? ज्ञान के अभाव में ज्ञेय कैसे हो सकता है। बाह्यज्ञेय घट-पटादि अन्तरंग ज्ञेय जीवात्मा तथा ज्ञान आदि आपके द्वेषी मिथ्यादृष्टियों के, क्योंकि ज्ञान के होने पर ज्ञेय होता है ज्ञान

का विषय होने से, ज्ञान के अभाव में वह किसका विषय होगा। ज्ञेय के होने पर ज्ञान होता है उसका जानने वाला होने से, ज्ञेय के नहीं होने पर ज्ञान किसको जानेगा? इसलिए ज्ञान को सदादि रूप से ज्ञेय से कथंचित् अभिन्न मानना चाहिए, अन्यथा उसका अभाव हो जायेगा।।६६।।

भावार्थ :– ज्ञान और ज्ञेय सर्वथा भिन्न नहीं हैं, अस्तित्व की दृष्टि से दोनों अभिन्न हैं। यदि अस्तित्व की दृष्टि से भी उनमें पृथक्त्व माना जायेगा तो दोनों का अभाव हो जायेगा। क्योंकि ज्ञान के अभाव में बाह्य और अन्तरंग किसी भी प्रकार का ज्ञेय नहीं हो सकता, जानने वाला नहीं होने से और ज्ञेय के अभाव में ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान का कोई विषय नहीं होने से।

सार्थविशेषस्य वाच्यवाचकतेष्यते तस्य पूर्वमदृष्टत्वात्सामान्यं त्वपदिश्यते शब्दैरित्यभिप्रायवतो मतमाश्रित्य तत्कदर्थयितुमाह– ।।६७।।

पदार्थ सहित विशेष की वाच्यवाचकता नहीं है विशेष के पहले नहीं देखा जाने से। सामान्य शब्द के द्वारा कहा जाता है ऐसा मानने वाले बौद्धों का निराकरण करने के लिए कहते हैं -।।६७।।

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः।।३१।।

अथ मतं सामान्यमस्माभिरिष्यते किन्तु शब्द गोचरत्वादवस्तु, अत आह– सामान्यं विकल्पेनेष्टोऽर्थो वाच्यो यासां ताः सामान्यार्थाः। गिरो वाचः, अन्येषां मिथ्यादृशां। यतस्ताभिर्विशेषो याथात्म्यं स्वलक्षणं नाभिलप्यते। यद्येवं सामान्यं तेषामवस्तु अतस्तस्याभावात्सकलाः समस्ता गिरो वचनानि मृषैवासत्यरूपा एव अतो न वाच्यम् नापि वाचकोऽनुमानाभावः।।६८।।

यदि यह कहो कि सामान्य को हम मानते हैं किन्तु वह शब्द के द्वारा कहा जाने के कारण अवस्तु है तो आचार्य कहते हैं सामान्य विकल्प से जो इष्ट अर्थ है, वाच्य है, वह सामान्य है, यह मिथ्यादृष्टियों का कथन है। क्योंकि उनके द्वारा विशेष जो यथार्थ है, स्वलक्षण है नहीं कहा जाता। यदि ऐसा है तो सामान्य उनके यहाँ अवस्तु है। अतः सामान्य के अभाव से सभी वचन झूठे ही हैं। अतः न कोई वाच्य है, न वाचक है, अनुमान का भी अभाव हो जायेगा।।६८।।

भावार्थ :– बौद्धों के यहाँ सामान्य को शब्द के द्वारा कहा जाता है, विशेष का कथन नहीं किया जा सकता और सामान्य को वे अवस्तु मानते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य का कथन करने वाले वचन भी असत्य ही होंगे।

उभयैकान्तं निराकर्तुकामः प्राह – ।।६६।।

उभयैकान्त का निराकरण करने के लिए कहते हैं ।।६९।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।३२।।

अथ मतं यद्येकैके दोष उभयैकात्म्यमेषितव्यमिति दूषणमाह एकत्वपृथक्त्वपरप्रत्यनीकस्वभावद्वयसम्भवोऽपि न सम्भवति, अस्तित्व–नास्तित्ववत् प्रतिषेधात्। एकेनैकस्य निराकृतत्वात्। अथावाच्यमिष्यते, तदपि न। अवाच्यत्वे येयमुक्तिः साऽपि न सम्भवति मिथ्यादृशाम्।।७०।।

यदि यह कहो यदि अद्वैत और पृथक्त्व को अलग-अलग एकान्तरूप से मानने पर दोष है तो उभयैकात्म्य को मान लिया जाय तो आचार्य उसमें दोष बताते हैं। एकत्व पृथक्त्व परस्पर विपरीत स्वभाव वाले दोनों भी नहीं हो सकते। अस्तित्व और नास्तित्व के समान विरोधी होने से, एक के द्वारा एक का निराकरण किया जाने से, यदि अवाच्य को मानते हो तो वह भी नहीं होगा। अवाच्य होने पर अवाच्य यह कथन भी मिथ्यादृष्टियों के एकान्तवादियों के यहाँ सम्भव नहीं है।।७०।।

भावार्थ :- अद्वैत और पृथक्त्व एकान्त में दोष बताने पर मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी यदि अद्वैत और पृथक्त्व दोनों के एकान्त को मानना चाहें तो एकान्तवाद में वह भी सम्भव नहीं है। क्योंकि अद्वैत और पृथक्त्व दोनों भिन्न स्वभाव वाले हैं, अतः दोनों की एकता नहीं हो सकती। एकान्तवाद में अवाच्यता भी सम्भव नहीं है, क्योंकि एकान्तरूप से अवाच्य मानने पर 'अवाच्य है' यह कथन भी नहीं किया जा सकता। जिसका कथन किया जाता है, वह अवाच्य कैसे हो सकता है?

सामान्यविशेषौ परस्परानपेक्षावन्याभ्युपगतौ निरस्य तौ सापेक्षौ सन्तावर्थक्रियां कुरुत इत्यस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थमाह –।।७१।।

सामान्य और विशेष परस्पर अपेक्षा रहित जो एकान्तवादियों के यहाँ माने गये हैं, उनका निराकरण करके अपेक्षा सहित होने पर वे अर्थक्रियाकारी हैं, यह बताने के लिये कहते हैं।।७१।।

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुतः।।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा।।३३।।

परस्परानपेक्षे पृथक्त्वैक्ये सामान्यविशेषाववस्तु अर्थक्रियाकारि न भवति द्वयहेतोर्द्वाभ्यां। कथं सामान्यं नास्ति विशेषशून्यत्वात्, यद्यद्विशेषशून्यं तत्तन्नास्ति यथा खरविषाणं, सामान्यं च तथा परपरिकल्पितं। तस्मान्नास्ति

विशेषः सामान्यशून्यत्वात्। खरविषाणविशेषवदित्येनेन हेतुद्वयेन सामान्यविशेषयोरवस्तुत्वं साधनीयम्। तदेव वस्तु। ऐक्यं सामान्यं विशेषश्च पृथक्त्वं च द्वयात्मकं कुतोऽ– विरोधात्। यथा साधनहेतुज्ञानं वाक्यं वा स्वभेदैः स्वधर्मैः पक्षधर्मान्वय– व्यतिरेकादिभिर्भिन्नमेकं भवति।।७२।।

एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखने पर पृथक्त्व और एकत्व सामान्य और विशेष अवस्तु हैं अर्थात् दोनों का अभाव हो जाता है। अर्थक्रियाकारी नहीं होते, दो कारणों से। कैसे? जो जो विशेष रहित है, वह नहीं है, जैसे गधे का सींग। बौद्धों के द्वारा कल्पित समान्य भी विशेष रहित है, अतः वह अवस्तु है। सामान्य से रहित होने के कारण। विशेष नहीं है। खरविषाणविशेष के समान। इन दो हेतुओं से सामान्य और विशेष का अवस्तुत्व सिद्ध करना चाहिए। वही वस्तु है जिसमें एकता, समानता और पृथक्त्व विशेष दोनों हैं, विरोध नहीं होने से, जैसे साधन हेतु का ज्ञान अथवा वाक्य अपने भेदों धर्मो पक्षधर्म, सपक्षधर्म और विपक्षव्यावृत्ति से भिन्न और एक भी होता है।।७२।।

भावार्थ :– परस्पर निरपेक्ष पृथक्त्व और एकत्व दोनों अवस्तु हैं दो कारणों से। पृथक्त्व अवस्तु है, एकत्व निरपेक्ष होने से। एकत्व भी अवस्तु है पृथक्त्व निरपेक्ष होने से। अतः एकत्व और पृथक्त्व को सापेक्ष मानने पर एक ही वस्तु उभयात्मक और अर्थक्रियाकारी ही सिद्ध होती है। जैसे कि धूम आदि एक होकर भी अपने धर्मों, पक्षधर्म, सपक्षधर्म और विपक्षासत्त्व के कारण अनेक भी है। अतः कोई भी पदार्थ न सर्व पर एकरूप है, न अनेक रूप है। एकत्व और अनेकत्व सापेक्ष धर्म हैं।

ननु तदेवैक्यं पृथक्त्वं च कथं, यावता विरूद्धमेतत् – ।।७३।।

शंकाकार कहते हैं कि पृथक्त्व और एकत्व दोनों एक दूसरे के विरूद्ध नहीं हैं फिर भी एक ही जगह अभिन्नत्व और पृथक्त्व दोनों कैसे हो जायेंगे। आचार्य कहते हैं ।।७३।।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्यादिभेदतः।।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारण हेतुवत्।।३४।।

सतोऽस्तित्वस्य सामान्यं यत्तत्तथा तस्माच्च सर्वस्यैक्यमेव। द्रव्यादिभेदैर्द्रव्यपर्यायगुणादिभेदैरथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्भिन्नं पृथक्त्वादेव। भेदश्चाभेदश्च तयोर्विवक्षायां क्रियमाणायामसाधरणहेतुः श्रावणत्वप्राणा– दिमत्वादिस्तद्वत्। यद्यप्यत्रान्वयो नास्ति तथाप्यन्यथानुपपत्तिबलेन सिद्धमिति।।७४।।

अस्तित्व की समानता होने से सभी वस्तुओं में अभिन्नता ही है। द्रव्यपर्याय गुणादि के भेद से अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद से भिन्न ही है पृथक्पना होने से। भेद और अभेद की विवक्षा होने पर असाधारण हेतु श्रावणत्व और प्राणादिमत्व के समान यद्यपि यहाँ अन्वय नहीं है तो भी अन्यथानुपपत्ति के कारण सिद्ध हैं।।७४।।

भावार्थ :– सत् सामान्य की अपेक्षा सब पदार्थ एक हैं और द्रव्य आदि की अपेक्षा अनेक हैं। जैसे कि असाधारण हेतु भेद की विवक्षा से अनेक और अभेद की विवक्षा से एक होता है। सत्ता दो प्रकार की होती है- सामान्यसत्ता और विशेष सत्ता। सामान्य सत्ता सब पदार्थों में एक सी रहती है, विशेष सत्ता सब पदार्थों की पृथक् पृथक् होती है। जैसे कि अग्निमत्त्व में धूम असाधारण हेतु है, भेदविवक्षा से धूम पक्षधर्म, सपक्ष सत्व, विपक्षासत्व के भेद से तीन रूप हो जाता है, अभेद विवक्षा से वह एक रूप ही रहता है।

केषांचिद्विद्यमानस्याविवक्षाऽविद्यमानस्यैव विवक्षा, अन्येषां वैयाकरणादीनां विद्यमानस्यैव विवक्षा, नाविद्यमानस्य, अन्येषां विवक्षा नास्तीत्येतन्मतनिराकरणायाह – ।।७५।।

किसी की विद्यमान की विवक्षा है, अविद्यमान की ही विवक्षा है, किसी वैयाकरण की विद्यमान की ही विवक्षा, अविद्यमान की नहीं। किसी अन्य की विवक्षा ही नहीं है, इसका निराकरण करने के लिए कहते हैं ।।७५।।

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः।।३५।।

सतो विद्यमानस्य विशेषणस्यास्तित्वादेर्विवक्षा चाविवक्षा च। नासतो नाविद्यमानस्य क्रियते। कैस्तदर्थिभिर्विवक्षाप्रयोजनवद्भिः। अत्रैकस्मिन्। कुतो लोकप्रसिद्धमेतत्।।७६।।

विद्यमान विशेषण अस्तित्वादि की विवक्षा और अविवक्षा की जाती है। असत् की अविद्यमान की नहीं की जाती। किनकी? विवक्षा के प्रयोजन वालों की एक ही वस्तु में, कैसे? यह संसार में प्रसिद्ध है।।७६।।

भावार्थ :– विशेष्य वस्तु अनन्त धर्मवाली है। उन अनन्त धर्मों में से किसी भी धर्म की विवक्षा उस धर्म के होने पर ही की जाती है। जो धर्म वस्तु में नहीं है, उसकी विवक्षा नहीं होती।

कस्यचिद्भेदः संवृतिकल्पितोऽन्यस्याभेदः संवृतिकल्पित इत्येतां दुरागमवासनाजनितां विप्रतिपत्तिं निराकर्तुमाह– ।।७७।।

किसी के मत से भेद काल्पनिक है, किसी अन्य के मत से अभेद काल्पनिक है इस मिथ्यावासना जनित विचार का निराकरण करने के लिए कहते हैं ।।७७।।

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।।
तावेकत्राविरूद्धौ ते गुणमुख्य विवक्षया।।३६।।

भेदाभेदौ प्रमाणगोचरौ प्रमाणविषयौ सन्तौ भवन्तौ संवृतिरूपावपरमार्थौ, न, प्रमाण विषयत्वात्। अतस्तवागमे तावेकत्रैकस्मिन् धर्मिणि न विरूद्धौ। गुणविवक्षया अप्रधानविवक्षया। मुख्यविवक्षया प्रधान विवक्षया। दृश्यते च लोके प्रधानाप्रधानविवक्षा, यथाऽनुदरा कन्येत्यादि।।७८।।

भेद और अभेद प्रमाण के विषय होने के कारण काल्पनिक नहीं हैं। अतः आपके आगम में वे दोनों भेद और अभेद एक धर्मी में विरूद्ध नहीं हैं। मुख्य विवक्षा से प्रधानविवक्षा से संसार में मुख्य और गौण विवक्षा देखी जाती है। जैसे अनुदरा कन्या आदि।।७८।।

भावार्थ :– हे भगवन्। आपके मत में भेद और अभेद प्रमाण के विषय होने से वास्तविक हैं काल्पनिक नहीं हैं। एक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं, उनमे से एक के प्रधान होने पर अन्य धर्म गौण हो जाते हैं। भेद की विवक्षा होने पर अभेद गौण हो जाता है और अभेद की विवक्षा होने पर भेद गौण हो जाता है। अतः एक ही वस्तु में मुख्य और गौण की विवक्षा से भेद और अभेद की सत्ता मानने में कोई विरोध नहीं है।

नित्यत्वैकान्तं निराकर्तुमाह – ।।७९।।

नित्यत्व एकान्तपक्ष का निराकरण करने के लिए कहते हैं – ।।७९।।

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्।।३७।।

उक्तपक्षदोषभयान्नित्यत्वैकान्तपक्ष आश्रीयते तत्रापि सतो भावस्यान्तरावाप्तिर्विक्रिया, सा नोपपद्यते न घटत इत्यर्थः। अत एव कारणात् कारकाणि कर्त्रादीनि तेषामभावः शून्यता। प्रागेव पूर्वमेव। तस्मिन्नभावे कारकविशेषप्रमाणवस्तुयाथात्म्य प्रतिपादकं क्व तस्मिन् किंतु न क्वचिदपि। तदभावे क्व प्रमाणफलमुपेक्षाहानोपानादिकम्?।।८०।।

उक्त पक्ष में दोष के भय से नित्यत्व एकान्त पक्ष को मानते हैं, उसमें भी सत् पदार्थ का-अवस्थान्तर प्राप्तिरूप विक्रिया नहीं उत्पन्न होती इस कारण से। कारको का कर्त्ता आदि का अभाव पहले ही हो जाता है, उसके अभाव में कारकविशेष से प्रमाण

वस्तु के याथात्म्य को बताने वाला कहाँ होगा? कहीं भी नहीं होगा। उसके अभाव में प्रमाण का फल उपेक्षा हानोपानादि कहाँ होंगे?।।८०।।

भावार्थ :– यदि वस्तु को सर्वथा नित्य माना जाय तो उसमें अवस्थान्तर रूप विक्रिया नहीं होगी और अवस्थान्तर के नहीं होने पर कर्ता कर्म आदि कारक तथा वस्तु के यथार्थस्वरूप के प्रतिपादक प्रमाण तथा प्रमाण के फल हेयोपादेय उपेक्षा आदि भी नहीं होंगे।

माभूद्विक्रिया व्यङ्ग्यव्यंजकभावो भविष्यत्यतः आह – ।।८१।।

विक्रिया न हो पर व्यग्यव्यंजक भाव हो जायेगा, ऐसा मानने पर आचार्य कहते हैं।।८१।।

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्।।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः।।३८।।

प्रमाणानि प्रत्यक्षादीनि। कर्तृकर्मकरणसम्प्रदानापादानाधिकरणानि कारकाणि तैर्व्यक्तं प्रकाशितं व्यञ्जितं कृतं। व्यक्तं महदादि। यथेन्द्रियैश्चक्षुरादिभिरर्थो विषयः। चेद्यद्येवं। ते च व्यङ्ग्यव्यञ्जके नित्ये अविचलतैकरूपे। किं विकार्यं यावता हि न किंचिदपि। तव साधोर्मुनेः शासनात् प्रवचनात् बहिरन्ये ष्वयमेव हि व्यक्तमन्यत्। विकारो यो वस्तुन्यन्थाभावो व्यक्तिरप्यन्यथाभावः अव्यक्तात् अव्यक्तद्व्यक्तमन्यत्। तव शासने पुनः सर्वं सुघटम्।।८२।।

प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारण हैं, उन प्रमाण और कारकों के द्वारा महदादि व्यक्त किये जाते हैं। जैसे चक्षु आदि इन्द्रियों से विषयरूपी पदार्थ व्यक्त, प्रकट किये जाते हैं। यदि ऐसा कहते हो तो वे प्रमाण कारकादि व्यंजक और महदादि व्यङ्ग्य उनके यहाँ नित्य हैं सदैव एक रूप रहते हैं फिर विकार कैसे हो? वस्तु में अन्यथाभाव होना ही विकार है, अभिव्यक्ति विकार है। आपके अनेकान्त मत में सभी घटित हो सकते हैं।।८२।।

भावार्थ :– सांख्य कहते हैं कि महदादि व्यक्त प्रमाण और कारकों के द्वारा व्यक्त होते है। किन्तु उनके यहाँ प्रमाण और कारकों को नित्य माना गया है, नित्य कारण से अनित्य कार्य नहीं हो सकता। अतः जिनेन्द्र भगवान के शासन से अतिरिक्त सर्वथा नित्य एकान्तवादियों के यहाँ इन्द्रियों से पदार्थ की तरह कारकों द्वारा महदादि का व्यक्त होना भी घटित नहीं होता।

पुनरपिकदर्थयितुमाह – ।।८३।।

पुनः दूषण दिखाने के लिए कहते हैं ।।८३।।

यदिसत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति।।
परिणाम प्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी।।३९।।

असत्किञ्चिपि नोपपद्यते सर्वं सर्वत्र सर्वस्मादत आह— यदि सर्वथा विश्वप्रकारैर्यथाशक्त्यात्मना एवं व्यक्तात्मनापि कार्यं घटादिकं सत् विद्यमानं पुमानिव पुंवत् सांख्यपरिकल्पितपुरुषवत्। नोत्पत्तुं नो प्रादुर्भवितुमर्हति योग्यं भवति। यद्यत्सर्वथा सत् न तदुत्पद्यते। यथा सांख्यपुरुषः। सच्च सर्वथाऽकार्यं तस्मान्नोत्पद्यते। अथ व्यवस्था तस्य द्रव्यस्य धर्मान्तरत्यागैर्धर्मान्तरोपजनितः परिणाम इष्यतेऽत आह— परिणामस्य प्रक्लृप्तिः कल्पना समर्थनं च सर्वस्य नित्यत्वमितियोऽयमेकान्तस्तस्य बाधिनी निराकरण शीला विरोधिनी इत्यर्थः।।८४।।

सर्वत्र सभी से असत् कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। सांख्य द्वारा माने गये पुरुष के समान, सब प्रकार से शक्तिरूप से तथा व्यक्तिरूप से भी कार्य घटादि सत ही हों तो वह उत्पन्न नहीं हो सकता। जो-जो सर्वथा सत् है, वह उत्पन्न नहीं होता, यदि यह कहो कि हम एक धर्म को त्यागकर दूसरे धर्म की उत्पत्तिरूप परिणाम मानते हैं, अत व्यवस्था बन जाती है तो आचार्य कहते हैं कि परिणाम की कल्पना सभी सर्वथा भिन्न हैं इस एकान्त की विरोधिनी है अर्थात परिणाम की कल्पना करने पर नित्यत्वैकान्त सिद्ध नहीं होता।।८४।।

भावार्थ :— सांख्यमतावलम्बी सभी पदार्थों को सर्वथा नित्य मानते हैं, सर्वथा कूटस्थ नित्य मानने पर किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जैसे कूटस्थ नित्य पुरुष की उत्पत्ति नहीं होती। यदि वे धर्म से धर्मान्तर रूप परिणाम की कल्पना से कार्य की उत्पत्ति मानते हैं तो उनकी यह कल्पना ही नित्यत्व एकान्त की विरोधिनी सिद्ध होती है। एकान्तरूप से सभी पदार्थों को कूटस्थ नित्य मानने वालों के यहाँ परिणाम नहीं हो सकता।

अतो बन्धमोक्षादिकमत्र न सम्भवति नित्यत्वात्प्रकृतिपुरुषयोस्तव मते पुनः सम्भवतीत्याह — ।।८५।।

अतः प्रकृति और पुरुष के नित्य होने के कारण उनके यहां बन्ध मोक्षादि नहीं हो सकते, आपके अनेकान्त मत में बन्ध मोक्षादि सम्भव है। अतः कहते हैं।।८५।।

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः।।४०।।

मैत्रीप्रमोदकरुणादिक्रियाभावे कुतः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं। हिंसादिर शुभपरिणामः पापहेतुत्वात्पापं। तयोः क्रिया क्षयोपार्जनं न स्यान्न भवेत्। अत एव क्रियाऽभावे कुतः प्रेत्यभावो जन्मान्तरफलं च सुखदुःखादिरूपं कुतः। बन्धः कर्मणाऽस्वतन्त्रीकरण मोक्षः स्वात्मोपलब्धिः एतौ च द्वौ

तेषां न येषां त्वं नासि न भवसि नायकः प्रभुः। किमुक्तं भवति– एतत्सर्वं त्वच्छासन एव नान्येषां नित्यत्ववादिनाम्, कुतो विक्रियाऽभावात्।।८६।।

मैत्री, प्रमोद, करूणा आदि क्रिया के अभाव में पुण्य के कारण से पुण्य कैसे होगा? हिंसा आदि अशुभ परिणाम, पाप के कारण होने से पाप हैं। पुण्य पाप दोनों की क्रिया तथा उनका नाश और अर्जन नहीं होगा। अतः क्रिया का अभाव होने पर परलोक कैसे होगा और पुण्य पाप के फल सुख दुःख आदि भी कैसे होंगे? बन्ध कर्म के अधीन होना तथा मोक्ष आत्मस्वरूप की प्राप्ति ये दोनों भी उनके यहाँ नहीं होगें, जिनके आप स्वामी नहीं हैं। क्या कहा गया है। उक्त सभी बातें आपके अनेकान्त शासन में ही सभव हैं अन्य नित्यत्ववादियों के यहाँ संभव नहीं हैं। विक्रिया का अभाव होने से।।८६।।

भावार्थ :– जो सर्वथा सभी पदार्थ को कूटस्थ नित्य मानते हैं, उनके यहाँ। कोई विकार नहीं होने से पुण्य पाप रूप कोई क्रिया नहीं होगी, न परलोक होगा और न पुण्य पाप का फल सुख-दुःख होगा, न बन्ध और मोक्ष ही होगा। आपके शासन में अनेकान्तवाद के कारण उक्त सभी बातें संभव हैं।

न केवलं नित्यैकान्त एतेषामभावः किन्तु – ।।८७।।

केवल अनित्यत्व को एकान्तरूप से मानने वालों के यहा ही पुण्य पाप, सुख दुख आदि का अभाव नहीं है किन्तु ।।८७।।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः।।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम्।।४१।।

क्षणिको निरन्वयविनाशः स एवैकान्तपक्षस्तस्मिन्नपि प्रेत्यभावादीनां जन्मान्तरादीनामसम्भवोऽभावः। प्रत्यभिज्ञा स एवायमिति ज्ञानं सा आदिर्येषां ते प्रत्यभिज्ञादयस्तेषामभावस्तस्मान्न कार्यारम्भ ओदनघटादेरारम्भ आदिक्रिया। अतः कुतः फलं समर्पणादिकं परिहारोऽनिष्टस्य। अस्मादेतत्कार्यं भविष्यति नान्यस्मादेतदपि न सम्भवत्येव। आदिशब्देन पर्यालोचनाध्यवसायादीनां ग्रहणम्। यदि कश्चित् स्थिरः कर्ता स्यादुपादानादीन्यपि यदि स्थिराणि सन्त्यस्य कार्यस्य। एतद्योग्यं एव। तन्निराकरणमपि। कथंचिद्यदि कार्यरूपेण परिणमति तदा सर्वं सुघटं नान्यथा।।८८।।

क्षणिक, सर्वथा विनाश वह ही है, एकान्त उसमें भी परलोक आदि संभव नहीं हैं। प्रत्यभिज्ञा यह वही है इस प्रकार का ज्ञान वह है आदि में जिसके वह प्रत्यभिज्ञा आदि उनका अभाव होने से कोई कार्य आरम्भ नहीं हो सकता। चावल बनाना, घड़ा बनाने का आरम्भ आदि क्रिया है। अतः समर्पण तथा अनिष्ट का परिहार आदि फल

कैसे होंगे? इससे यह कार्य होगा अन्य से नहीं, यह भी संभव नहीं होगा। आदि शब्द से पुनर्विचार अध्यवसाय आदि का ग्रहण है। यदि इस कार्य का कोई स्थिर कर्त्ता हो, उपादान आदि भी स्थिर हों। तभी सब बातें सम्भव हो सकती हैं। उसका भी निराकरण किया गया है। कथंचित् यदि कार्यरूप से परिणमन भी हो तो सभी बातें घटित हो सकती हैं। अन्यथा नहीं।।८८।।

भावार्थ :– बौद्ध क्षणिक को एकान्त रूप से मानते हैं, उनके यहाँ सभी पदार्थ क्षणिक हैं उनके क्षणिकैकान्त पक्ष में कोई नित्य आत्मा नहीं होने से प्रत्यभिज्ञान स्मृति इच्छा आदि भी संभव नहीं हैं, ऐसी स्थिति में किसी कार्य का आरम्भ न हो सकने से पुण्य-पाप आदि का कोई कार्य नहीं हो सकता और जब पुण्य पाप का कोई कार्य नहीं होगा तो परलोक, बन्ध, मोक्ष, सुख-दुःख, आदि फल ही कहाँ से होंगे। इन सबका का अभाव हो जायेगा। कथंचित् परिणमन मानने पर ही उक्त सभी बातें सम्भव हैं।

तत्र कारणे कार्यं मनागपि नास्तीति चेदत आह – ।।८९।।

यदि कारण में कार्य रन्चमात्र भी नहीं है ऐसा मानते हो तो कहते हैं ।।८९।।

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत्।।
मोपादाननियामोभून्माऽश्वासः कार्य जन्मनि।।४२।।

सर्वथा शक्तिव्यक्तिस्वरूपेण यदसदविद्यमानं तत्कार्यं माजनि माभूत्। खपुष्पं गगनकुसुमं तदिव खपुष्पवत्। उपादानं मृत्पिण्डतन्त्वादिकं, तस्य नियामोऽस्मादेतत्कार्यं भवतीति निश्चयः सोऽपि माभूत्। आश्वासोऽस्मादे-तद्भविष्यत्ययमपि माभूत्। कार्यजन्मनि कार्योत्पत्तौ।।९०।।

सर्वथा शक्ति तथा व्यक्तिरूप से जो असत् है, वह कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। आकाश कुसुम के समान उपादान का नियम इससे यह कार्य होता है, यह निश्चय भी नहीं होगा। इस कारण से यह कार्य होगा यह निश्चय नहीं होगा कार्य की उत्पत्ति में।।९०।।

भावार्थ :– यदि कार्य सर्वथा असत् है तो, वह उत्पन्न नहीं होगा जैसे कि आकाश कुसुम कभी नहीं हो सकता। कार्य को सर्वथा असत् मानने पर मिट्टी से ही घड़ा बनेगा, घड़े का उपादान कारण मिट्टी है, यह नियम नहीं बन सकता। गेहूँ के बीज से गेहूँ ही पैदा होगा, यह नियम नहीं हो सकता। गेहूँ के बीज से चना मटर आदि भी उत्पन्न हो सकेंगे।

पुनरपिदोषमुद्भावयितुमाह – ।।९१।।

न हेतुफल भावादिरन्यभावादनन्वयात्।।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक्।।४३।।

पुनः दोष दिखाने के लिए कहते हैं ।।९१।।

क्षणिकैकान्तपक्षे हेतुः कारणम् फलं कार्यं तयोर्भावोऽस्तित्वं आदिर्यस्य स हेतुफलभावादिरुपादानोपादेयस्वरूपं कार्यकारणभावो वाच्यवाचक – भावश्च न स्यात्। कुतोऽन्यभावादत्यन्तपृथक्त्वात्। तदपि कुतोऽनन्वयादेकस्य पूर्वापरावस्थाऽभावात्। तथा सन्तानान्तरे प्रस्तुतसन्तानादन्यः सन्तानम् सन्तानान्तरं तस्मिन्यथा न सम्भवति कार्यकारणभावः मृत्पिण्डाद्धट इव। अभ्युपगम्यैतदुक्तं परमार्थतस्तु सन्तानिभ्यो भिन्नेभ्यः पृथग्भूतेषु। ततो न कश्चिदेकः सन्तानोऽनुगतैकाकारः। अन्यानन्यभावाभ्यां निराकृतत्वात्। तस्मान्न सन्तानो नापि सन्तानिन इति।।६२।।

एकान्तरूप से क्षणिक को मानने पर हेतु फल उसका अस्तित्व आदि हेतु फल उपादान, उपादेय, कार्यकारण भाव, वाच्यवाचकभाव नहीं होगा। कैसे? दोनों के अत्यन्त पृथक होने से, वह भी कैसे? यदि यह कहो तो अन्वय नहीं होने से, एक ही वस्तु की पूर्व और अपर अवस्था का अभाव होने से। सन्तान से भिन्न सन्तानान्तर में मिट्टी से घड़े के समान कार्यकारण भाव सभव नहीं है। वास्तव मे सन्तानी से भिन्न सन्तान में कार्यकारण भाव नहीं बनेगा। अतः अनुगत एकाकार कोई एक सन्तान नहीं है। अन्य और अनन्य भाव से निराकृत होने के कारण अतः न सन्तान है न सन्तानी है।।६२।।

भावार्थ :– क्षणिकैकान्त पक्ष में सर्वथा अन्वय के नहीं होने से कारणभाव और कार्यभाव आदि नहीं बनते। क्योंकि सन्तान सन्तानी से सर्वथा पृथक् सिद्ध नहीं होता। अतः प्रत्येक क्षण के विलक्षण होने पर भी उनमें पृथक-पृथक सन्तान की कल्पना करना और उन सन्तानों के द्वारा कार्यकारणभाव तथा कर्मफल आदि मानना युक्तिसंगत नहीं है।

पुनरपि तस्य दूषणमाह – ।।६३।।

फिर भी क्षणिक एकान्त में पक्ष में दोष बताते हैं।।६३।।

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृतिर्नास्ति बिना मुख्यान्न संवृतिः।।४४।।

सन्तानिभ्यो व्यतिरिक्तः सन्तानो नास्ति किन्तु अन्येषु पृथग्भूतेषू योऽयमनन्यशब्दोऽनन्यबुद्धिश्च सन्तानः सा संवृतिरुपचारः। यद्येवं कथं सा न मृषा व्यलीका भवेत्। न च मुख्यार्थः संवृतिरस्ति, तस्यास्तुच्छरूपत्वात् संवृतिस्तूपचारः। न च मुख्यार्थमन्तरेण संवृतिः, सति मुख्यार्थे तस्याः सम्भवो यथा सिंहोऽयं माणवकः, सति मुख्यसिंहे माणवके सिंहकल्पना। न चैवं संवृतेरस्ति मुख्यार्थ इति।।६४।।

ठीक है, सन्तानी से भिन्न सन्तान नहीं है किन्तु वास्तव में सन्तान और सन्तानी के पृथक् होने पर भी दोनों में जो अनन्य अभिन्न शब्द का व्यवहार किया

जाता है, या अभिन्नता समझी जाती है, वह उपचार है। यदि ऐसा है तो झूठा क्यों नहीं होगा। उपचार मुख्यार्थ नहीं हो सकता क्योंकि वह तुच्छरूप है। मुख्यार्थ के बिना कल्पना नहीं हो सकती। मुख्यार्थ के होने पर ही कल्पना सम्भव है जैसे कि यह बालक सिंह है। मुख्यार्थ सिंह के होने पर बालक में सिंह की कल्पना की जाती है। इस प्रकार कल्पना का मुख्यार्थ नहीं है।।६४।।

भावार्थ :– क्षणिकवादी बौद्ध कहते हैं कि यद्यपि संतान संतानों से भिन्न ही है, किन्तु उसमें जो अभिन्नत्व माना गया है, वह कल्पना है तो आचार्य कहते हैं कि कल्पना सत्य नहीं होती अतः वह झूठी ही है। कल्पना को मुख्यार्थ नहीं माना जा सकता, इसके अतिरिक्त मुख्यार्थ के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसे यह बालक सिंह है। यहाँ बालक में सिह की कल्पना की गई है, किन्तु मुख्य सिंह के बिना बालक में सिह की कल्पना सम्भव नहीं है।

अथैवं परिकल्प्यते – ।।६५।।

बौद्ध पुनः कहते हैं कि फिर ऐसा मानते हैं।।६५।।

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः।।
तत्त्वान्यत्वमवाच्यं चेत्तयोः सन्तानतद्वतोः।।४५।।

यथासर्वधर्मेषु चतस्रः कोटयोः सत्वैकत्वादिषु विभागा यस्यासौ चतुष्कोटिर्विकल्पस्तस्य सदसदुभयादिभेदभिन्नस्य विकल्पस्य। उक्तिर्वचनं तस्या अयोगोऽसम्भवः ततः। तयोः सन्तानतद्वतोश्चतुष्कोटेर्विकल्पस्य वचनस्या– योगात्तत्त्वान्यत्वमेकत्वानेकत्वमवाच्यम्।।६६।।

जैसे सभी धर्मो में सत्त्व एकत्त्व आदि में चार प्रकार का विकल्प का जैसे सत् असत्, उभय, अनुभय, एकत्व, अनेकत्व उभयअनुभय आदि के भेद से भिन्न विकल्प की युक्ति सम्भव नहीं है। सन्तान और सन्तानी में भिन्नत्व अभिनत्व, एकत्व अनेकत्व अवाच्य हैं।।६६।।

भावार्थ :– क्षणिकैकान्तवादी बौद्ध पुनः कहते हैं कि सत् असत् अभय, अनुभय, एक, अनेक, उभय अनुभय आदि चार प्रकार के विकल्पों का सभी धर्मों में कथन नहीं किया जा सकता। अतः सन्तान और सन्तानी में भी चार प्रकार के विकल्प का कथन नहीं हो सकने से उनमें भी अभिन्नत्व तथा भिन्नत्व और एकत्व तथा अनेकत्व अवाच्य हैं।

चेदत आह – ।।६७।।

ऐसा कहने पर आचार्य कहते हैं ।।६७।।

अवक्तव्य चतुष्कोटिविकल्पोऽपि न कथ्यताम्।।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्य विशेषणम्।।४६।।

तर्ह्यवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्पोऽपि यः सोऽपि न कथ्यतां नोच्यतां माभाणीदित्यर्थः। अन्यथा भेदाभेदोभयानुभयस्वरूपेणाभिलप्यत्वे कथंचिद–नभिलप्यत्वं स्यात्। अन्यच्चैवं सतिअसर्वान्तं सर्वविकल्पातीतमवस्तु स्यात्। विशेष्यत इति विशेष्यतेऽनेनेति विशेषणं तयोरभावात्।।६८।।

तब चार प्रकार का विकल्प सभी धर्मों में अवक्तव्य है, यह भी कहना ठीक नहीं है। अन्यथा भेद, अभेद, उभय, अनुभय, रूप से अनभिलाप्य कहने पर कथंचित् अभिलाप्य हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार चतुष्कोटि विकल्प से अवक्तव्य कहने पर वस्तु सभी धर्मों से सभी विकल्पों से रहित अवस्तु हो जायेगी। जिस की विशेषता बतायी जाती है वह विशेष्य और जिसके द्वारा विशेषता बताई जाती है वह विशेषण है, दोनो विशेष्य और विशेषण भी नहीं बनेंगे।।६८।।

भावार्थ :– वस्तु को सत्,असत्, उभय, अनुभय इन चार विकल्पों से अवक्तव्य भी नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार जो वस्तु सभी विकल्पों से, सभी धर्मों से रहित है, अवस्तु हो जायेगी। ऐसी अवस्तु न विशेष्य हो सकती है, न उसका कोई विशेषण हो सकता है जैसे आकाशकुसुम। ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई देती जिसका कोई विशेषण न हो और जो किसी विशेषण का विशेष्य न हो।

अन्यच्च प्रतिषेधोऽपि न घटते तत्कथमत आह– ।।६६।।

दूसरी बात यह है कि असत् का निषेध भी नहीं हो सकता। वह कैसे? यह बताते हैं –।।६६।।

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः सञ्ज्ञिनः सतः।।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः।।४७।।

द्रव्यमादिर्येषां ते द्रव्यक्षेत्रकालभावास्तेभ्योऽन्यानि द्रव्याद्यन्तराणि तेषामभावस्तेन परद्रव्यपरक्षेत्रपरकालपरभावस्वरूपेण यः प्रतिषेधः सतो विद्यमानस्य। संज्ञिनो नामवतो भवति। यः पुनरसद्भेदो भावविशेषः परपरिकल्पतो नासौ भावः स्वलक्षणम्। विधिनिषेधयोरस्तित्वनास्तित्वयोः। स्थानमास्पदम्। कुतः सर्वथा तस्य तुच्छत्वात्। तस्माद्भाव एव विधिनिषेध ायोरवस्थानं तस्यैव स्वपररूपेणास्तित्वनास्तित्वम्।।१००।।

द्रव्य है आदि में जिसके वे द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव उससे भिन्न द्रव्याद्यन्तर, परद्रव्य, पर क्षेत्र, परकाल, परभाव, स्वरूप से जो प्रतिषेध किया जाता है वह सत् विद्यमान वस्तु का ही किया जाता है, नाम वाली वस्तु का होता है। बौद्धों द्वारा जो असत् वस्तु की कल्पना की गई है वह स्वलक्षण रूप पदार्थ नहीं है। विधि निषेध, अस्तित्व, नास्तित्व का विषय कैसे? उसके सर्वथा तुच्छ होने से अतः सत् वस्तु का ही विधि

निषेध किया जा सकता है, उसी का स्वरूप और पररूप से अस्तित्व, नास्तित्व है।।१००।।

भावार्थ :– जो वस्तु है, वह सत्ता है, उसी का परद्रव्य, क्षेत्र,काल,भाव से निषेध किया जाता है। जो वस्तु है ही नहीं उसका विधि निषेध अथवा अस्तित्व नास्तित्व का कथन नहीं किया जा सकता।

यतः – ।।१०१।।

क्योंकि ।।१०१।।

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात् सर्वान्तैः परिवर्जितम्।।

वस्त्वेवांवस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।४८।।

सर्वान्तैः सर्वधर्मैः। परिवर्जितं विरहितम्। सर्वथा यत्तदनभिलाप्यमवाच्यं अवस्तु स्यात् न किञ्चदपि भवेत् पर परिकल्पितं। कथं तर्ह्यवस्तुत्वमत आह वस्त्वेवावस्तुतां याति क्रियायाः। सर्व एव पदार्थो समर्थो भवति कुतः प्रक्रियायाः स्वरूपादिचतुष्टयलक्षणायाः। विपर्ययात्पररूपादिचतुष्टयात्। तस्माद्यदवस्तु तदनभिलाप्यं यथा न किंचित्। यत्पुनरभिलाप्यं तद्वस्तु यथा खापुष्पम्। तस्मादेतदेवैकस्योपलब्धिर्यदन्यस्यानुपलब्धिरिति।।१०२।।

सर्वथा रूप से सब धर्मों से रहित जो है वह पर परिकल्पित अवाच्य है, किन्तु वह अवस्तु ही है कुछ नहीं है। फिर अवस्तुत्व कैसे हैं? यह कहने पर कहते हैं प्रक्रिया के द्वारा वस्तु ही अवस्तुता को प्राप्त होती है, कैसे? प्रक्रियाया, स्वरूपादि चतुष्टय लक्षणाया, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव रूप चतुष्टय की प्रक्रिया से उसके उल्टे पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, और परभाव रूप चतुष्टय से उससे जो अवस्तु है, वह अनभिलाप्य अवक्तव्य है जो कुछ नहीं है जो वक्तव्यहै वह वस्तु है जैसे आकाशकुसुम। अतः एक की उपलब्धि ही अन्य की अनुपलब्धि है।।१०२।।

भावार्थ :– सभी धर्मो से रहित जो अनभिलाप्य, अवक्तव्य है, वह अवस्तु ही है अर्थात् कुछ भी नहीं है। जो स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। वस्तु ही प्रक्रिया के बदल जाने से अवस्तु हो जाती है।

पुनरप्यवक्तव्यवादिनमुपालभते – ।।१०३।।

फिर अवक्तव्यवादी का दोष बताते हैं।।१०३।।

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।।

संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात्।।४६।।

यदि सर्वान्ताः सर्वधर्मा अवक्तव्या अवाच्यास्तेषां मतानां यदेतद्वचनमुक्ति

"सर्वथा प्रतिक्षणं निरन्वयविनाशिनो निरंशाः सजातीय विजातीय व्यावृत्ता इत्यादिकं" पुनः पुनरावर्तमानं किमर्थं स्यात्। अथ मतं परमार्थं न तद्भवेत्किन्तु संवृतिः। यद्येवं मृषैवैषा व्यलीकैव सा। कुतः। परमार्थस्य तत्त्वरूपस्य विपर्ययोऽभावः संवृतिर्नामोपचारः। न च सा परमार्थमन्तरेण भवति।।१०४।।

यदि सभी धर्म अवक्तव्य हैं, अवाच्य हैं, ऐसा लोग कहते हैं उनके मत में जो यह कथन है। सर्वथा प्रतिक्षणनिरन्वय विनाशी निरंश सजातीय विजातीय इत्यादिक। पुनः पुनः आगमन किसलिये होगा। यदि यह कहो कि वास्तव में नहीं होता किन्तु उपचार से होता है यदि ऐसा होता है तो वह असत्य ही है, कैसे? वास्तविक तत्त्वरूप का अभाव उपचार है वह मुख्य वास्तविक उपचार के बिना नहीं होता।।१०४।।

भावार्थ :— जो सभी धर्मों को अवक्तव्य मानते हैं, उनके यहाँ किसी प्रकार का कोई कथन नहीं हो सकता। यदि वे यह कहें कि वास्तव में तो अवक्तव्य ही हैं। उपचार से कथन होता है तो उपचार को सत्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह वास्तविक नहीं है। इसके अतिरिक्त मुख्यार्थ के बिना उपचार या कल्पना संभव नहीं है।

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः।।
आद्यन्तोक्ति द्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटम्।५०।।

इदं तावदवक्तव्यादी प्रष्टव्यः। किमशक्यत्वादसामर्थ्यादवाच्यम्? आहोस्विदभावात्? किमज्ञानात्? विकल्पत्रयम्। न तावदशक्यत्वाद् दशनागसहस्रबलत्वाद् बुद्धस्य। नाप्यज्ञानात्सर्वज्ञत्वेन परिकल्पितः यतः यस्मादाद्युक्तिरादिविकल्पोऽन्तोक्तिस्तृतीय विकल्प एतद्द्वयं न भवेत्। तस्मात्किं व्याजेन छद्मना। उच्यतां भव्यतामभावादेवावाच्यं स्फुटमिति। न चैतदभावमात्रं प्रमाणसिद्धं प्रमाणस्याप्यभावात्।।१०५।।

अवक्तव्यवादी से यह पूछा जाना चाहिए कि असमर्थता के कारण अवाच्य है या अभाव होने के कारण अवाच्य है अथवा अज्ञान के कारण अवाच्य है? तीन विकल्प हैं। असमर्थता के कारण तो कह नहीं सकते, दस हजार हाथियों के समान बुद्ध के बलशाली होने से बुद्ध को सर्वज्ञ माना जाने के कारण। अज्ञान से भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रथम विकल्प असमर्थता के कारण और अन्तिम विकल्प अज्ञानता के कारण दोनों नहीं हो सकते। फिर छल से क्या लाभ है? अतः अभाव के कारण ही अवाच्य है, यह स्पष्ट कहो। यह अभावमात्र प्रमाण से सिद्ध नहीं है, प्रमाण का भी अभाव नहीं होने से।।१०५।।

भावार्थ :— अवाच्यता को ही एकान्तरूप से मानने वालों से यह पूछना चाहिए कि अवाच्यता तीन कारण से हो सकती है- असमर्थता के कारण, अज्ञानता के कारण

अथवा अभाव के कारण अवाच्यता है? असमर्थता के कारण नहीं कहा जा सकता क्योंकि बुद्ध को दस हजार हाथियों के बराबर शक्तिशाली माना गया है, अज्ञानता के कारण भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि बुद्ध को सर्वज्ञ माना गया है, अभाव कारण ही कहा जा सकता है। किन्तु अभाव मात्र मानने पर प्रमाण का भी अभाव हो जायेगा फिर अभाव को प्रमाण से कैसे सिद्ध किया जा सकता है?

क्षणिकैकान्तवादिकल्पिता हिंसा पंचभिः कारणैः प्राणप्राणिजनव्याघात चित्ततद्गतचेष्टाप्राणवियोगैर्न। बन्धमोक्षादिश्च न घटत इत्याह –

क्षणिक एकान्तवादियों के द्वारा कल्पित हिंसा पांच कारणों से प्राण, प्राणिजनव्याघात, चित्त, वित्त की चेष्टा और प्राणवियोग से नहीं हो सकती, सब को क्षणिक होने के कारण बन्ध मोक्षादि भी घटित नहीं होंगे। अतः आचार्य कहते हैं-।।१०६।।

हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।।
बद्धयते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते।।५१।।

क्षणिकैकान्तवादेऽभिसन्धिमन्मारणाभिप्रायवत् चित्तं। तत्परिकल्पितरूपज्ञानं जीवसदृशं तत्प्राणिनं न हिनस्ति न मारयति। यच्च हिनस्ति तदनभिसन्धातृ अनभिप्रायवत्। बध्यते च कर्मणा तद् द्वयापेतम्।।१०७।।

क्षणिकैकान्तवादियों के यहॉ मारने की इच्छा रखने वाला, चित्त जिस जीव को मारने की कल्पना करता है उसको नहीं मारता है। जो मारता है वह मारने की इच्छा रखने वाला नहीं होता। इन दोनों से भिन्न ही व्यक्ति कर्मों से बद्ध होता है और जो बद्ध हो जाता है वह मुक्त नहीं होता।।१०७।।

भावार्थ :– क्षणिकैकान्तवादी बौद्धों के यहाँ क्षण क्षण में प्रत्येक पदार्थ का विनाश होता रहता है। अतः जो हिंसा करना चाहता है, वह हिंसा नहीं करता और जो हिंसा करना नहीं चाहता है वह हिंसा करता है, क्योंकि जो हिंसा करने की इच्छा करता है वह दूसरे क्षण में नहीं रहता। उसी प्रकार जो हिंसा करने का विचार भी नहीं करता और हिंसा करता भी नहीं है वह हिंसा के पाप से बंध जाता है और जो बंधता है वह मुक्त होता है क्योंकि जो बंधता है वह अग्रिम क्षणों में नष्ट हो जाता है। इस प्रकार क्षणिकैकान्त में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

तद्वचनविरोधंदर्शयति – ।।१०८।।

उनके ही वचनों का विरोध दिखाते हैं ।।१०८।।

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।।
चित्त सन्ततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः।।५२।।

यो हिंसाया हेतुर्निमितं नासौ हिंसकः प्राणवियोजकः कुतोऽहेतु – फलवान्नाशस्य। यदेवप्राणिनो मरणनिमित्तं यश्च मोक्षस्तैरभ्युपगतः चित्तानां रूपविज्ञानक्षणानां सन्ततिर्नैरन्तर्यं तस्य नाशः क्षयः प्रदीप निर्वाणरूपो वा। अष्ट अङ्गान्यवयवा यस्य स हेतुर्यस्यासौ अष्टाङ्गहेतुकः। कानि तान्यष्टाङ्गानि सम्यक्त्वसंज्ञासंज्ञिवाक्कायकर्मान्तर्व्यायामस्मृति समाधि लक्षणानि। सोऽपि न स्यात्। कुतः स्वत एव हेतुमन्तरेणाभ्युपगतत्वात्।।१०६।।

जो हिंसा का कारण है वह हिंसक नहीं है कैसे? विनाश के बिना कारण होने से स्वभाव से ही होने के कारण। प्राणियों के मरण का कारण तथा मोक्ष जो उनके द्वारा माना गया है, चित्त के रूप को जानने के क्षणों की संतति निरन्तरता, उसका क्षय प्रदीप के बुझने के समान स्वतः होता है। आठ प्रकार के कारण वे कौन है? सम्यक्त्व, संज्ञा संज्ञि, वचन, काय तथा मन की क्रिया स्मृति और समाधि वह भी नहीं होगा। क्यों? हेतु के बिना स्वतः ही माना जाने से?।।१०६।।

भावार्थ :– जब प्रत्येक वस्तु स्वभाव से ही सर्वथा क्षणिक, विनश्वर है तो हिंसा करने वाला किसी प्राणी के मरण का कारण नहीं हो सकता। चिन्त की सन्तान परम्परा भी नहीं होगी, क्योंकि वह भी क्षणिक है। सम्यक्त्व संज्ञा, संज्ञी, मन, वचन, काय की क्रिया, स्मृति तथा समाधि बौद्धों ने जो आठ मोक्ष के कारण माने हैं वे भी व्यर्थ होगें क्योंकि मोक्ष भी बिना कारण के अहेतुक स्वाभाविक ही माना गया है। अतः सर्वथा क्षणभंगुरता के मानने पर उनके अपने ही वचन का विरोध होता है।

अथ मतं स्वभावविनाशार्थं न निमित्तमस्माभिरिष्यते, किन्तु विसभागार्थमित्यत आह– ।।११०।।

यदि यह कहो कि स्वभाव के विनाश के लिए हम कारण को नहीं मानते हैं किन्तु विभाग के लिए मानते हैं, विरूपकार्य की उत्पत्ति के लिए मानते हैं तो आचार्य कहते हैं।।११०।।

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतु समागमः।।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत्।।५३।।

विरूपकार्यं विभागसन्तानः कपालादिस्तस्यारंभस्तस्मै विरूपकार्यारम्भाय। यदि हेतोः समागमः कारणापेक्षणं। तर्ह्यसौ विरूपकार्यारम्भ आश्रयिभ्या– मुत्पादविनाशभ्यामनन्योऽभिन्नः। कुतोऽविशेषादभेदात्। अविशेषेणाभेदेनोपलब्धि– राश्रयिभ्यो यतः। अयुक्तवत् यथा ग्राह्यग्राहयकाकाराभ्यां अयुतसिद्धयोः।।१११।।

विरूप कार्य घड़े का कपाल बनना, उसके लिए यदि कारण की अपेक्षा है तो

यह विसदृश कार्य की उत्पत्ति अपने आश्रयी उत्पाद और विनाश से भिन्न नहीं है, क्यों? समानता होने से। क्योंकि वह विसदृश कार्य उत्पाद और विनाश से भिन्न नहीं है। अयुक्त के समान, तादात्म्य को प्राप्त वृक्षपना और शीशमपने के कारण के समान, वृक्ष और शीशम दोनों एक दूसरे से तादात्म्य को प्राप्त हैं, अतः जो वृक्ष का कारण है, वही शीशम का कारण है।।१११।।

भावार्थ :– जैसे तादात्म्य को प्राप्त वृक्ष और शीशम का कारण एक ही है उसी प्रकार विसदृश कार्य के आरम्भ के लिए हेतु को मानते हो तो विनाश के लिए भी हेतु को मानना पड़ेगा। क्योंकि जो कपाल के उत्पाद का कारण है, वही घटके विनाश का कारण है, दोनों भिन्न नहीं है, अतः कपाल के उत्पाद को सहेतुक मानने पर घट के विनाश को भी सहेतुक मानना पड़ेगा।

चित्तविशेषरूपरसादि बद्धान् प्रागुत्पादादीनभ्युपगम्य क्षणिकवादे दूषणमभाणि। साम्प्रतं तु तेषामुत्पादादीनामसम्भवमेव दर्शयन्नाह–।।११२।।

चित्त विशेष रूप रसादि से युक्त पहले उत्पाद आदि को मानकर क्षणिकवाद मे दूषण दिखाया। अब उनके यहाँ उत्पाद, व्यय तथा स्थिति को असंभव दिखाते हुए कहते हैं।।११२।।

स्कन्धाः सन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाण वत्।।५४।।

स्कन्धा रूपवेदनाविज्ञानसंज्ञासंस्कारास्तेषां सन्ततयश्च कार्य–कारणयोरविच्छेदाः। एवकारोऽवधारणार्थः। असंस्कृता एवापरमार्था एव। कुतः संवृतित्वान्मिथ्यारूपत्वात्। अतस्तेषां स्थितिः। सदवस्थानमुत्पत्तिर्घटावस्था विनाशः कपालादिरूपस्ते न स्युर्न भवेयुः, खरविषाणवत्। यथा खरविषाणस्य स्थित्युत्पत्तिव्यया न सन्त्येवमेतेषामभावं प्रत्यविशेषात्। यत्पुनः संस्कृतं तत्परमार्थसत्, यथा स्वलक्षणम्। न तथा स्कन्धाः सन्ततयश्च। ततः स्थित्युत्पत्तिविरहस्ततोऽपि विसभागसन्तानोत्पत्तये विनाश हेतुरिति पोप्लूयते।।११३।।

रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार रूप बौद्धों द्वारा माने गये पांच स्कन्ध और उनकी सन्ततियों में कार्य कारण भाव नहीं बनता। 'एव' शब्द निश्चयार्थ है वास्तविक सत्य नहीं हैं काल्पनिक होने से, मिथ्या होने से। अतः उनकी स्थिति सत्ता, उत्पत्ति और विनाश नहीं होंगे, गधे के सींग के समान। जैसे गधे के सींग की स्थिति उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, अभाव होने के कारण, उसी प्रकार स्कन्ध तथा उनकी सन्ततियों की भी स्थिति उत्पत्ति और विनाश नहीं होंगे, अभाव की दृष्टि से दोनों में

समानता होने से जो संस्कार सहित है वही मुख्यरूप से सत् है जैसे स्वलक्षण, स्कन्ध और सन्ततियां वैसी नहीं हैं। अतः स्थिति और उत्पत्ति से रहित हैं तो भी विभाग सन्तान की उत्पत्ति के लिए विनाश का कारण है, ऐसा बौद्ध मानते हैं।।११३।।

भावार्थ :– स्कन्ध और सन्ततियों के काल्पनिक होने के कारण वे अवस्तु ही होंगे, उनमें कार्यकारण भाव भी नहीं बनेगा। जो अवस्तु है वस्तु ही नहीं है उससे स्थिति उत्पत्ति और विनाश भी नहीं है। जैसे गधे के सींग। गधे के सींग होता ही नहीं, अतः उसकी स्थिति, उत्पत्ति और विनाश भी नहीं होता। उसी प्रकार बौद्धों द्वारा कल्पित स्कन्ध और सन्ततियों के भी काल्पनिक होने से अवस्तु होने के कारण उनकी भी स्थिति, उत्पत्ति और विनाश नहीं होंगे।

यस्य मिथ्यादृश उभयैकान्तपक्षस्तन्निरासार्थमाह – ।।११४।।

जो मिथ्यादृष्टि उभयैकान्तपक्ष को मानते हैं, उसका निराकरण करने के लिए कहते हैं – ।।११५।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युनिर्क्तनवाच्यमिति युज्यते।।५५।।

उभयैकात्म्यं नित्यानित्यैकान्तद्वयमयुक्तमङ्गीकर्तुं कुतो, मिथ्यादृशां तद्विरोधात्। अनभिलाप्यमपि न युक्तमनेकान्तवैरिणाम्।।११५।।

नित्य और अनित्य उभयैकान्त भी नहीं कहा जा सकता। एकान्तवादियों के यहाँ दोनों में विरोध होने से एकान्तवादियों के यहाँ अवक्तव्य भी नहीं कहा जा सकता।।११५।।

एकान्तवादिपक्षं निरस्यानेकान्तं समर्थयन्नाह – ।।११६।।

एकान्तवादियों के पक्ष का खण्डन करके अनेकान्तवाद का समर्थन करते हुए कहते हैं।।११६।।

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।।
क्षणिकं काल भेदात्ते बुद्ध्यसञ्चरदोषतः।।५६।।

तच्छब्देन तत्त्वमुच्यते प्रस्तुतत्वात्। तत्त्वं कथंचिन्नित्यं प्रत्यभिज्ञानात्। वस्तुनः पूर्वापरकालव्याप्तिः ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानं। यथा स एवायं देवदत्त इत्यादि। तस्मात्प्रत्यभिज्ञानात्। तस्य प्रत्यभिज्ञानस्य अविच्छिदा अविच्छेदोऽन्वयः। सोऽकस्मादहेतोर्न भवति यस्मात्। न च नित्यत्वमेव। कालभेदात्परिणामवशात् क्षणिकं नश्वरं। तवार्हद्भट्टारकस्य नान्यस्य क्षणिकाक्षणिकवादिनः। बुद्धेरसंचारोऽसंचरणमन्यत्रागमनं स एव दोषस्तस्मात्। न हि एकं पदार्थं विज्ञायान्यस्य पदार्थस्य परिच्छित्तिः सम्भवति। स्यादुभयैकान्ते पुनः सुघटा।।११७।।

तत् शब्द से तत्त्व कहा जाता है, प्रस्तुत होने के कारण तत्त्व कथंचित नित्य है प्रत्यभिज्ञान के कारण। वस्तु के पहले और बाद के काल में व्याप्ति होना प्रत्यभिज्ञान है। जैसे वह ही यह देवदत्त है इत्यादि। उस प्रत्यभिज्ञान से उस प्रत्यभिज्ञान का अन्वय है। क्योंकि वह अकस्मात् बिना कारण नहीं होता, केवल नित्यत्व ही नहीं है। कालभेद से परिणमन होने के कारण क्षणिक है, नश्वर है। आपके अर्हन्त भगवान के न्याय में ही है, अन्य सर्वथा अनित्य तथा नित्यवादियों के यहाँ नहीं है। सर्वथा नित्यानित्यवादियों के यहाँ बुद्धि का संचार नहीं होने के दोष से एक पदार्थ को जानकर अन्य पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता ? ।।११७।।

भावार्थ :— वस्तु प्रत्यभिज्ञान का विषय होने से नित्य है। प्रत्यक्ष और स्मृति का जोड़ रूप ज्ञान प्रत्यभिज्ञान होता है 'यह वही देवदत्त है' इसमें यह प्रत्यक्ष विषय है और वही स्मृति का। यह वर्तमान का विषय है और वही अतीत का विषय है, उक्त दोनों अवस्थाओं में रहने वाला प्रत्यभिज्ञान का विषय है पूर्व और उत्तर क्षणों में अन्वय नहीं होने पर प्रत्यभिज्ञान नहीं हो सकता। प्रत्यभिज्ञान के कारण वस्तु नित्य है और पूर्व उत्तरक्षणों की वस्तु में काल का भेद है अतः पर्याय भेद से वह अनित्य भी है। अतः वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। यह अनेकांत मत में ही सम्भव है एकान्त वाद में नहीं।

तदेव दर्शयति – ।।११८।।

वही दिखाते हैं ।।११८।।

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्त मन्वयात्।।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्।।५७।।

कथमनेकान्ते त्रयमेकस्मिन् संभवतीति चेदत आह— सामान्यात्मना द्रव्यरूपेण नोदेति, नोत्पद्यते, न व्येति, न विनश्यति। कुतोऽन्वयात् सर्वपर्यायेष्वनुगतैकाकारेण वर्तनात्। व्यक्तं स्फुटमेतत्। विशेषात्पर्याय –रूपेणोत्पद्यते विनश्यति च। तवार्हतः। सह युगपदेकत्रैकस्मिन् वस्तुनि। उदयादि सत्–उत्पाद–विनाशस्थितयः सत्यो विरोधाभावात्।।११६।।

अनेकान्त में एक ही पदार्थ में उत्पत्ति, स्थिति और विनाश कैसे संभव है यदि यह कहो तो आचार्य कहते हैं सामान्य रूप से द्रव्यरूप से न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। क्यों? अन्वय होने से। सभी पर्यायों में रहने वाले एकाकार के कारण यह स्पष्ट है। विशेषरूप से पर्यायरूप से उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है। आप अर्हन्त भगवान के यहाँ एक साथ ही वस्तु में उत्पत्ति, विनाश और स्थिति होती है, विरोध नहीं होने से।।११६।।

भावार्थ :— अनेकान्त मत में अर्हन्त भगवान के मत में एक ही वस्तु में एक साथ

उत्पत्ति, विनाश और स्थिति तीनों होते हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है। द्रव्यरूप से तो कोई वस्तु न उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है। क्योंकि सभी पर्यायों मे अनुगत एकरूपता होती है। विशेषरूप से अर्थात पर्याय रूप से प्रत्येक वस्तु में उत्पाद और विनाश होता है। अत: एक ही वस्तु में उत्पत्ति, विनाश और स्थिति तीनों संभव हैं कोई विरोध नहीं है।

कथं य एवोत्पादः स एव विनाशो यावेव विनाशोत्पादौ तावेव स्थितिरित्यत आह – ।।१२०।।

कैसे जो उत्पाद है वही विनाश है और विनाश और उत्पाद है वहीं स्थिति है ऐसा प्रश्न करने पर आचार्य कहते हैं - ।।१२०।।

कार्योत्पादः क्षयोहेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।।

न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत्।।५८।।

योऽयं कार्यस्योत्पादः स एव हेतोरुपादानकारणस्य क्षयो विनाशो नियमान्निश्चयात्। लक्षणात्पुनः पृथग्भिन्नौ स्वरूप भेदात्। जात्यादेरवस्थानात् सत्त्वप्रमेयत्वादिना न तौ भिन्नौ। कुतस्तेन रूपेणैकत्वात्। अनपेक्षाः परस्परापेक्षामन्तरेण ते स्थित्युत्पत्तिविनाशाः खपुष्पसमानाः। तस्मादेते कथंचित् परस्परमभिन्नाः कथंचिद्भिन्नाश्च भवन्ति।।१२१।।

जो कार्य की उत्पत्ति है वही, हेतु उपादान कारण विनाश है। निश्चय से दोनों उत्पाद और व्यय स्वरूप भेद के कारण भिन्न हैं। जाति आदि के कारण अवस्थान के कारण सत्व प्रमेयत्व आदि के कारण उत्पाद और व्यय भिन्न नहीं हैं। कैसे? उस रूप से एक होने के कारण, परस्पर अपेक्षा के बिना उत्पत्ति और विनाश आकाश कुसुम के समान अवस्तु हो जायेंगे। अत. ये तीनों कथचिंत परस्पर अभिन्न और कथचित भिन्न हैं।।१२१।।

भावार्थ :– द्रव्यदृष्टि से किसी वस्तु का न उत्पाद होता है न विनाश। वह सदैव एक सी रहती है, पर्यायरूप से उत्पत्ति और विनाश होता है, कार्य की उत्पत्ति ही कारण का विनाश है। एक पर्याय की उत्पत्ति तभी होती है, जब पूर्व पर्याय का विनाश होता है, अतः उत्पाद और व्यय दोनों एक साथ होते हैं और द्रव्य की सत्ता दोनों में समान रूप से होती हैं, इस प्रकार एक वस्तु में एक साथ स्थिति, उत्पत्ति और विनाश तीनों होते हैं।

लौकिकदृष्टान्तेन स्पष्टयन्नाह – ।।१२२।।

लौकिक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हुए कहते हैं।।१२२।।

घटमौलिसुवर्णार्थी   नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।

शोक प्रमोद् माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।५६।।

अयं जनस्त्रितयार्थी यो घटार्थी स तस्मिन् भग्नेशोकं याति। यश्च मौल्यर्थी स तस्मिन्नुत्पन्ने हर्षं याति। यश्च सुवर्णार्थी स माध्यस्थ्यं याति सुवर्णसद्भावात्। न चैतदहेतुकं किन्तु सहेतुकमेव। तदेव सुवर्णद्रव्यं घटस्वरूपेण विनश्यति, तदेव मौलिस्वरूपेणोत्पद्यते, सुवर्णस्वरूपेणानु–गतैकाकारस्वरूपेण तिष्ठति। एवं सर्वं वस्तु।।१२३।।

तीन प्रकार की चीजों की इच्छा रखने वाले मनुष्य हैं जो घड़ा चाहने वाला है, वह उसके टूटने पर दुःखी होता है। जो मुकुट चाहने वाला है, वह उसके उत्पन्न होने पर प्रसन्न होता है और जो स्वर्ण चाहता है वह मध्यस्थभाव को प्राप्त होता है सुवर्ण के दोनों अवस्था में रहने के कारण। यह बिना कारण नहीं है सकारण है। वही सोना रूपी द्रव्य घटरूप मे नष्ट होता है, वही मुकुट रूप से उत्पन्न होता है और वही सोने के रूप में दोनों अवस्था में स्थित रहता है। इसी प्रकार सभी वस्तुओं में उत्पाद और ध्रौव्य पाया जाता है।।१२३।।

भावार्थ :– प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है, इसी बात को लौकिक दृष्टान्त से पुष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं - एक सोने का घड़ा है, एक व्यक्ति सोने के घड़े को चाहता है, दूसरा सोने के मुकुट को चाहता है और तीसरा व्यक्ति केवल सोने को चाहता है। सोने के घड़े को तोड़कर मुकुट बना देने पर पहला व्यक्ति दुःखी होता है क्योंकि अब घड़ा नहीं रहा, नष्ट हो गया दूसरा व्यक्ति प्रसन्न होता है क्योंकि मुकुट बन गया, तीसरा व्यक्ति मध्यस्थ रहता है क्योंकि सोना घड़े के रूप में भी था मुकुट के रूप में भी। ये तीनों बातें हेतु सहित हैं, बिना हेतु के नहीं हैं। स्वर्ण द्रव्य नित्य है और घड़ा तथा मुकुट उसकी पर्याय, घड़े का विनाश हुआ और मुकुट की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार एक ही वस्तु में उत्पाद, व्यय और नित्यता तीनों पायीं जाती हैं।

पुनरपि लोकोत्तरदृष्टान्तेन पोषयति–।।१२४।।

लौकिक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हुए कहते हैं।।१२४।।

पयोव्रतो न दध्यति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।

अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्।।६०।।

यस्य पयो दुग्धमेवाहं भुंज इति व्रतं नियमो, नासौ दध्यति दधिं भुङ्क्ते। यस्य च दध्यहं भुंज इति व्रतं नासौ पयोऽत्ति दुग्धं भुङ्क्ते। यस्य च

गोरसमहं भुंज इति व्रतं नासावुभयमत्ति। कुतो गोरसरूपेण तयोरेकत्वात्। दुग्धव्रतस्य दधिरूपेणाभावात्। दधिव्रतस्य पयोरूपेणाभावात्। अगोरसव्रतस्य दधिदुग्धरूपेणाभावात। तस्मात्तत्वं वस्तुत्रयात्मकं स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकं सुघटमेतदनेकान्ते जैनमत इति स्थितम्।।१२५।।

जिसका दूध पीने का ही नियम है, वह दही नहीं खाता। जिसका दही खाने का ही नियम है, वह दूध नहीं पीता। जिसका गौरस पीने का नियम है, वह दूध दही दोनों नहीं खाता, क्यों? गोरस के रूप से दूध और दही दोनों के एक रूप होने से दही खाने के नियम वाले को दही के रूप में दूध का अभाव होने से,अगोरस व्रत वाले को दोनों में ही अगोरस का अभाव होने से। अतः वस्तु, स्थिति, उत्पत्ति और व्ययात्मक तीनों रूप है। अनेकान्त में जैनमत में यह सुघट है।।१२५।।

भावार्थ :– तत्त्व स्थिति उत्पत्ति और व्यय इन तीनों रूप है। क्योंकि गोरस दूध और दही दोनों पर्याय में रहता है, किन्तु दूध का जब दही बन जाता है तो दूध की पर्याय नष्ट हो जाती है दही की पर्याय उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए जिसका दूध पीने का नियम है, वह दूध ही पीता है, दही नहीं खाता, जिसका दही खाने का नियम है, वह दही ही खाता है, दूध नहीं पीता और जिसका गोरस नहीं लेने का नियम है वह दूध और दही दोनों नहीं लेता, क्योंकि गोरस दोनों में ही स्थित रहता है।

द्रव्यपर्यायरूपं तत्त्वं व्यवस्थाप्य नैयायिक वैशेषिकमतमाशङ्क्य दूषयतिकामः प्राह – ।।१२६।।

द्रव्यपर्याय रूप तत्त्व को बताकर नैयायिक और वैशेषिकमत में दोष दिखाने के लिये कहते हैं।।१२६।।

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यताऽपि च।
सामान्यतद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते।।६१।।

कार्यं घटादि कारणं मृत्पिण्डादिकं तयोर्नानात्वं भेद इष्यते चेत् गुणो रूपादिर्गुणी द्रव्यं तयोरपि यद्यन्यतेष्यते सर्वथा भेद इष्यते। सामान्यं बुद्ध्यभिधानप्रवृत्तिलक्षणं तद्वत्सामान्यवत् व्यक्तयः। तयोश्च यद्यन्यतेष्यते सर्वथैकान्तेन।।१२७।।

कार्य घटादि रूप और कारण मिट्टी का डला इन दोनों में यदि भिन्नता मानते हो, रूप गुणादि और गुणी द्रव्य दोनों में यदि सर्वथा भेद मानते हो, सामान्य बुद्धि आदि और सामान्यवान् व्यक्ति इन दोनों में यदि एकान्तरूप से भिन्नता मानते हो।।१२७।।

भावार्थ :– नैयायिक और वैशेषिक कार्य कारण में, गुण गुणी में, अवयव अवयवी में, सामान्य सामान्यवान में और विशेष विशेषवान में सर्वथा भेद मानते हैं आचार्य कहते

हैं, उनका यह मानना ठीक नहीं है।

तदानीं किं स्यादत आह —

तब क्या होगा? आचार्य कहते हैं - ।।१२८।।

एकस्यानेक वृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते।।६२।।

एकस्यावयव्यादेः कार्यस्य घटादेरनेकेषु स्वारम्भकावयवेषु वृत्तिर्वतनं न स्यात्। कुतोभागाभावात् निरवयत्वात्। अवयविनो अर्थे वर्तन्ते। अवयविबहुत्वं स्यादनिष्टं चैतत्। यथास्य भागाः परिकल्प्यन्त एवं सति नैकत्वमस्य भागित्वात्। तस्मादनार्हते मते वृत्तेर्विकल्पस्य सर्वात्मनैकदेशेन दोष एव। आर्हते पुनर्मते सर्वं युक्तमनेकान्तात्।।१२६।।

एक अवयवी आदि कार्य की अपने कारण अनेक अवयवों में वृत्ति नहीं होगी। कैसे? भाग का अभाव होने से अवयवी के खंड नहीं होते अवयवी पदार्थ में होते हैं। अवयव बहुत से होंगे, यह दोष होगा यदि अवयवी कार्य के भाग मानते हों तो उसका एकत्व नहीं होगा, भाग होने से। अतः अर्हन्त भगवान के मत को न मानने वाले एकान्तवादियों के यहाँ सर्वात्मना अथवा एकदेश रूप से वृत्ति मानने पर दोष ही होता है। अर्हन्त भगवान के मत में अनेकान्तवाद के कारण कथचिंत भेदाभेद ही ठीक है।।१२६।।

भावार्थ :— एक अवयवी की अनेक अवयवों में वृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि अवयवी के खण्ड नहीं हो सकते। यदि अवयवी के भाग मानोगे तो वह भागवाला होने के कारण एक नहीं होगा। इस प्रकार अर्हन्तमत को नहीं मानने वाले एकान्तवादियों के यहाँ अनेक दोष होते हैं। अनेकान्त मत के अनुसार अवयव अवयवी, गुण-गुणी आदि न तो सर्वथा पृथक पृथक हैं और न समवाय सम्बन्ध से एक दूसरे में रहते हैं अपितु तादात्म्य सम्बन्ध होने से कथचिंत एक भी हैं और कथंचित भिन्न भी हैं।

पुनरपि भेदपक्षे दूषणमाह — ।।१३०।।

पुनः भेदपक्ष में दोष बताते हैं ।।१३०।।

देशकाल विशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत्।
समानदेशता न स्यात् मूर्त्तकारणकार्ययोः।।६३।।

देशः क्षेत्रं कालः समयादिकः तयोर्विशेषो भेदस्तस्मिन्नपि तयोरवयवावयविनोर्या वृत्तिर्वर्तनं स्यात् युतसिद्धानामिव पृथग्भिन्नामिव युतसिद्धवत् घटपटादिवदित्यर्थः। अन्यच्च समानदेशता न स्यात् तयोरव—

यवावयविनोरेकस्मिन्नवस्थानं न स्यात् मूर्तिमत्वात् यथा खरकरभयोः।।१३१।।

देश से तात्पर्य है क्षेत्र से, काल से तात्पर्य है समय से, अवयव अवयवी में सर्वथा भेद मानने पर देश तथा काल से भी भेद मानना पड़ेगा, तब उनमें भी युत सिद्ध के समान पृथक-पृथक आश्रय में रहने वाले घट पटादि की तरह वृत्ति माननी पड़ेगी उन अवयवियों का कारण और कार्य का एक स्थान पर अवस्थान नहीं हो सकेगा। मूर्तिमान होने के कारण गधे और ऊंट के समान।।१३१।।

भावार्थ :– अवयव और अवयवी में सर्वथा भेद मानने पर देश काल की अपेक्षा भी भेद मानना पड़ेगा। तब जैसे घट पटादि पृथक-पृथक आश्रय में रहते हैं , उसी प्रकार अवयव अवयवी का भी पृथक-पृथक आश्रय मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में जैसे मूर्तिमान गधा और ऊंट दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते, उसी प्रकार मूर्त कारण अवयव तथा कार्य अवयवी भी एक स्थान पर नहीं रह सकेंगे।

पुनरपि भेदवादिनं प्रतिदूषणमाह – ।।१३२।।

पुनः भेदवादियों के प्रति दोष कहते हैं - ।।१३२।।

आश्रयाश्रयि भावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः।।६४।।

स्वातन्त्र्यं स्वप्रधानता तेषां नास्ति कुतः आश्रयाः स्वारम्भकावयवा आश्रयी अवयवी कार्यादिस्तयोर्भावस्तस्मात्। यस्मात् आश्रयमन्तरेण नाश्रयी वर्तते नाश्रयिणमन्तरेणाश्रयः परस्परप्रतिबन्धात्। तस्मान्न कालादिभेदेन वृत्तिस्तेषां समवायिनां कार्यकारणानामिति चेदत्रोत्तरमाह– सोऽयुक्तः सम्बन्धः समवायिभिः सह न युक्तः, समवायसम्बन्धः परैरिष्टः कार्यकारणादिभिः सह स न घटते विचार्यमाणायोगात्। अनवस्थादिदोषादिति।।१३३।।

उन समवायियों मे स्वतन्त्रता नहीं है। आश्रय कारण अवयव और आश्रयी अवयवी कार्यादि उनका भाव होने से क्योंकि आश्रय के बिना आश्रयी नहीं रहता और आश्रयी के बिना आश्रय नहीं रहता, परस्पर प्रतिबन्ध होने से। अतः देशकाल आदि का भेद होने पर उन समवायियों की कार्य कारण की वृत्ति नहीं बनती। ऐसा कहने पर आचार्य कहते हैं वह अयुक्त सम्बन्ध समवायियों के साथ कार्य कारण के साथ ठीक नहीं है। समवाय सम्बन्ध जो वैशेषिक मानते हैं, वह कार्य कारणादि के साथ घटित नहीं होता। विचार करने पर अयुक्त होने से, अनवस्था आदि दोष होने से। क्योंकि समवायियों में समवाय सम्बन्ध स्वतः होता है कि अन्य समवाय से। यह प्रश्न उठता है, स्वतः सम्बन्ध होने पर अन्य समवाय की कल्पना व्यर्थ है। यदि अन्य समवाय से माना जाये तो उसके लिए अन्य समवाय और उसके लिए भी अन्य समवाय

की कल्पना होने से अनवस्था हो जायेगी।।१३३।।

भावार्थ :– वैशेषिक कहते हैं कि अवयव कारण हैं और अवयवी कार्य हैं, उनमें अवयव और अवयवी में आश्रय आश्रयी भाव है। आश्रय के बिना आश्रयी नहीं होता और आश्रयी के बिना आश्रय नहीं होता, अतः देश काल आदि का भेद होने पर भी आश्रय आश्रयी समवाय सम्बन्ध से भिन्न नहीं हैं। आचार्य कहते हैं जो समवाय सम्बन्ध वैशेषिक मानते हैं वह कार्य कारण अथवा अवयव अवयवी में घटित नहीं होते। समवाय सम्बन्ध कारण और कार्य में स्वतः होता है कि अन्य समवाय से? यह प्रश्न उठता है। यदि स्वतः होता है तो अन्य समवाय का मानना व्यर्थ है। अन्य समवाय से मानने पर उस अन्य के लिए अन्य समवाय मानना पड़ेगा और उसके लिए भी अन्य। इस प्रकार अनवस्था हो जायेगी।

तदेव विघटयन्नाह – ।।१३४।।

उसी का निराकरण करते हुए कहते हैं ।।१३४।।

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।

अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः।।६५।।

सामान्यं भिन्नेष्वभिन्नकारणं। समवाय इहेदं प्रत्ययलक्षणं। एकैकत्र एकस्मिन्नवयवे व्यक्तो वा। समाप्तितः समाप्तेर्व्यवस्थितत्वादित्यर्थः। आश्रयमन्तरेण यस्मात्तयोरवस्थानं नास्ति एवं सति नाशोत्पादा विद्यन्ते येषां तेषु नाशोत्पादिषु खण्डमुण्डघटपटादिषु को विधिः कः क्रमः, किन्तु न कश्चिदपि स्यात्।।१३५।।

भिन्न वस्तुओं में अभिन्नता का कारण सामान्य है इसमें यह है, इस प्रकार का निश्चय समवाय है। एक ही अवयव में व्यक्त व्याप्त होकर रहने से, क्योंकि आश्रय के बिना सामान्य और समवाय नहीं रहते। नष्ट और उत्पन्न होने वाले खंडमुंड तथा घट- पटादि में क्या क्रम होगा।।१३५।।

भावार्थ :- सामान्य और समवाय नित्य पदार्थों में ही रहते है और आश्रय के बिना वे रहते नहीं हैं तो फिर नष्ट और उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में उनका सद्भाव कैसे सिद्ध होगा। अर्थात् नहीं सिद्ध होगा।

पुनरपि सम्बन्धस्य दूषणमाह– ।।१३६।।

पुनः सम्बन्ध का दूषण बताते हैं ।।१३५।।

सर्वथाऽनाभिसम्बन्धः सामान्यसमवाययोः।

ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत्।।६६।।

सामान्य समवाययो परस्परेण सर्वथा सर्वप्रकारेणा

–नभिसम्बन्धोऽसंयोगोऽतस्ताभ्यां सामान्यसमवायाभ्यां अर्थो गुणगुण्यादिर्न सम्बद्धो न लग्नोऽतस्तानि त्रीण्यपि सामान्यसमवायार्थरूपाणि खपुष्पसमानानि।।१३७।।

वैशेषिक मतानुसार परस्पर सब प्रकार से सामान्य और समवाय से द्रव्य गुण आदि भी सम्बद्ध नहीं हैं और जब तीनों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है तो तीनों ही सामान्य समवाय और अर्थ आकाशकुसुम की तरह अवस्तु सिद्ध होते हैं।।१३७।।

सत्यमेवैतत् समवायादीनां दोषः। अस्माकं पुनः परमाणूनामेकान्ते– नानन्यत्वमिच्छतां न दोष इत्यत्र दूषणमाह–।।१३८।।

अनन्यतैकान्तेऽणूनां सङ्घातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद्भूत चतुष्कं भ्रान्तिरेव सा।।६७।।

बौद्ध कहते हैं समवायादि की भिन्नता में यह दोष ठीक ही है। हम परमाणुओं को एकान्त रूप से अनन्य मानते हैं, इसमें कोई दोष नहीं है तो आचार्य इसमें दोष बताते हैं।।१३८।।

परमाणूनां द्वितीयविभागरहितानां सङ्घातेपि प्रचयेऽपि असंहतत्वं पृथक्त्वं स्यात् विभागवत्, यथा घटपटयोः। नान्यताऽनन्यता सैवैकान्तस्तस्मिन् परमाणूनामन्यथास्वरूपेण परिणामायोगात्। एकदेशेन सर्वात्मना वा तथा वृत्तिविरोधात्। सहस्राणुमात्रपिण्डप्रसङ्गादणोः। तस्मात्प्रविरलत्व (प्रविकलत्व?) मणूनां ततो धारणाकर्षणादयो न स्युः। भूतानां पृथिव्यादीनां चतुर्णां भावश्चतुष्कं सा भ्रान्तिः स्यात्। भूतचतुष्टयं भ्रान्तं स्यादित्यर्थः।।१३९।।

जिसका द्वितीय विभाग नहीं हो सकता, ऐसे परमाणुओं का स्कन्ध रूप में संघात होने पर भी विभाग के समान असंहतत्व ही हो जायेगा जैसे घट और पट में असंहतत्व है, अनन्यता को एकान्त रूप से मानने पर परमाणुओं में अन्य प्रकार का परिणमन नहीं होने से। एकदेश तथा सर्वात्मना परिणमनरूप वृत्ति नहीं होने से। परमाणु के हजारों अणुमात्र के पिंड का प्रसंग होने से, अणु के सर्वथा अनन्यत्व मानने पर धारण आकर्षण आदि नहीं होंगे। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ऐसे चार स्कन्ध के रूप में जो भूतचतुष्टय बौद्धों, ने माना है, वह भ्रान्त ही हो जायेगा।।१३९।।

भावार्थ :– परमाणुओं में सर्वथा अनन्यत्व (परिणमन का अभाव) मानने पर स्कन्ध रूप में मिलने पर भी वे स्कन्ध रूप में न होकर अणुरूप ही रहेंगे, ऐसी स्थिति में, बौद्धों द्वारा मान्य भूतचतुष्टय भी सिद्ध नहीं हो सकेगा, वह भी भ्रान्त ही रहेगा।

सत्यमेव नैतत्प्रमाणं भावात् पुनरपि दूषणमाह – ।।१४०।।

सत्य ही है कि यह प्रमाणिक नहीं है पदार्थ होने से। यहाँ भी दोष दिखाते हैं।।१४०।।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिगं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुण जातीतरच्च न।।६८।।

अणूनां यदेतत्कार्यं स्थूलघटपटादिकं तस्य यदि भ्रान्तिर्विभ्रमादीनां कार्यभ्रान्तेरणूनामपि भ्रान्तिः। यतः कार्यलिङ्गं कारणं कार्यद्वारेण कारणस्यावगमो नान्यथाऽतोऽन्यतरा भावे उभयोरप्यभावोऽविनाभावि नियमात्। उभयाभावाच्च तत्स्थं तयोः स्थितं गुणो रूपादिर्जातिः सामान्यमितरच्च क्रिया एतत्समुदितं न स्यात्। न चैतदिष्टं सर्वप्रमाणप्रसिद्धत्वात्।।१४१।।

अणु का कार्य घट पटादि हैं, यदि ये भ्रान्ति हैं तो अणु भी भ्रान्ति ही है। क्योंकि कार्य के द्वारा ही कारण को जाना जाता है, अन्यथा नहीं। अतः एक के अभाव में दोनों का अभाव हो जायेगा, अविनाभाव का नियम होने से कार्य कारण दोनों का अभाव होने से दोनों में स्थित रूपादि गुण,सामान्य जाति तथा क्रिया ये सभी नहीं होंगे। सभी प्रमाणो से प्रसिद्ध होने से यह इष्ट नहीं है।।१४१।।

भावार्थ :– अणु के कार्य घट पटादि पदार्थों को यदि भ्रान्त माना जायेगा तो अणु को भी भ्रान्त ही मानना पड़ेगा। क्योंकि कारण और कार्य में अविनाभाव सम्बन्ध है। कार्य के द्वारा ही कारण का ज्ञान होता है। अतः यदि कार्य भ्रान्त है तो कारण भी भ्रान्त होगा और दोनों के भ्रान्त होने पर गुण, जाति और क्रिया आदि कुछ भी नहीं होंगे। दोनों में स्थित गुण, जाति और क्रिया सभी प्रमाणों से सिद्ध है। अतः अणु में परिणमन का अभाव अनन्यता को मानना युक्ति संगत नहीं है।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः।

द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृत्तिश्चेन्मृषैव सा।।६९।।

कार्यकारणयोरेकत्वे द्वयोर्मध्येऽन्यतराभावस्तस्य चाभावे द्वितीयस्य चाभावः। कुतोऽविनाभावनियमात्। न ह्येकमन्तरेणापरं भवति। द्वित्वमिति च या संख्या तस्याश्च विरोधोऽघटना। अथ मतं संवृत्या सर्वं युक्तंसा संवृत्तिर्मृषैव व्यलीकैव् ततो न किंचित् स्यात् वन्ध्यासुतपरिकल्पितरूपव्यावर्णनवत्।।१४२।।

कार्य और कारण को एक मानने पर कार्य कारण में से एक का अभाव हो जायेगा और एक का अभाव होने पर दूसरे का भी अभाव हो जायेगा। कैसे? अविनाभाव का नियम होने से, एक के बिना दूसरा नहीं होता। दो संख्या भी नहीं

बनेगी। यदि कल्पना से सब हो जाते हैं ऐसा कहो तो यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि कल्पना झूठी ही है। अतः कुछ भी नहीं होगा। बन्ध्यापुत्र के कल्पित रूप वर्णन की तरह।।१४२।।

भावार्थ :—यदि कार्य और कारण को सर्वथा एक माना जाय तो दो में एक का अभाव हो जायेगा और एक का अभाव होने पर दूसरे का भी अभाव हो जायेगा। क्योंकि दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है, एक के अभाव में दूसरा नहीं रह सकता। फिर एक का भी अभाव होने पर कार्य और कारण ये दोनों नहीं हो सकेंगे। यदि उपचार कहो तो उपचार तो मिथ्या ही होता है, वास्तविक नहीं। अतः कुछ भी नहीं सिद्ध होगा। जैसे बन्ध्या के पुत्र नहीं होता तब कोई सुत के रूप का वर्णन करे तो वह मिथ्या ही होगा, उसी प्रकार जब कार्य कारण दोनों ही नहीं होंगे तो उनका कथन भी मिथ्या ही होगा।

उभयैकान्तवादिनं प्रत्याह — ।।१४३।।

उभयैकान्त मानने वालों के प्रति कहते हैं।।१४३।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।७०।।

अवयवावयविव्यतिरेकाव्यतिरेकैकान्तौ न यौगपद्येन सम्भविनौ, विरोधात्, स्ववचनविरोधात्। अनभिलाप्यतैकान्तोऽपि न सम्भवति। स्याद्वादाभ्युपगमे तु न दोषः कथंचित् तथाभावोपलब्धेः।।१४४।।

अवयव और अवयवी के अनन्य और अन्यत्व का एकान्त एक साथ ही नहीं हो सकता अपने ही वचन का विरोध होने से अवाच्यता का एकान्त भी संभव नहीं है। स्याद्वाद पर मानने पर कोई दोष नहीं है कथंचित रूप से अन्यत्व अनन्यत्व तथा अवाच्यता की उपलब्धि होने से ।।१४४।।

भावार्थ :— एकान्तवादियों के यहाँ अवयव और अवयवी का अन्यत्व और अनन्यत्व रूप उभयैकान्त भी नहीं हो सकता। क्योकि दोनों में ही दोष सिद्ध हो चुका है। अनेकान्त मत में कथंचित रूप से उभय अर्थात् अन्यता और अनन्यता की सिद्धि संभव है। अवाच्यता का एकान्त भी नहीं माना जा सकता। क्योंकि वाच्य है, ऐसा कथन भी सर्वथा अवाच्यता का एकान्त मानने पर नहीं किया जा सकता।

तथैव स्पष्टयति — ।।१४५।।

उसी को स्पष्ट करते हैं।।१४५।।

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः।
परिणाम विशेषाच्च शक्ति मच्छक्ति भावतः।।७१।।

कारणं गुणी सामान्यं वस्तु द्रव्यमित्युच्यते, कार्यं गुणो विशेषः पर्याय

इत्युच्यते। तयोरैक्यमेकत्वं कुतस्तयोरव्यतिरेकतो द्रव्यपर्याययोरव्यतिरेकोपलम्भात्। एतेनास्य हेतोः प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धत्वं प्रत्युक्तम्। परिणामः स्यान्यथाभावः वाग्गोचरोऽतीतस्तस्य विशेषश्च तस्मात्परिणाम विशेषाच्च तयोरैक्यम्। शक्तयो विद्यन्ते यस्य तच्छक्तिमत् द्रव्यं परिणामि। प्रतिनियतकार्यसम्पादनसामर्थ्यविशेषाः शक्तयो यथा घृतादेः स्नेहतर्पणबृहंणादयः। तयोर्भावस्तस्मात् तयोरैक्यमिति वेदितव्यम्।।१४६।।

कारण गुणी सामान्य वस्तु द्रव्य कहा जाता है। कार्य, गुण, विशेष और पर्याय कहा जाता है। उन दोनों द्रव्य और पर्याय में एकत्व है, कैसे? अभिन्नता पायी जाने से, इससे इस हेतु के प्रतिज्ञार्थैकदेशत्व का भी निराकरण हो जाता है। परिणाम कार्य का अन्यथा रूप होना, अतीत जो वचन गोचर है, उसका विशेष उससे अर्थात् परिणाम विशेष से उसमें एकता है। जिससे शक्ति है वह शक्ति वाला द्रव्य है, जो परिणामी है। प्रतिनियत कार्य को सम्पन्न करने की सामर्थ्य विशेष शक्ति है, जैसे घी आदि का चिकना होना, तृप्ति करना और वृद्धि करना आदि शक्तिमान और शक्ति का भाव होने से द्रव्य और गुण में एकता है ऐसा समझना चाहिए।।१४६।।

भावार्थ :– द्रव्य सामान्य है पर्याय उसी का विशेष है, द्रव्य परिणाम है और पर्याय परिणामी है, अतः द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं हैं, उनमें कथंचित एकता है। द्रव्य शक्तिमान है और गुण शक्ति हैं अतः द्रव्य और गुण में भी कथंचित एकता है, शक्ति और शक्तिमान सर्वथा भिन्न नहीं हो सकते। शक्ति के बिना शक्तिमान और शक्तिमान के बिना शक्ति नहीं हो सकती।

कथंचिद्भेद निरूपणार्थमाह– ।।१४७।।

कथंचित भेद बताने के लिए कहते है ।।१४७।।

संज्ञासंख्या विशेषाच्च स्वलक्षण विशेषतः।
प्रयोजनादि भेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा।।७२।।

संज्ञा नाम, संख्या एकादिका, तयोर्विशेषो भेदस्तस्मात्तयोर्नानात्वं भेदः दृश्यते संज्ञाभेदः ऊढाऽत्र वधूः प्रमदा कामिनी क्रोधवती भामा। द्वित्वादेकत्वं संख्याभेदोऽपि प्रतीतः। स्वमसाधारणं लक्षणं स्वरूपं यस्य स चासौ विशेषस्तस्मात्तयोर्नानात्वं। तथा च द्रव्येणान्यत्प्रयोजनं पर्यायेणान्यत् वृक्षपत्रपुष्पवत्।।१४८।।

नाम और संख्या की विशेषता से द्रव्य और गुण में भेद दिखाई देता है। नाम का भेद जैसे ऊढ़ा और वधू। यहाँ ऊढ़ा गुण का नाम है और वधू गुणी का नाम है।, प्रमदा कामिनि में प्रमदा गुण का नाम है कामिनि गुणी का नाम है, क्रोधवती भामा में

क्रोधवती गुण का नाम है और भामा गुणी का नाम है। गुण दो तीन चार आदि कितने ही हो सकते हैं गुणी एक होता है। अपना असाधारण लक्षण है, जिसकी विशेषता उससे भी द्रव्य गुणी और गुण में भिन्नता है तथा द्रव्य से दूसरे प्रयोजन की सिद्धि होती है, पर्याय से दूसरे प्रयोजन की वृक्ष पत्र और पुष्प के समान।।१४८।।

भावार्थ :—द्रव्य और गुण मे कथंचित भिन्नता पायी जाती है, सर्वथा भिन्नता नहीं है। द्रव्य की संज्ञा तथा गुण की संज्ञा उक्त प्रकार से भिन्न होती है। द्रव्य एक होता है, गुण की संख्या कितनी भी हो सकती है, द्रव्य का अपना असाधारण लक्षण है, गुण का अपना। द्रव्य से तथा गुण पर्याय से भिन्न भिन्न प्रयोजन की सिद्धि होती है। जैसे वृक्ष द्रव्य है और पत्र पुष्प तथा फल आदि उसकी पर्याय हैं, इन सभी से भिन्न-भिन्न प्रयोजनों की सिद्धि होती है।

अपेक्षानपेक्षैकान्तप्रतिक्षेपार्थमाह— ।।१४६।।

अपेक्षा और अनपेक्षा के एकान्त का निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१४६।।

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्य विशेषता।।७३।।

अपेक्षैव प्रयोजनमेषामर्थानां तेषां सिद्धिर्निष्पत्तिर्निश्चितिर्वा। अथवाऽपेक्षिकी चासौ सिद्धिश्च सा यदि स्यात्। कार्यकारणादि युगपद्द्वयं न व्यवतिष्ठते न घटते। एकेनैकस्य प्रतिहतत्वात्। यदि पुनरनापेक्षिक सिद्धिस्तस्यामभ्युपगम्य-मानायां सामान्यं च विशेषश्च तयोर्भावः सामान्यविशेषता सा न स्यान्न भवेत्। तस्मात्स्वरूपेण स्वत एव सिद्धेन भवितव्यम्। धर्मिधर्मभावश्च परस्परापेक्षः।।१५०।।

अपेक्षा ही है प्रयोजन जिन अर्थों का उनकी सिद्धि अथवा अपेक्षाकृत ही यदि सिद्धि हो तो कार्य कारण आदि दोनों ही व्यवस्थित नहीं होते। एक के अभाव में दूसरे का अभाव होने से, अनापेक्षित सिद्धि मानने पर सामान्य और विशेषता का भाव नहीं बनेगा। अतः स्वरूप से स्वयं सिद्ध होना चाहिए। धर्म और धर्मी भाव एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं।।१५०।।

भावार्थ :- बौद्ध धर्म और धर्मी, गुण, गुणी सामान्य विशेष तथा ज्ञान ज्ञेय आदि की सिद्धि अपेक्षाकृत मानते हैं। उसका कहना है कि नीलज्ञान के बिना नीलस्य लक्षणता नीलस्वलक्षण के बिना नीलज्ञान नहीं हो सकता। किन्तु उनका यह कथन उचित नहीं है। जब दो वस्तुओं का सद्भाव सर्वथा परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा से माना जायगा तो दोनों में से किसी का सद्भाव सिद्ध नहीं हो सकता। वैशेषिक धर्म धर्मी आदि की सिद्धि सर्वथा अनपेक्षित मानते हैं, किन्तु सर्वथा धर्म और धर्मी अनपेक्षित नहीं हो सकते। धर्म तभी धर्म है जब वह किसी धर्मी का धर्म है और धर्मी इसीलिए धर्मी है

कि उसमें कोई धर्म है। अतः धर्म और और धर्मी की सिद्धि अनपेक्षित नहीं हो सकती। इसी प्रकार सामान्य रहित विशेष और विशेष रहित सामान्य भी खरविषण के समान असत् ही हो जायेंगे। कार्य, कारण, गुण, गुणी आदि की सत्ता भी सर्वथा निरपेक्ष मानने पर किसी का सद्भाव सिद्ध नहीं हो सकेगा। अतः सर्वथा अनपेक्षित मानना उचित नहीं है। धर्मधर्मी भाव, गुणगुणी भाव एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। किन्तु स्वरूप स्वतः ही सिद्ध है उसमें अपेक्षा नहीं होती।

उभयैकान्तं दर्शयन्नाह–।।१५१।।

उभयैकान्त में दोष दिखाते हुए कहते हैं।।१५१।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।७४।।

अपेक्षानपेक्षैकान्तोभयं नास्ति, विरोधात्। नाप्यवाच्यमवाच्यत्वेनापि वाच्यत्वात्।।१५२।।

अपेक्षा और अनपेक्षा दोनों का एकान्त नहीं हो सकता, दोनों में विरोध होने से। अवाच्य भी नही कह सकते, अवाच्य कहने मात्र से वाच्य हो जाने से।।१५२।।

भावार्थ :- स्याद्वाद को न मानने वाले एकान्तवादियों के यहाँ सर्वथा आपेक्षिक और सर्वथा अनापेक्षिक का उभयैकान्त भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं, अवाच्यता का एकान्त भी नहीं माना जा सकता। यदि धर्म धर्मी आदि की सिद्धि सर्वथा अवाच्य है तो अवाच्य शब्द के द्वारा भी उनका कथन नहीं किया जा सकता।

तयोरनेकान्तं दर्शयन्नाह – ।।१५३।।

आपेक्षिक सिद्धि और अनापेक्षिक सिद्धि का अनेकान्त दिखाते हुए कहते हैं।।१५३।।

धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्ध्यत्यन्योन्यवीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत्।।७५।।

क्रमभाविपिण्डादि कार्यं सहभावी रूपादिर्गुणो विसदृशपरिणामलक्षणश्च विशेषो धर्मोऽत्र कथ्यते। कारणादिव्यपदेशं द्रव्यं धर्मी। स्वधर्मापेक्षया द्रव्यस्य धर्मिव्यपदेशः। स्वधर्म्यपेक्षया च रूपादेश्च धर्मव्यपदेशस्तयोर्योऽविना–भावोऽव्यभिचारोऽवश्यं सोऽन्योऽन्यापेक्षया सिद्ध्यतिभासते उत्पद्यते वा। स्वरूपमसाधारणं रूपं तयोर्न परतः। कुतो यस्मात्स्वत एव तत्सिध्यति। यथा कारकज्ञापकाङ्गं कारकक्रियाया अङ्गं ज्ञापकक्रिया या अङ्गं निबन्धनं तयोरिव तद्वत् कर्तृकर्मबोध्यबोधकवदित्यर्थः। अथवा अङ्गशब्दो विशेषार्थो

द्रष्टव्यो यथा कर्मकर्तृव्यपदेशाविनाभावो बोध्यबोध– कव्यापदेशाविनाभावश्च सिध्यत्यन्योन्यापेक्षयैवमत्रापीत्यर्थः।।१५४।।

क्रम से होने वाले पिंडादि कार्य साथ होने वाले रूपादि गुण तथा असमान परिणाम वाले विशेष को धर्म कहा जाता है। कारण रूप से व्यपदिष्ट द्रव्य को धर्मी कहा जाता है। अपने धर्म की अपेक्षा द्रव्य को धर्मी कहा जाता है। अपने धर्मी द्रव्य की अपेक्षा रूपादि को धर्म कहा जाता है। धर्म और धर्मी दोनों में जो अविनाभाव है, एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता। वह अवश्य एक दूसरे की अपेक्षा सिद्ध होते हैं। जो असाधारण लक्षण है, वह अपेक्षा से नहीं सिद्ध होता। क्यों? क्योंकि वह स्वतः ही सिद्ध होता है। जैसे कारक और ज्ञापक के अंग, कारक और क्रिया के अंग, कर्त्ता कर्म, बोध्य और बोधक आदि। अथवा अंग शब्द का विशेष अर्थ समझना चाहिए, जैसे कर्त्ता कर्म, और बोध्य, बोधक दोनों एक दूसरे के अविनाभावी हैं, एक की अपेक्षा दूसरा सिद्ध होता है, उसी प्रकार धर्म और धर्मी में अविनाभाव है, धर्म की अपेक्षा धर्मी और धर्मी की अपेक्षा धर्म सिद्ध होते हैं।।१५४।।

भावार्थ :–धर्म और धर्मी का अविनाभाव ही परस्पर अपेक्षा से सिद्ध होता है। क्योंकि धर्म के बिना धर्मी नहीं हो सकता और धर्मी के बिना धर्म नहीं हो सकता। किन्तु उनका स्वरूप एक दूसरे की अपेक्षा नहीं सिद्ध होता। वह तो कारक ओर ज्ञापक के अंगों की तरह स्वतः सिद्ध हैं। जैसे कारक के अंग कर्म और कर्त्ता परस्पर सापेक्ष भी हैं निरपेक्ष भी हैं। कर्त्ता के बिना कर्म नहीं हो सकता। और कर्म के बिना कर्त्ता नहीं हो सकता। किन्तु कर्त्ता अपने स्वरूप के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं रखता और कर्म अपने स्वरूप के लिए कर्त्ता की अपेक्षा नहीं रखता। इसी प्रकार ज्ञापक के अंग प्रमाण और प्रमेय सापेक्ष भी हैं निरपेक्ष भी। और प्रमाण के बिना प्रमेय की सिद्धि नहीं हो सकती। और प्रमेय के बिना प्रमाण की सिद्धि नहीं हो सकती। किन्तु स्वरूप की अपेक्षा दोनों में से कोई भी एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखता। उसी प्रकार धर्म और धर्मी कथंचित् एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं और कथंचित निरपेक्ष हैं।

उपेयतत्त्वं व्यवस्थाप्योपायतत्त्वंव्यवस्थापनार्थमाह– ।।१५५।।

उपेयतत्त्व की व्यवथा करके उपायतत्त्व की व्यवस्था करते हुए कहते हैं ।।१५५।।

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरूद्धार्थमतान्यपि।।७६।।

यदि सर्वं हेतुतो निमित्तात्सिद्धमवगतं तर्हि प्रत्यक्षादितः प्रत्यक्षागमादेर्गति रवगमो न स्यात्। दृश्यते चैन्द्रियकस्याशनपानादेरर्थस्यातीन्द्रिस्य मलयकाश्मीरादेरत्र क्रमेण प्रत्यक्षादाप्तोपदेशतश्च गतिरिति।।१५६।।

यदि सब कुछ हेतु से अनुमान से, सिद्ध माना जाय तो प्रत्यक्ष आगम आदि से किसी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इन्द्रिय संबंधी भोजनपान आदि को प्रत्यक्ष से तथा अतीन्द्रिय मलयकश्मीरादि का आप्तोपदेश आगम से ज्ञान देखा जाता है।।१५६।।

अथागमादाप्तोपदेशात्सर्वं चेष्यते ततो विरूद्धार्थानि यानि मतानि तान्यपि सिद्धिमुपगच्छेयुरिति।।१५७।।

यदि आगम से ही सभी पदार्थों का ज्ञान मानो तो विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले मत भी सिद्धि को प्राप्त होंगे।।१५७।।

भावार्थ :– कुछ लोग हेतु, अनुमान से ही सब तत्त्वों की सिद्धि मानते है, अनुमान से जिसकी सिद्धि नहीं होती, उसे वे देखकर भी मानने को तैयार नहीं होते। किन्तु उनका यह मत उचित नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष के बिना अनुमान से किसी वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। कुछ लोग आगम से ही सब पदार्थों की सिद्धि मानते हैं, किन्तु आगम से ही सब पदार्थों की सिद्धि मानी जाय तो विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले आगम भी प्रमाण हो जायेंगे। सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित आगम ही प्रमाण है, यह निर्णय युक्ति के बिना नहीं हो सकता। कुछ लोग केवल प्रत्यक्ष और अनुमान से ही सब पदार्थों की सिद्धि मानते हैं आगम से नहीं, किन्तु अत्यन्त परोक्ष पदार्थों का ज्ञान करने के लिए आगम का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। अतः केवल प्रत्यक्ष से अथवा केवल अनुमान से अथवा केवल आगम से सब पदार्थों की सिद्धि मानना युक्ति संगत नहीं है।

उभयैकात्म्यैकान्तं निराकर्तुमाह –।।१५८।।

उभयैकान्त का निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१५८।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।७७।।

उभयैकान्तत्वं नास्ति विरोधात्। अवाच्यमपि न।।१५६।।

विरोध होने से उभयैकान्त भी नहीं हो सकता। अवाच्य भी नहीं है।।१५६।।

भावार्थ :– पदार्थों की सिद्धि न तो केवल हेतु से ही हो सकती है, न केवल आगम से। ऐसी स्थिति में दोनों एकान्तों से सिद्धि मानना भी उपयुक्त नहीं है, क्योंकि दोनों एक दूसरे के विरूद्ध हैं। यदि उक्त दोष से वचने के लिए कोई अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करता है तो वह भी उचित नहीं है, सर्वथा अवाच्य का अवाच्य शब्द के द्वारा भी कथन नहीं किया जा सकता।

पुनरप्यनेकान्तनिरूपणार्थमाह — ।।१६०।।

पुनः अनेकान्त को दिखाने के लिए कहते हैं।।१६०।।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।

आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागमसाधितम्।।७८।।

यो यत्राविसंवादकः स तत्राप्तः। ततः परोऽनाप्तः। अनाप्ते वक्तरि तत्त्वस्योपदेष्टरि हेतोरनुमानाद्यत्साध्यं शक्याऽभिप्रेतं प्रसिद्धं तद्धेतुसाधितं लिङ्गात्प्रतिपादितम्। आप्ते वक्तरि वाक्याद्‌वचनाद्यत्साध्यं तदागमसाधितं प्रवचनप्रतिपादितं प्रमाणभूतं वचनं हि तत्। अनाप्ते पुनर्विसंवादकं तस्माद्धेतुमन्तरेण न तत्सेत्स्यति।।१६१।।

जो जहाँ विसंवाद रहित है, वह आप्त है। उससे विपरीत जो विसंवादक है वह अनाप्त है। अनाप्त के वक्ता होने पर तत्व का उपदेष्टा होने पर जो हेतु से शक्य, अभिप्रेत और अप्रसिद्ध साध्य सिद्ध किया जाता है, वह हेतु साधित है। वक्ता के आप्त होने पर उनके वचन से जिस साध्य की सिद्धि की जाती है, वह आगम साधित है, निश्चय से वह वचन प्रमाणिक है। वक्ता के आप्त, वीतरागी, हितोपदेशी और सर्वज्ञ नहीं होने पर वह हेतु के बिना सिद्ध नहीं होगा।।१६१।।

भावार्थ :— वक्ता के आप्त नहीं होने पर जो हेतु से सिद्ध किया जाता है, वह हेतु साधित है और वक्ता के आप्त होने पर उनके वचनों से जिस साध्य की सिद्धि कही जाती है, वह आगम साधित है। जो अविसंवादक होता है, वह आप्त होता है। और जो विसंवादकी होता है, वह अनाप्त होता है। तत्त्व का यथार्थ ज्ञान होने से आप्तके द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों में कोई विरोध नहीं होना ही अविसंवादक है। आप्त के वचन सदा अविसंवादक होते हैं, उनमें कोई विरोध नहीं होता। इसके विपरीत तत्वों का यथार्थ ज्ञान न होने से अनाप्त के वचनों में सर्वज्ञ विरोध पाया जाता है। अतः वक्ताके आप्त होने पर उनके वचनों को विश्वसनीय होने के कारण उससे साध्य की सिद्धि हो जाती है। किन्तु जहाँ वक्ता आप्त नहीं होता, वहां साध्य की सिद्धि के लिए हेतु का आश्रय लिया जाता है, वह हेतु साधित साध्य होता है।

अन्तस्तत्त्वमेव तत्त्वमिति येषां मतं तन्निराकरणायाह— ।।१६२।।

अन्तरंग तत्व ही वास्तव में तत्व है, ऐसा जिनका मत है, उसका निराकरण करेन के लिए कहते हैं।।१६२।।

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाऽखिलम्।

प्रमाणाभासमेवातस्तत्प्रमाणादृते कथम्।।७९।।

अन्तरभ्यन्तरमङ्गं कारणं यस्य स चासावर्थश्च तस्य भावोऽन्तरङ्गार्थता

सैवैकान्तो मिथ्यात्वं तस्मिन्। बुद्धिश्च बहिरर्थपरिच्छेदिका। वाक्यं चानुमाननिमित्तं परार्थम्। द्वन्द्वैकवद्भावः। तदखिलं निरवशेषं मृषा मिथ्या। प्रमाणमिवविभासत इति प्रमाणाभासमेव। यद्येवं कथं मुख्यप्रमाणमन्तरेण तत्प्रमाणाभासं यस्मात्सति प्रमाणे प्रमाणाभासो नान्यथा।।१६३।।

अन्तरंग कारण है जिसका वह ही अर्थ ऐसा एकान्त मानने पर बुद्धि बाह्य अर्थ को जानने वाली अनुमान का कारण वाक्य आगम दूसरे के ज्ञान कराने वाला एक शेष द्वन्द्व के समान भाव है, वे सभी झूठे हो जायेंगे और मिथ्या होने पर प्रमाणाभास हो जायेंगे। यदि ऐसा है तो मुख्य प्रमाण के बिना प्रमाणाभास कैसे हो सकता है। क्योंकि प्रमाण के होने पर ही प्रमाणाभास होता है, मुख्य प्रमाण के बिना प्रमाणाभास नहीं होता।।१६३।।

भावार्थ :– ज्ञानाद्वैतवादी अन्तरंग अर्थ (ज्ञान) को ही एकान्तरूप से सत्रूप मानते हैं, बहिरंग अर्थ को असत्य मानते हैं, उसका यह कथन युक्ति संगत नहीं है। केवल अन्तरंग अर्थ को ही एकान्त रूप से सत्य मानने पर बुद्धि (अनुमान)और वाक्य (आगम) भी असत्य हो जायेगें। क्योंकि उनके यहाँ के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु सत्य नहीं है। अतः असत्य होने के कारण अनुमान और आगम प्रमाणाभास हो जायेंगे। किन्तु प्रमाण के बिना प्रमाणाभास भी नहीं हो सकता। प्रमाण के होने पर ही प्रमाणाभास हो सकता है। अतः अनुमान और आगम को प्रमाणाभास भी नहीं कह सकते। अतः विज्ञानाद्वैतवादियों का अन्तरंग को ही एकान्त रूप से सत्य मानना उचित नहीं है।

अथ मतं सर्वं बाह्याभ्यन्तरं ज्ञानमेवैतस्य मतस्य निराकरणार्थमाह–।।१६४।।

यदि यह कहो कि बाह्य और अभ्यन्तर सब कुछ ज्ञान ही है तो उसका निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१६४।।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतु दोषतः।।८०।।

साध्यत इति साध्यं शक्यमभिप्रेतमप्रसिद्धं पक्षधर्मः। साध्यतेऽनेनेति साधनं प्रकृतेनाविनाभावि तयोराकारो विज्ञप्तिर्विज्ञानं तस्या यदि विज्ञप्तिमात्रता ज्ञानमात्रत्ववम्। न साध्यं न च हेतुः चकारान्नापि दृष्टान्तः। कुतः प्रतिज्ञादोषाद्धेतुदोषाच्च। निरंशत्वमभ्युगम्य सभेदं साधयेदभ्युपगमहानिः। प्रतिज्ञाहेतुदोषः अतः प्रतिज्ञादोषे हेतुदोषेऽकिंचित्कराख्यः। अथवा प्रतिज्ञैव हेतुः स दोषस्तस्मात्। यस्मान्न तदेव साध्यं तदेव साधनं निरंशत्वात्तस्य।।१६५।।

जिसको सिद्ध किया जाय वह साध्य है, जो शक्य, अभिप्रेत और अप्रसिद्ध होता है, ऐसा पक्ष का धर्म साध्य होता है। जिसके द्वारा सिद्ध किया जाय, वह साधन है, जो साध्य के साथ अविनाभाव है। साध्य और साधन के ज्ञान को यदि ज्ञानमात्र मान लिया जाय तो, तो न साध्य होगा, न साधन होगा और चकार से न दृष्टान्त होगा। क्यों? प्रतिज्ञा दोष और हेतु दोष के कारण निरंशत्व केवलज्ञान मात्र मानकर भेद सहित साध्य, साधन, दृष्टान्त आदि मानने में प्रतिज्ञा दोष है। प्रतिज्ञा और हेतु का दोष होने पर वह अकिंचित्कर है। अथवा प्रतिज्ञा ही हेतु है यह दोष होने से। क्योंकि वही साध्य और वही साधन नहीं हो सकता, उसके निरंशत्व होने से।।१६५।।

भावार्थ :– साध्य और साधन के ज्ञान को यदि विज्ञान मात्र माना जाय तो प्रतिज्ञा दोष और हेतु दोष के कारण न कोई साध्य हो सकता है न हेतु। मात्र ज्ञान के सद्भाव को मानने वाले विज्ञानाद्वैतवादी यदि धर्म धर्मी तथा हेतु दृष्टान्त आदि की बात कहते हैं तो उनके अपने ही वचनों से अपने वचन का विरोध हो जायेगा, अतः प्रतिज्ञादोष है। हेतु दोष भी है क्योंकि विज्ञानाद्वैतवादी पृथक् उपलब्ध होने रूप हेतुसे ज्ञान और अर्थमें भेदभावकी सिद्धि करते हैं किन्तु पृथक उपलब्ध न होना और भेदाभाव दोनों अभावरूप हैं, इनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। अतः पृथक् उपलब्ध न होने रूप हेतु से भेदाभाव की सिद्धि नहीं हो सकती। धुएं और अग्नि में कार्य कारण सम्बन्ध का ज्ञान होने पर ही धुएं से अग्नि की सिद्धि होती है।

अथान्तरङ्गार्थतैकान्ते दोषदर्शनाद्बहिरङ्गार्थोऽभ्युपगम्यते तत्रापि दोषं दर्शयति–।।१६६।।

अब यदि अन्तरंगार्थता के ज्ञान मात्र के एकान्त में दोष देखकर कोई यह कहे कि हम तो केवल बहिरंग अर्थ को ही एकान्तरूप से मानते हैं, ज्ञान को नहीं, वहाँ भी दोष दिखाते हैं।।१६६।।

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिह्नवात्।
सर्वेषां कार्य सिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम्।।८१।।

बहिरङ्गार्थतैकान्तो बाह्यार्थैकान्तस्तस्मिन्नभ्युपगम्यमाने विरुद्धार्थाभिधायिनां प्रमाणान्तरबाधितार्थप्रकाशकानां सर्वेषां निरवशेषाणां कार्यस्यसिद्धिर्निष्पत्तिः स्यात्स्वव्यवहारसिद्धिर्भवेदित्यर्थः। कस्मात्प्रमाणाभासनिह्नवात् प्रमाणस्याभासो मिथ्यात्वं तस्य निह्नवो निराकरणं तस्मात्। एतदपि कुतोऽन्तस्तत्त्वे सति बहिरर्थस्य सिद्धिरसिद्धिश्च नान्यथा।।१६७।।

बाह्य अर्थ के एकान्त को मानने पर सभी विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने

वालों के कार्य की सिद्धि हो जायेगी। किससे? प्रमाणाभास मिथ्यात्व का निराकरण होने से। ऐसा क्यों? क्योंकि अन्तरंग तत्त्व के होने पर ही बाह्य अर्थ की सिद्धि या असिद्धि होती है अन्यथा नहीं।।१६७।।

भावार्थ :– केवल बाह्य अर्थ का सदभाव मानना ही बहिरंग अर्थ की एकान्तता है। बाह्य अर्थ को एकान्तरूप से मानने का तात्पर्य है कि जितना भी बाह्य अर्थ है वह सत्य है। प्रत्येक ज्ञान का विषय, चाहे वह सम्यक् ज्ञान का हो या मिथ्या ज्ञान का सब सत्य है, उनके अनुसार स्वप्नज्ञान का विषय भी सत्य है। अतः उनके यहाँ सभी ज्ञान प्रमाण हैं, प्रमाणाभास कोई ज्ञान नहीं है। प्रमाणाभास का अभाव मानने पर परस्पर में विरूद्ध अर्थों को कथन करने वालों के वचनों को भी प्रमाण मानना पड़ेगा। अतः बहिरंग अर्थ का एकान्तवाद सर्वथा असंगत है।

उभयैकान्तप्रतिक्षेपायाह –।।१६८।।

उभयैकान्त का निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१६८।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।८२।।

पूर्ववत्।।१६९।।

पहले के समान ।।१६९।।

भावार्थ :– बहिरर्थ का एकान्त और अन्तरंग अर्थ का एकान्त परस्पर विरोधी हैं। अतः स्याद्वादन्याय से विरोध रखने वाले एकान्त वादियों के यहाँ विरोध होने के कारण उभयैकान्त भी नहीं हो सकता है। अवाच्यता का एकान्त मानने पर अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

भाव एव तत्त्वं नाभाव इति यस्य मतं तन्निराकरणायाह–।।१७०।।

भाव ही तत्व है अभाव नहीं, इस प्रकार जिनका मत है उनका निराकरण करने के लिए कहते है।।१७०।।

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभास निह्नवः।
बहिः प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते।।८३।।

भावो ज्ञानं तदेव प्रमेयं तस्य तस्मिन्वाऽपेक्षाऽभ्युपगमस्तस्या– मभ्युपगम्यमानायां। प्रमाणाभासस्य निह्नवो लोपः। कुतो ज्ञानस्य तदेतत्प्रामाण्यमप्रामाण्यं च बाह्यार्थापेक्षायां भवति नान्यथा इति।।१७१।।

भाव ज्ञान है, वही प्रमेय है ऐसा मानने पर प्रमाणाभास का लोप हो जायेगा। कैसे? ज्ञान की प्रमाणता और अप्रमाणता बाह्य अर्थ की अपेक्षा होती है अन्यथा नहीं।।१७१।।

भावार्थ :– हे भगवन्! एकान्त रूप से ज्ञान को प्रमेय मानने पर कोई भी ज्ञान प्रमाणाभास नहीं होगा। यहाँ भाव से तात्पर्य ज्ञान से है। स्वसंवेदन की अपेक्षा मिथ्याज्ञान भी प्रमाण है। प्रमाण और अप्रमाण (प्रमाणाभास) की व्यवस्था बाह्य अर्थ की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार स्याद्वादन्याय के अनुसार एक ही ज्ञान प्रमाण और अप्रमाण दोनों होता है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

एतच्च मतं सर्व वचो विवक्षामात्रसूचकमित्यस्य निराकरणायाह–।।१७२।।

यदि यह कहा जाय कि सभी वचन विवक्षा मात्र के सूचक हैं तो इसका निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१७२।।

जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत्।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत्।।८४।।

जीवस्य शब्दः संज्ञा देशामर्शकत्वाद्धटादि संज्ञाः परिगृह्यन्ते। सह बाह्येनार्थेन वर्तत इति सबाह्यार्थः। कुतः सञ्ज्ञात्वात्सनामत्वाद्धेतुशब्दवत्। शब्दस्यार्थस्त्रिधा बहिरर्थो घटाद्याकारः स्वार्थो वा। तथाचोक्तम्। स्वार्थमभिधाय क्वाऽप्यन्यत्र वर्तत इति। यद्यैवं भ्रान्तिसंज्ञा यास्ताः कथं। ता अपि स्वैरात्मस्वरूपैरर्थैमायाद्यैर्माया स्वप्नेन्द्रजालादिः। भ्रान्तिसंज्ञाः स्वार्थवत्यः प्रमाया उक्तिर्यथा प्रमाणशब्दः प्रमाणाभासशब्दश्च यथा स्वार्थप्रतिपादकः। अथवा सम्यक् ज्ञायतेऽनयेति संज्ञा तस्या भावः संज्ञात्वम्। तस्माद्देशामर्शकत्वादन्येषामपि ग्रहणं प्रमाणतन्निबन्धनविचाराभ्यासदानफलादीनाम्। एतेषामन्यथाऽनुपपत्तेर्जीवादि शब्दः सबाह्यार्थः। अन्यथा एतेषामभावः स्यात्।।१७३।।

जीव की शब्द संज्ञा है, इसी कथन के अनुसार घटादि संज्ञा ग्रहण किये जाते हैं। बाह्य अर्थ के साथ रहता है अतः सबाह्यार्थ कहा जाता है, कैसे? नामवाला होने से, हेतु शब्द के समान। शब्द का अर्थ तीन प्रकार का है- बाह्य अर्थ, घटाद्याकर और अपना अर्थ। कहा भी है अपने अर्थ को कह कर कहीं अन्यत्र भी रहता है। यदि ऐसा है तो जो भ्रान्ति संज्ञा हैं वे कैसे बाह्यार्थ सहित हैं? वे भ्रान्ति संज्ञा भी अपने अर्थ मायादि के साथ हैं, माया स्वप्न इन्द्रजाल आदि हैं। भ्रान्ति संज्ञा भी अपने अर्थवाली हैं जैसे प्रभा की उक्ति, जैसे प्रमाण और प्रमाणाभास शब्द अपने अर्थ के प्रतिपादक हैं, उसी प्रकार अथवा जिससे भली प्रकार जाना जाता है, वह संज्ञा और उसका भाव संज्ञात्व है। दूसरों को भी ग्रहण किया जाता है, प्रमाण उसके कारण

विचार, अभ्यास दान और फल आदि का इन सबके अन्यथा प्रकार नहीं होने से, जीवादि शब्द सबाह्यार्थ हैं। अन्यथा इन सबका अभाव हो जायेगा।।१७३।।

भावार्थ :– जीव शब्द एक संज्ञा नाम है, प्रत्येक संज्ञा का अपने से अतिरिक्त कोई वास्तविक प्रतिपाद्य अर्थ होता है, अतः जीवशब्द का भी बाह्य अर्थ अवश्य है, बाह्य अर्थ के बिना जीव शब्द का व्यवहार नहीं हो सकता। हेतु शब्द संज्ञा है उसका बाह्य अर्थ भी धूमादि है। यहाँ शंका हो सकती है कि जब संज्ञा का बाह्य अर्थ नियम से रहता है तो माया आदि भ्रान्ति संज्ञाओं का भी बाह्य अर्थ माना पड़ेगा, तो आचार्य कहते हैं कि माया आदि भ्रान्ति संज्ञाओं का भी माया आदि भ्रान्तिरूप अर्थ विद्यमान रहता है जैसे प्रभा शब्द का बाह्य अर्थ पाया जाता है, उसी प्रकार मायादि संज्ञाओं का भी माया आदि अर्थ होता ही है।

सिद्धसाध्यता परिहारद्वारेणामुमेवार्थं प्रकटयन्नाह–।।१७४।।

सिद्धसाध्यता हेतु के व्यभिचार दोष का परिहार करते हुए इसी अर्थ को बताते हुए कहते हैं।।१७४।।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः।।८५।।

बुद्धिश्च शब्दश्चार्थश्च बुद्धिशब्दार्थास्तेषां संज्ञा बुद्धिशब्दार्थ संज्ञास्तिसःत्रिसंख्याः। बुद्धिरादिर्येषां ते बुद्धयादयस्तेषां वाचिकाः प्रतिपादिकाः। तुल्याः समाः केन बुद्ध्याद्यर्थप्रतिपादकत्वेन। बुद्धयादीनां बोधाश्च ज्ञानानि च बुद्ध्याद्यर्थस्य प्रतिनिधयस्रयस्तेऽपि तुल्या अर्थ प्रतिपादकत्वेन। किमुक्तं भवति–गौरिति जानीतेतीयं बुद्धेर्वाचिका संज्ञा। तस्याश्च श्रोतुः पुरुषस्य स्वार्थे बोधे बोधको बोधो भवति। गामानय दोहार्थमितीयं संज्ञा बाह्यार्थस्य वाचिका भवति। गौरित्याहेतीयंशब्दस्य स्वस्यैव रूपस्य वाचिका संज्ञा। तस्याश्च श्रोतुः पुरुषस्य स्वार्थे शब्दस्य स्वस्मिन्नेव रूपे बोधको बोधो भवति। तस्याश्च श्रोतुः स्वार्थे सास्नादिमति पिण्डे बोधको बोधो भवति। ततो बुद्ध्याद्यर्थवाचकत्वेन संज्ञास्तिस्रः समा एव बुद्ध्यादीनां शब्दार्थानां त्रयोऽपि बोधका वेदका बोधा बुद्धयदि शब्दार्थप्रतिभासकाश्च समा एव तत्प्रतिभासकत्वेन।।१७५।।

बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन नाम हैं। बुद्धि है आदि में जिसके वे बुद्धि आदि बुद्धि, शब्द और अर्थ के वाचक हैं। बुद्धि शब्द और अर्थ के प्रतिपादक होने के कारण समान हैं। बुद्धि, शब्द और अर्थ के ज्ञान भी बुद्धि आदि के अर्थ के प्रतिनिधि हैं, वे तीनों भी अर्थ के प्रतिपादक तत्व के कारण बुद्धि आदि संज्ञा के समान हैं। भाव

यह है कि गौ यह तथा जानता है यह बुद्धि की वाचिक संज्ञा है। इस संज्ञा से सुनने वाले पुरुष को अपने अर्थ के ज्ञान में बोध होता है। गौ यह कहा, यह अपने शब्द के रूप को ही कहने वाली संज्ञा है। उससे श्रोता पुरुष को अपने प्रयोजन में शब्द का अपने ही रूप में ज्ञान कराने वाला ज्ञान होता है। 'गाय को दुहने के लिए लाओ' यहाँ यह संज्ञा बास्य अर्थ की वाचिका है। उससे श्रोता को अपने अर्थ सास्नादि युक्त शरीर में बोधक ज्ञान होता है। अतः बुद्धि शब्द और अर्थ का वाचक होने से तीनों संज्ञा समान ही हैं तथा बुद्धि आदि शब्द के अर्थ के बोधक ज्ञान भी समान ही हैं, बुद्धि आदि शब्द के अर्थ के बोधक ज्ञान भी समान ही हैं, बुद्धि आदि के प्रतिभासक होने से।।१७५।।

भावार्थ :– बुद्धि शब्द और अर्थ ये तीन नाम हैं, तीनों अपने अपने अर्थ को प्रतिपादित करते हैं, बुद्धि शब्द और अर्थ संज्ञाओं के प्रतिविम्ब स्वरूप बुद्धि शब्द और अर्थ का बोध भी समानरूप से होता है। अतः अर्थ के बिना न तो उनके नाम हो सकते हैं और न उनका ज्ञान हो सकता है।

पुनरप्याशङ्क्य तमेव बाह्यार्थं प्रतिपादयन्नाह–।।१७६।।

पुनः विज्ञानाद्वैतवादियों की शंका का समाधान करते हुए बाह्यार्थ का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं।।१७६।।

वक्तृ श्रोतृ प्रमातॄणां वाक्य बोध प्रमाः पृथक्।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ।।८६।।

वक्ता च श्रोता च प्रमाता च वक्तृश्रोतृप्रमातारस्तेषां वक्तृश्रोतृप्रमातॄणां वाचकश्रावकज्ञापकानाम्। यथासंख्यं वाक्यं च बोधश्च प्रमा च वाक्यबोध प्रमाः शब्दशाब्दप्रत्यक्षानुमानानि। पृथक् व्यवस्थित लक्षणानि। भ्रान्तावेव यदि भ्रान्तिस्वरूपे व्यवतिष्ठेरन् न तु वर्तेरन्निति वाक्यशेषः। ततः को दोषः स्यादित्याह–प्रमाभ्रान्तौ सर्वेषां प्रमाणानां बाह्यापेक्षायां द्वैविध्ये सति प्रमाणयोः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोः प्रत्यक्षानुमानयोर्वा भ्रान्तौ भ्रान्तिस्वरूपतायां सत्यामपि। बाह्यार्थौ बाह्यविशेषयौ दृश्यानुमेयाख्यौ। तादृशात्प्रस्तुताद्भ्रान्तस्वरूपादितरा– वन्यावभ्रान्तस्वरूपौ यौ क्रमाक्रमानेकान्तात्मकौ सन्तौ विभावनीयौ स्याताम्। अथवा प्रमाभ्रान्तौ भ्रान्ताभ्रान्तौ बाह्यार्थौ भ्रान्तावेव तत इदं भ्रान्तमिदमभ्रान्तमिति विचारोऽनर्थकः स्यात्।।१७७।।

बोलने वाले, सुनने वाले और जानने वाले के क्रमशः वाक्य, बोध और प्रमा शब्द शाब्दप्रत्यक्ष और अनुमान अलग अलग रहने वाले हों, यदि भ्रान्तिस्वरूप ही हों

वास्तव में न हों तब क्या दोष होगा, यह कहते हैं। प्रमा की भ्रान्ति होने पर सभी प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भ्रान्तिस्वरूप होनेपर भी बाह्य अर्थ दृश्य और अनुमेय पदार्थ उस प्रकार के भ्रान्तस्वरूप से भिन्न अभ्रान्त स्वरूप क्रम और अक्रम रूप अनेकान्तात्मक समझना चाहिए। अथवा प्रमा के भ्रान्त होने पर बाह्यार्थ दृश्य और अनुमेयपदार्थ भ्रान्त ही हैं, अतः यह भ्रान्त ही हैं, और यह अभ्रान्त हैं यह विचार व्यर्थ हो जायेगा।।१७७।।

भावार्थ :– वक्ता श्रोता और प्रमाता के क्रमशः वाक्य, बोध और प्रमा यदि पृथक् ही हों तो वे भ्रान्त ही होंगे, प्रमा के भ्रान्त होने पर भी बाह्य दृश्य और अनुमेय पदार्थ को अनेकान्तात्मक भ्रान्त तथा अभ्रान्त दोनों रूप समझना चाहिए अथवा प्रमा के भ्रान्त होने पर दृश्य और अनुमेय पदार्थ भी भ्रान्त ही होगे। ऐसी स्थिति में यह भ्रान्त हैं, यह अभ्रान्त हैं, यह नहीं कहा जा सकेगा।

बाह्यार्थे सति प्रमाणमप्रमाणं च युज्यते नान्यथाऽत आह–।।१७८।।

बाह्य अर्थ के होने पर ही प्रमाण और अप्रमाण होते हैं, बाह्यार्थ के बिना नहीं। अतः कहते हैं।।१७८।।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं बाह्यार्थेसति नासति।।
सत्यानृतव्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु।।८७।।

बुद्धिश्च शब्दश्च तयोः प्रामाण्यमर्थप्रतिपादकत्वं बाह्यार्थे सति भवत्यसत्यविद्यमाने च न भवति। सत्यमवितथमनृतं वितथं तयोर्व्यवस्था अर्थस्याप्त्यनाप्तिषु अर्थ ग्रहणाग्रहणेषु सत्सु युज्यते नान्यथा। वचनस्य तदा सत्यता भवति यदा बाह्यार्थं तादृग्भूतं प्रापयति। अन्यथाऽसत्यम्।।१७९।।

बुद्धि और शब्द की प्रमाणता अर्थ प्रतिपादिकता बाह्यार्थ के होने पर होती है नहीं होने पर नहीं होती। सत्य और असत्य की व्यवस्था पदार्थ के प्राप्त होने और नहीं होने पर होती है, नहीं होने पर नहीं होती। वचन भी तभी प्रामाणिक होते हैं, जब उस प्रकार बाह्यार्थ प्राप्त होता है। उस प्रकार बाह्यार्थ नहीं होने पर वचन असत्य होता है।।१७९।।

भावार्थ :– बुद्धि और शब्द की प्रमाणता बाह्यार्थ के होने पर होती है नहीं होने पर नहीं होती। वचन तभी प्रमाणिक होते हैं जब उसके अनुसार बाह्य अर्थ हो। ज्ञान भी तभी प्रमाणक माना जाता है जब उसके अनुसार ज्ञेय पदार्थ हो, अन्यथा नहीं।

तस्य बाह्यार्थस्य कथं प्राप्तिर्भवतीति पृष्टे कश्चिदाह दैवादेव, कश्चित्पुनः पौरुषादेवैतत्पक्षद्वयं विघटयन्नाह – ।।१८०।।

उस बाह्य अर्थ की प्राप्ति कैसे होती है यह पूँछने पर कोई कहता है भाग्य से ही बाह्य अर्थ की प्राप्ति होती है। कोई कहता है कि पुरुषार्थ से ही उसकी प्राप्ति होती है, इन दोनों ही एकान्त पक्ष का विरोध करते हुए कहते हैं ।।१८०।।

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरूषतः कथम्।

दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत्।।८८।।

अर्थस्य कार्यस्य प्रशस्ताप्रशस्तशरीरेन्द्रियादेस्तथा ज्ञानसुखादेरज्ञान दुःखादेर्वा सिद्धिर्निष्पत्तिर्यदि दैवादेव सर्वथा स्यात् तद्दैवं कर्माख्यं पौरुषान्मनोवाक्कायव्यापार लक्षणाच्छुभाशुभरागादिप्रायात्पुरुषकारात्तर्हि कथं स्यात्। अथ दैवान्तरादेव दैवं स्यादित्यत्रोच्यते। दैवतश्चेद्यदि दैवादेव दैवं स्यात्तदानीमनिर्मोक्षोऽसिद्धिः स्यात्। दैवस्य कारणभूतस्य कार्यभूतस्य च सततं सन्ततितो विच्छेदं प्रत्युपायासम्भवात् तदा दानशीलप्रव्रज्यार्थः कृष्याद्यर्थश्च पुरुषकारोऽप्यनर्थः स्यात्।।१८१।।

यदि अर्थ की, कार्य शुभ अशुभ, शरीर इन्द्रिय आदि की तथा ज्ञान सुखादि की तथा अज्ञान दुःखादि की प्राप्ति सर्वथा एकान्तरूप से दैव से ही हो तो वह दैव जिसे कर्म कहा जाता है वह मन वचन काय के व्यापाररूप शुभ अशुभ रागरूप पुरुषार्थ से कैसे होगा? यदि यह कहो कि दूसरे दैव से दैव भाग्य होता है। यदि दैव से ही होता है ऐसा मानना जाये तो किसी को मोक्ष नहीं हो सकता। कारणभूत दैव और कार्य भूत दैव की निरन्तर परम्परा होने से संसार के विच्छेद के प्रति उपाय असंभव होने से, तब दान शील सन्यास आदि के लिए तथा कृषि आदि के लिए पुरुष का प्रयत्न व्यर्थ हो जायेगा।।१८१।।

भावार्थ :— कार्य की सिद्धि यदि सर्वथा दैव से ही मानो तो दैव पुरुषार्थ से होता है यह नहीं कहा जा सकता है। यदि दैव से ही दूसरा दैव (भाग्य) होता है यह कहा जाय तो फिर एक दैव से दूसरे दैव की परम्परा चलती रहेगी। अतः मोक्ष किसी को कभी नहीं होगा, मोक्ष के लिए कोई दान शील, सन्यास आदि का प्रयत्न नहीं करेगा, न कृषि आदि के लिये कोई प्रयत्न करेगा। क्योंकि दैव से ही कार्य की सिद्धि होने पर पुरुषार्थ व्यर्थ हो जायेगा।

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरूषं दैवतः कथम्।

पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम्।।८९।।

अथ पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् सर्वथा यदि पौरुषमात्रादेवार्थसिद्धिः स्यात्। तत्पौरुषं दैवाद्दैवप्रामाण्यात्कथं फलं स्यात्। तथाहि समानेम समानानां केचिदर्थेषु युज्यन्ते केचिन्न प्रसिद्धमेतत्। अन्यथा दैवमन्तरेण पौरुषादेव पौरुषस्य प्रवृत्तौ सत्यां सर्वप्राणिषु पौरुषममोघमेव सफलमेव स्यात् दैवहीनानामपि तद्भवति।।१८२।।

यदि पौरुष मात्र से ही सर्वथा कार्य की सिद्धि कहो तो वह पुरुषार्थ दैव से कैसे सफल होगा? कार्य में समान रूप से प्रयत्न करने पर भी कोई सफल होता है कोई नहीं, यह प्रसिद्ध है। अन्यथा दैव के बिना ही पुरुषार्थ की प्रवृत्ति होने पर सभी प्राणियों में पुरुषार्थ सफल ही होना चाहिए, भाग्यहीनों के भी वह सफल होना चाहिए।।१८२।।

भावार्थ :– एकान्त रूप से पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्धि मानने पर पुरुषार्थ भी भाग्य से होता है, यह कैसे कहा जा सकेगा। यदि पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ सफल होता है ऐसा माना जाय तो सभी पुरुषार्थ करने वालों के कार्य की सिद्धि होने चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। कोई अत्यधिक पुरुषार्थ करने पर भी अपने कार्य में सफल नहीं होता और कोई कम पुरुषार्थ करके भी सफलता प्राप्त कर लेता है, वहाँ उसका भाग्य ही कारण होता है।

उभयैकान्तेऽपि न युक्तम्–।।१८३।।

दोनों का एकान्त भी ठीक नहीं है।।१८३।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते वृत्तिः।।९०।।

उभय दोष प्रसंगात्। अवाच्यत्वदोषाच्चदैवात्केवलात्पौरुषाच्च केवलादर्थसिद्धिर्यदि न भवति कथं तर्हि स्यादत आह – ।।१८४।।

दोनों दोष होने से उभयैकात्म्य को भी एकान्तरूप से नहीं माना जा सकता और अवाच्यत्व का दोष होने से। केवल दैव और पौरुष से ही अर्थ की सिद्धि नहीं होती तो कैसे होती है? यह पूछने पर कहते हैं।।१८४।।

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात्।।९१।।

बुद्धिर्विचारः पूर्वं प्रथमं कारणं यस्याः सा तथा न बुद्धिपूर्वा अबुद्धिपूर्वा सा चासावपेक्षा च आलोचनं च सा तया तस्यामतर्कितोपस्थितन्यायेनेत्यर्थः। इष्टमभिलषितं सुखादि। अनिष्टमनभिलषितं दुःखादि। स्वदैवतः स्वपुण्यपाप फलात्पूर्व जन्मनिबद्धकर्मणः। यद्यपि पौरुषमात्रं विद्यते तथापि मुख्याभावो विवक्षितो नात्यन्ताभावः। तथा बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायां विचारपूर्वकत्वेनानुष्ठानादिष्टमनिष्टं च स्वपौरुषा– त्स्वकीयपुरुषकारात्। अत्रापि दैवमप्रधानत्वेन विवक्षितं नात्यन्ताभावत्वेन। परस्परापेक्षयैव कार्यसिद्धिर्यतो देव आत्मा तस्य कर्म दैवमिति।।१८५।।

जिसका कारण बुद्धि है वह बुद्धिपूर्वा तथा न बुद्धिपूर्वा अबुद्धिपूर्वा। जिसमें बुद्धि प्रथम कारण नहीं है, बिना विचार के जो होता है इष्ट जिसकी अभिलाषा होती

है सुखादि, अनिष्ट जिसकी अभिलाषा नहीं होती दुःखादि। अपने भाग्य से अपने पुण्य पाप से पूर्व जन्म में उपार्जित कर्म से यद्यपि वहाँ भी पौरूष है, किन्तु मुख्य रूप से उसका अभाव विवक्षित है, अत्यन्त अभाव नहीं। तथा विचार पूर्वक किए हुए कार्य से जो इष्ट अनिष्ट होता है वह अपने पुरुषार्थ से होता है। यहाँ भी दैव गौणरूप से विवक्षित है, अत्यन्ताभाव रूप से नहीं। परस्पर दैव और पुरुषार्थ की एक दूसरे की अपेक्षा से ही कार्य की सिद्धि होती है। देव अपने को कहा है, उसका जो कर्म वह दैव है।।१८५।।

भावार्थ :– कार्य की सिद्धि न केवल दैव से होती है न पुरुषार्थ से। विचार के बिना ही जहाँ इस अनिष्ट सुख दुःख आदि फल की प्राप्ति होती है वहाँ पूर्व जन्म का उपार्जित कर्म दैव मुख्य रहता है, पुरुषार्थ गौण। जहाँ विचार पूर्वक कार्य करने पर इष्ट अनिष्ट सुख दुःखादि की प्राप्ति होती है, वहाँ पुरुषार्थ मुख्य रहता है दैव गौण। दैव और पुरुषार्थ के सापेक्ष होने पर ही कार्य की सिद्धि होती है। दैव भी अपने पूर्ववत् पुरुषार्थ से ही बनता है।

ननु परदुःखे पापं तस्यैव सुखे पुण्यं स्वदुःखात्पुण्यं स्वसुखात्पापमित्येवं कैश्चिदभाणि न दैवादिति तन्मतनिराकरणायाह–।।१८६।।

कोई कहता है दूसरे को दुःख देने से पाप और सुख देने से पुण्य तथा अपने को दुःख देने से पुण्य और अपने को सुख देने से पाप होता है, दैव से नहीं, उसके मत का निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१८६।।

पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः।।९२।।

परेऽन्यस्मिन्प्राणिनि दुःखमात्राद्यदि पापं स्यात्। तस्मिन्नेव सुखमात्राच्च पुण्यं यदि स्यात्। तदानीमचेतनो विषशस्त्रादिरकषायो वीतरागः तावपि बध्येयातां कर्मबन्धस्य कर्तारौ भवतः। निमित्तत्वात्। प्रत्ययमन्तरेणापि भावप्रधान– त्वान्निर्देशस्य।।१८७।।

दूसरे प्राणी को दुःख देने मात्र से पाप हो और दूसरे को सुख देने मात्र से यदि पुण्य हो तब अचेतन विष शस्त्रादि तथा वीतरागी मुनि भी बन्ध के भागी होंगे। क्योंकि विष, शस्त्रादि तथा वीतरागी मुनि भी दूसरे के दुःख तथा सुख के कारण होते हैं। कारण के बिना भी पुण्य और पाप में भाव की प्रधानता का कथन होने से।।१८७।।

भावार्थ :– यदि केवल दूसरों को सुख देने से पुण्य का आश्रव तथा दुःख देने से पाप का आश्रव माना जाय तो अचेतन दूध मलाई मिष्टान्न आदि के खाने से दूसरों

को सुख मिलता है तथा विष कंटक आदि से दुःख मिलता है तो उन्हें भी पुण्य पाप के आश्रव का प्रसंग आता है। यदि चेतन को ही पुण्य पाप का आश्रव माना जाय तो वीतरागी मुनि भी जब शिष्यों को दीक्षा देते हैं तो उनके परिजनों को दुःख होता है, ईर्यापथ से चलने पर भी कभी-कभी उनके पैरों के नीचे आकर चींटी आदि मर जाती हैं तो उनके दुःख के कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त वे शिष्यों को उपदेश देते हैं तो उनको सुख मिलता है तथा ऋद्धीधारी वीतरागी साधुओं के स्पर्श मात्र से अथवा उनके शरीर को स्पर्श की हुई वायु अथवा जल से ही रोगीजन नीरोग हो जाते हैं ऐसी अवस्था में उनको भी पाप तथा पुण्य का आश्रव होना चाहिए, क्योंकि वे भी दूसरों के सुख दुःख में निमित्त होते हैं। किन्तु ऐसा नहीं होता।

तथा–।।१८८।।

तथा ।।१८८।।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनि र्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः।।९३।।

स्वस्मिन् दुःखात् ध्रुवं निश्चितं पुण्य यदि स्यात्तस्मिन्नेवात्मनि सुखाद्धेतोर्ध्रुवं पापं च यदि स्यात्। ततः किं स्यात्। ताभ्यां वीतरागो मुनिर्युञ्ज्याद्बद्धो भवेत्। कुतो निमित्ततः।।१८९।।

अपने को दुःख देने से यदि निश्चित रूप से पुण्य और अपने को सुख देने से निश्चित रूप से पाप हो, तब क्या होगा? तो उससे वीतराग मुनि को कर्मबन्ध होगा, कैसे? अपने को सुख और दुःख देने का कारण होने से।।१८९।।

भावार्थ :– यदि अपने को दुःख देने से पुण्य और सुख देने से निश्चित रूप से पाप का बन्ध माना जाय तो वीतरागी और विद्वान् मुनियों को भी बन्ध का प्रसंग आता है, क्योंकि वे कायक्लेश तथा योगादि का जब साधन करते हैं तो उनके शरीर को कष्ट होता तथा तत्त्वज्ञान होने पर साम्यभाव की प्राप्ति होने से सुख मिलता है। यदि उनमें भी बन्ध माना जाय तो मोक्ष किसी को नहीं होगा।

अथोभयैकान्तस्तद्द्वयादिष्यते तत्रापि दोष एव, विरोधात्। नाप्यवाच्यत्वं वचनविरोधात्–।।१९०।।

यदि कोई उक्त दोष से बचने के लिए एकान्ततः उभयैकान्त को मानता है तो वहाँ भी दोष है, विरोध होने से अवाच्यत्व भी नहीं कह सकते, वचन का विरोध होने से।।१९०।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।९४।।

सुगमम् ।।

सुगम है।

भावार्थ :– एकान्तवादियों के यहाँ उभयैकान्त भी नहीं माना जा सकता उभय दोष होने से। एकान्तरूप से अवाच्य भी नहीं कहा जा सकता। अवाच्य यह कहने पर ही वाच्यत्व का प्रसंग आने से फिर कैसे पुण्य पाप का बन्ध होता है, यह पूछने पर आचार्य कहते हैं ।।

कथं तर्ह्यत आह– ।।१६१।।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यापापास्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः।।९५।।

स्व आत्मा परोऽन्यस्तयोस्तिष्ठतीतिस्वपरस्थं सुखं चासुखं च सुखासुखं जीवप्रदेशाह्लादनानाह्लादनं। विशुद्धिः प्रमोदादिशुभपरिणामः। यद्यपि निरवशेषरागादिविरहलक्षणायां विशुद्धौ विशुद्धिशब्दो गृह्यते। संक्लेश आर्त्तरौद्रध्याने तयोरङ्गं कारणं विशुद्धिसंक्लेशाङ्गम्। चेद्यदि स्वपरस्थं सुखासुखं विशुद्धिसंक्लेशालम्बनं यदि भवति तदा पुण्यं च पापं तयोरास्रवौ युक्तौ। न चेदेवं यद्येवं न स्यात्। पुण्यास्रवः पापास्रवः व्यर्थो निष्फलः। अर्हतो वीतरागस्य तवेव वा शुष्ककुड्यनिपतितचूर्णमुष्टिवत् बन्धाभावात्। एतेन मस्करिपूरणमतं निराकृतं भवति। सिद्धेषु संक्लेशकारणाभावात्।।१६२।।

अपने और पर में जो सुख और दुःख जीव प्रदेशों का आनन्दित होना और आनन्दित नहीं होना होता है। विशुद्धि प्रसन्नता आदि शुभ परिणाम हैं। यद्यपि विशुद्धि शब्द संपूर्ण रागादि रहित विशुद्धि में प्रयुक्त किया जाता है तो भी कुशल शब्द के समान शुभ परिणाम आदि में जो विशुद्धि होती है उसको भी ग्रहण किया जाता है। संक्लेश आर्त्त और रौद्रध्यान हैं इन दोनों विशुद्धि और संक्लेश के कारण हैं वह विशुद्धि संक्लेशाङ्ग हैं। यदि अपने और पर में स्थित सुख और दुःख विशुद्धि और संक्लेश का कारण हो, तव पुण्य और पाप आश्रव युक्त होता है यदि ऐसा न हो तो पुण्य का आश्रव और पाप का आश्रव व्यर्थ निष्फल है। हे अर्हन्त भगवान आपके अथवा आपके समान सूखी कुंडी में गिरे हुए चूर्ण की मिट्टी के समान। जैसे सूखी कुंडी में गिरने पर वह उससे चिपकता नहीं है, उसी प्रकार आपके जैसे वीतरागी के पुण्य और पाप का आश्रव नहीं होता। और पूरण आदि के मत का निराकरण होता है। सिद्धों में संक्लेश के कारणों का अभाव होने से।।१६२।।

भावार्थ :– शुभ परिणाम तथा अशुभ परिणाम से ही पुण्य तथा पाप का आश्रव होता है। अतः वीतरागी मुनियों के द्वारा अपने अथवा दूसरों के सुख दुःख होने पर भी

उन्हें पुण्य तथा पाप का आश्रव नहीं होता। कषाय ही बन्ध का कारण है। वीतरागी मुनि कषाय रहित होते हैं। अतः जैसे सूखी कुंडी में चूर्ण गिरने पर वह कुंडी से चिपकता नहीं है, कुंडी के चिकनी होने पर ही वह चिपकता है। उसी प्रकार रागी द्वेषी व्यक्ति को ही अपने तथा दूसरों को सुख दुःख का कारण होने से बन्ध होता है वीतरागियों को नहीं।

अथ पुण्यपापास्रवकारणमज्ञानमिष्यते चेत्तन्मतनिराकरणायाह–।।१९३।।

अब यदि पुण्य और पाप के आश्रव का कारण अज्ञान मानते हो तो उसका निराकरण करने के लिए कहते हैं।।१९३।।

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा।।९६।।

यद्यज्ञानाज्जाड्यस्वरूपाद्बन्धो ध्रुवो न केवली मुक्तः। कुतो ज्ञेयानन्त्यात्प्रमेयस्यानन्त्यं यतः। अथ कदाचित् ज्ञानस्तोकाद्बोध निर्हासान्मोक्षो ऽभ्युपगम्यते चेद्बहुतो विपुलादज्ञानादन्यथाऽन्येन प्रकारेणातिशयनेन विमोक्षः स्यादिति सम्बन्धः। अथवा प्रागुक्तान्मोक्ष प्रकारादन्येन प्रकारेणापि सह जन्मनो योगः स्यात्। तथा च सति न बन्धो नापि मोक्षस्तस्य विचाराक्षमत्वात्।।१९४।।

यदि अज्ञान से निश्चित रूप से बन्ध होता है तो केवली मुक्त नहीं हो सकते, कैसे? क्योंकि ज्ञेय के प्रमेय के अनन्त होने से। यदि अल्पज्ञान से मोक्ष माना जाय तो अधिक अज्ञान की अधिकता होने से बन्ध होना चाहिए। अथवा पहले कहे हुए मोक्ष से अल्प ज्ञान से होने वाले मोक्ष से अन्य प्रकार से अज्ञान की अधिकता से जन्म की भी प्राप्ति हो जायेगी। ऐसा होने पर न बन्ध होगा न मोक्ष होगा, विचार संगत नहीं होने से।।१९४।।

भावार्थ :– यदि एकान्त रूप से अज्ञान से बन्ध माना जाय तो कोई भी केवली नहीं हो सकेगा। और न किसी की मुक्ति होगी। क्योंकि ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं, केवली होने से पूर्व अज्ञान रहता ही है। अल्पज्ञान से ही मोक्ष मान लिया जाय यह कहना भी उचित नहीं है क्योंकि अल्पज्ञान वाले के अज्ञान की मात्रा अधिक होगी, फिर उसके मोक्ष कैसे सकता है, बन्ध ही होगा। अतः एकान्तरूप से अज्ञान से बन्ध तथा अल्पज्ञान से मोक्ष की मान्यता तर्कसंगत नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।९७।।

उभयैकान्तावक्तव्यमपि दुष्टं विरोधात्–।।१६५।।

उभयैकान्त और अवक्तव्य भी नहीं हो सकते विरोध होने कारण।।१६५।।

कथं तर्हि तौ स्यातामत आह–।।१६६।।

फिर बन्ध और मोक्ष कैसे होंगे। यह पूछने पर कहते हैं।।१६६।।

अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा।।९८।।

अज्ञानात्पुनरपि किं विशिष्टात् मोहनो मिथ्यात्वरूपाद्बन्धो भवति। विनष्टमिथ्यात्वरूपादज्ञानात्पुनर्न बन्धो भवति। ज्ञानस्तोकादपि मोक्षः स्याद्यद्यमोहाद्भवेत् यदि पुनर्मोहितः स्यात्तस्य मोक्षाभाव एव।।१६७।।

अज्ञान से अज्ञान भी मोहरूप मिथ्यात्वरूप होने से बन्ध होता है अल्पज्ञान भी यदि वह मोह रहित मिथ्यात्व रहित हो तो उससे मोक्ष हो जायेगा। यदि वह ज्ञान मोह वाले के मिथ्यात्व वाले के हो तो मोक्ष का अभाव ही रहेगा।।१६७।।

भावार्थ :– बन्ध, मोह मिथ्यात्व के कारण होता है। यदि अज्ञान के साथ मिथ्यात्व है तो बन्ध होगा, मिथ्यात्व के अभाव में अज्ञान से भी बन्ध नहीं होगा। मिथ्यात्व रहित होने पर अल्पज्ञानी को भी मोक्ष हो सकता है किन्तु मिथ्यात्वी के अल्पज्ञानि होने पर भी मोक्ष नहीं होगा, बन्ध ही होगा।

अथ कदाचिन्मनुषे न दैवान्नापि पौरुषान्न ज्ञानान्नाप्यज्ञानात् किंतु ईश्वर प्रेरणादित्यस्य मतस्य निराकरणायाह अथवा कामादीनां कर्मणश्च वैचित्र्यमनादित्वं च दर्शयितुमाह–।।१६८।।

यदि कोई कहे कि कभी-कभी मनुष्य को केवल ईश्वर की प्रेरणा से ही मोक्ष हो जाता है न दैव से, न पुरुषार्थ से, न ज्ञान से, न अज्ञान से मोक्ष होता है। उसका निराकरण करने के लिए कहते हैं अथवा कामादि विकारों के और कर्म की विचित्रता के अनादिपने को बताने के लिए कहते हैं।।१६८।।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः।।९९।।

कामादीनां रागादीनां प्रभव उत्पादः कार्यरूपश्चित्रो नानाप्रकारः। कर्मबन्धा– नुरूपतः ज्ञानावरणादिकर्मणः कारणाद्भवति। तच्च कर्म ज्ञानावरणादिकं स्वहेतुभ्यो भवति कुत एतदनादिर्बन्ध हेतुसन्तानो बीजांकुरवत् न पुनरीश्वरादेस्तस्या– वस्तुत्वात् विरागाक्षमत्वेन। न तर्हि केषांचिन्मुक्तिरन्येषां संसारश्चकर्मबन्धनिमित्त विशेषादिति चेदाह – ते भगवतोऽर्हतो जीवा द्विप्रकाराः संसारिणः सन्ति। कुतः शुद्ध्यशुद्धितो भव्याभव्यशक्तेः। अत एव न सर्वेषां

मोक्षः। एतेनान्यदपि मतान्तरं निराकृतं वेदितव्यम्।।१६६।।

कामादि रागादि की उत्पत्ति विचित्र प्रकार के कार्यरूप ज्ञानावरण आदि कर्मबन्ध के कारण होती हैं। वह ज्ञानावरणादि कर्म अपने कारणों से होता है, कैसे? यह बन्ध और बन्ध के हेतुओं की सन्तान अनादि है बीज और अंकुर के समान। ईश्वर आदि की प्रेरणा से नहीं, उसके अवस्तु होने से तथा वीतराग होने के कारण आप अर्हन्त भगवान के अनुसार संसारी जीव दो प्रकार के हैं, कैसे? शुद्धि और अशुद्धि के कारण भव्य और अभव्य शक्ति से इसलिए सबको मोक्ष नहीं होता। इससे अन्य मतों को भी निराकृत समझना चाहिए।।१६६।।

भावार्थ :— जीव के राग द्वेष काम आदि विकार ज्ञानावरणादि कर्मों के कारण होते हैं और ज्ञानावरणादि कर्म रागादि के कारण होते हैं। यह बन्ध और बन्ध के हेतुओं की सन्तान परम्परा बीज और अंकुर के समान अनादि काल से चली आ रही है। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होते है, उसी प्रकार कर्म से कर्म के कारण रागादि और रागादि से कर्म बन्ध भी अनादि काल से चले आ रहे हैं। इसमें ईश्वर कुछ नहीं करता। अर्हन्त भगवान के अनुसार संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं भव्य और अभव्य। भव्य जीव ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, अभव्य नहीं।

शुद्धयशुद्धिस्वरूपप्रतिपादनायाह—।।२००।।

शुद्धि और अशुद्धि का स्वरूप बताने के लिए कहते है।।२००।।

शुद्धयशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादि तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्क गोचरः।।१००।।

शुद्धयशुद्धी ये शक्तीभव्याभव्यत्वरूपे ते अनादितत्त्वार्थश्रद्धानाश्रद्धानयोग्यके कटुकेतरमुद्गपाक्यापाक्यशक्तिवत् तयोर्भव्यत्वाभव्यत्वशक्त्योर्व्यक्ती तत्त्वार्थ– श्रद्धानप्रिय —धर्मत्वादिपरिणत्यपरिणती साद्यनादी। कुतोऽयं शक्तिभेदोऽतर्क— गोचरः स्वभावो यतः।।२०१।।

शुद्धि और अशुद्धि रूप शक्तियाँ जो भव्य और अभव्य रूप हैं, वे अनादि काल से तत्त्वार्थ के श्रद्धान और अश्रद्धान की योग्यता के रूप में हैं मूंग के पकने योग्य और न पकने योग्य शक्ति के समान। उन भव्यत्व और अभव्यत्व शक्तियों का प्रकटीकरण तत्त्वार्थश्रद्धान धर्म आदि की परिणति और उनकी अपरिणति अर्थात् मिथ्याश्रद्धान अधर्म आदि की परिणति क्रमशः सादि अनादि है। सम्यक्दर्शन सादि और मिथ्यात्व अनादि है। अतः भव्यत्व की शक्ति की व्यक्ति सादि है और अभव्यत्व की अनादि हैं। यह कैसे है? क्योंकि, स्वभाव में तर्क उपस्थित नहीं होता, अतः

शक्तिभेद स्वभाव से ही है।।२०१।।

भावार्थ :– भव्य और अभव्य के भेद से संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसे मूंग के दाने कुछ तो पकने की शक्ति रखते हैं कुछ नहीं, उसी प्रकार भव्य जीव सम्यक्दर्शनादि के द्वारा अपनी शक्ति को प्रकट कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, अभव्य जीव अपनी शक्ति को प्रकट न कर सकने के कारण कभी भी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते हैं। भव्य जीवों की शक्ति का प्रकटीकरण सादि होता है, अभव्य अनादिकाल से अभव्य ही रहते हैं। क्योंकि अनादि काल से प्रत्येक संसारी जीव मिथ्यात्वी है, सम्यक्त्व की प्राप्ति बाद में ही होती है। यह जीव का स्वभाव है।

एवं तावत्प्रमाणपरतन्त्रप्रमेयविचारः कृतः। अधुना प्रमाण तत्वनिरूपणार्थमाह–।।२०२।।

इस प्रकार प्रमाण के आधीन प्रमेय तत्त्व का विचार किया गया। अब प्रमाण तत्व को बताने के लिए कहते हैं।।२०२।।

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावी च यज्ज्ञानं स्याद्वादनय संस्कृतम्।।१०१।।

तत्त्वज्ञानं परार्थबोधः, पुनरपि कथंभूतं युगपत्सर्वार्थमवभासत इति युगपत्सर्वभासनमक्रमेण परिच्छेदात्मकमित्यर्थः, तत्प्रमाणमेव। क्रमभावि च यज्ज्ञानं छद्मस्थीयं चक्षुरादिकं चकारादक्रमभावि च दीर्घशष्कुल्यादिभक्षणे सम्भवात्। सर्वथासदसदेकानेक –नित्यानित्यादिसकलैकान्तप्रत्यनीकानेकान्ततत्वविषयः स्याद्वादो जातियुक्त निबन्धनो वितर्को नयस्ताभ्यां संस्कृतं प्रमाणगोचरं नीतं तदपि प्रमाणं स्याद्वादनयसंस्कृतं यतस्ते तव।।२०३।।

तत्त्वज्ञान, परपदार्थों का ज्ञान, पुनः वह कैसा ज्ञान? एक साथ सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, क्रम के बिना एक साथ ही जानने वाला तत्त्वज्ञान प्रमाण है? छद्मस्थों का चक्षु आदि के द्वारा होने वाला क्रमभावि ज्ञान तथा अक्रमभावि भी पूरी आदि खाने के समय संभव होने से। सर्वथा सत् असत् एक, अनेक, नित्य, अनित्यादि सम्पूर्ण एकान्त के विपरीत अनेकान्त तत्त्व को जानने वाला स्याद्वाद तथा वितर्क नय इन दोनों के द्वारा संस्कारित और प्रमाण गोचर है। अतः वह भी प्रमाण है क्योंकि वह भी प्रमाण और नय के द्वारा संस्कारित है।।२०३।।

भावार्थ :– प्रमाण और नय दो प्रकार के ज्ञान हैं। एक साथ सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्रमाण है छद्मस्थों का क्रमभावि ज्ञान मतिश्रुति आदि भी प्रमाण है। विवक्षानुसार मुख्य और गौण को प्रकाशित करने वाला ज्ञान नय है

अक्रमभावि ज्ञान स्याद्वाद रूप है। क्रमभावि ज्ञान स्याद्वाद और नय दोनों से ही सुसंस्कृत है। अतः मति आदि क्रमभावि ज्ञान भी प्रमाण हैं।

प्रमाणफलं दर्शयन्नाह –।।२०४।।

प्रमाण के फल को दिखाते हुए कहते हैं।।२०४।।

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वं वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे।।१०२।।

आद्यस्य प्रमाणस्य केवलज्ञानस्य फलमुपेक्षा रागमोहाभावः। शेषस्य प्रमाणस्य छद्मस्थीयज्ञानस्य,आदानं ग्रहणं हानं त्यागस्तयोर्बुद्धिः तत्फलं। पूर्वं वा उपेक्षेत्यर्थः। सामान्यापेक्षायां नपुंसकलिङ्गता। पूर्वा वा इति पाठान्तरं। अज्ञाननाशः फलं ज्ञानतेत्यर्थः। सर्वस्यास्य मत्यादिभेदभिन्नस्य हिताहितभेदभिन्ने स्वगोचरे स्वविषये वर्तमानस्यौत्सर्गिकं फलमज्ञाननाश इत्युक्तम्।।२०५।।

आदि के प्रमाण केवलज्ञान का फल उपेक्षा रागद्वेष मोह आदि का अभाव है। शेष प्रमाण छद्मस्थों के ज्ञान मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय का फल हेय और उपादेय की बुद्धि होना है। अथवा मति, श्रुति आदि का फल उपेक्षा भी है। पूर्व शब्द का सामान्य अपेक्षा होने पर नपुंसकलिंग में प्रयोग किया गया है। पूर्वा वा ऐसा भी पाठान्तर है। अज्ञान का नाश, ज्ञान की प्राप्ति भी फल है। हिताहित भेद से भिन्नप्रकार के अपने विषय में वर्तमान सभी मति, श्रुति आदि ज्ञानों का स्वाभाविक फल अज्ञान का नाश है।।२०५।।

भावार्थ :– केवल ज्ञान का फल तो संसार से उदासीनता है, शेष मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान का फल हेय, उपादेय का ज्ञान तथा उपेक्षा उदासीनता भी है। किन्तु सभी ज्ञानों का मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान का साक्षात् या स्वाभाविक फल अज्ञान का नाश तथा ज्ञान की प्राप्ति है।

प्रस्तुतस्याद्वादाख्यपरार्थसाधनसमर्थनार्थमाह –।।२०६।।

प्रस्तुत स्याद्वाद के पदार्थ साधन का समर्थन करने के लिए कहते हैं।।२०६।।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यंप्रतिविशेषकः।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि।।१०३।।

पदानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षाः समुदाया वाक्यानि तेषु वाक्येष्वनेकान्तं द्योतयति प्रकटयतीति अनेकान्तद्योती। स्याच्छब्दो निपातोऽव्ययं। गम्यमभिधेयमस्ति घट इत्यादि वाक्येऽस्तित्वादि तत्प्रतिविशेषकः समर्थकः। अथवा गम्यं हेयादेय भेदभिन्नं वस्तु यथा यदवस्थितं तथैव तस्य विशेषकः। अर्थस्य

तत्तदात्मकस्य योगित्वं घटनं तस्मादन्येषां पुनर्धर्माणां गुणीभूतत्वात्। तव भवत एतदुक्तं केवलिनां श्रुतकेवलिनां च अपिशब्दात्तच्छिष्य प्रशिष्याणां च नान्येषां तथाभूतस्य वस्तुभावात्।।२०७।।

परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदों का जो निरपेक्ष समुदाय है वे वाक्य हैं। उन वाक्यों में जो अनेकान्त को बताता है, वह अनेकान्तद्योती है। स्यात् शब्द अव्यय है। जो अभिधेय है जैसे 'घड़ा है' इत्यादि वाक्य में अस्तित्वादी का समर्थन करने वाला है। अथवा गम्यं हेयादेयभेदभिन्न वस्तु अथवा हेय उपादेय रूप वस्तु जो जिस रूप में है उसका उसी प्रकार कथन करने वाला है। पदार्थ के उस उस रूप में होने से अन्य धर्मों के गौण होने से। आपके तथा केवली श्रुतकेवलियों के यहाँ और अपि शब्द से उनके शिष्य प्रशिष्यों के यहाँ भी। अन्य मतावलम्बियों के यहाँ नहीं, उस प्रकार के वस्तु के सद्भाव होने से।।२०७।।

भावार्थ :– स्यात् शब्द अव्यय है, जो वाक्य में प्रयुक्त होने पर वस्तु के अनेक धर्मों पर प्रकाश डालता है। वस्तु में अनेक धर्म हैं, जिनका एक साथ कथन नहीं हो सकता, प्रयोजन के अथवा विवक्षा के अनुसार किसी समय जब एक धर्म का कथन किया जाता है तब स्यात् शब्द यह द्योतित करता है कि उसमें अन्य धर्म भी हैं। स्यात् शब्द जो वस्तु जैसी हो, उसको उसी प्रकार से विवक्षानुसार बताता है। यह भगवान अर्हन्त के, केवलियों के, श्रुतकेवलियों तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों के यहाँ ही संभव है क्योंकि उनके द्वारा ही वस्तु को अनेकान्तात्मक माना गया है, अन्य एकान्तमतावलम्बियों के यहाँ संभव नहीं है, क्योंकि वे वस्तु के एक धर्म को ही स्वीकार करने वाले हठग्राही हैं।

पुनरपि तदेव समर्थयति –।।२०८।।

पुनः उसी का समर्थन करते हैं।।२०८।।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्कि वृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः।।१०४।।

स्याद्वादोऽर्थप्रकरणादिना घटादिशब्दार्थविशेषस्थापनहेतूनामनुकूलः। कुतः सर्वथैकान्तत्यागात्तेषामर्थ प्रकरणादीनां प्रतिकूलस्यैकान्तस्य त्यागात्। अथ कथं प्रकारः स्याद्वादः किंवृत्तचिद्विधिः किमो वृत्तं किं निष्पन्नं वृत्तं किंवृत्तं च तच्चिच्च किंवृत्तचित् तदेव विधिः प्रकारो यस्य कथञ्चित् कुतश्चिदित्यादि। सप्तभङ्गाश्च ते नयाश्च तानपेक्षत इति स्यादस्ति स्यान्नास्त्यादि। हेयादेययोर्विशेषकः गुणमुख्यकल्पनया।।२०६।।

स्याद्वाद अर्थ प्रकरण आदि के घटादि शब्दों के अर्थ विशेष की स्थापना के कारणों के अनुकूल है। क्यों? सर्वथा एकान्त का त्याग करने से उन अर्थप्रकरण आदि

के प्रतिकूल एकान्त का त्याग करने से स्याद्वाद किस प्रकार का है। किं के साथ चित् है विधि प्रकार जिसका अर्थात् कथंचित् कुतश्चित् इत्यादि। सप्तभङ्ग हैं जिनके उन सप्तभङ्गी तथा नयों की जो अपेक्षा रखता है स्यादस्ति, स्यान्नास्ति इत्यादि गौण और मुख्य की कल्पना से जो हेय और उपादेय का प्रतिपादक है ऐसा स्याद्वाद है।।२०६।।

भावार्थ :– जो वस्तु का कथंचित् रूप से कथन करने वाला है सर्वथा एकान्त का त्याग कर स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सप्तभङ्गों तथा द्रव्यार्थिक पयायार्थिक नयों की अपेक्षा वस्तु का यथार्थ कथन करने वाला है और हेय उपादेय का भेद बताने वाला है वही स्याद्वाद है।

स्याद्वादकेवलज्ञानयोः कथंञ्चित्सामान्यं दर्शयन्नाह –।।२१०।।

स्याद्वाद और केवलज्ञान में कथंचित् समानता दिखाते हुए कहते हैं।।२१०।।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।

भेदःसाक्षादसाक्षाच्चह्यवस्तत्वन्यतमंभवेत्।।१०५।।

सर्वाणि च तानि तत्त्वानि च जीवाजीवादीनि तानि प्रकाशत इति सर्वतत्त्व प्रकाशने के ते स्याद्वादश्च केवलज्ञानं च ते द्वे प्रमाणे। तयोर्मध्येऽन्यतमं परैः परिकल्पितमवस्तु भवेद्यतः कथं तयोर्भेदः साक्षात्प्रत्यक्षादसाक्षादप्रत्यक्षात्।।२११।।

जीवाजीवादि सभी तत्त्वों को प्रकाशित करने वाले हैं वे कौन हैं? स्याद्वाद और केवलज्ञान। वे दो प्रमाण हैं क्योंकि इन दोनों से भिन्न अन्य मत वालों द्वारा साक्षात् प्रत्यक्ष कल्पित ज्ञान अवस्तु है। इन दोनों में भिन्नता क्या है?असाक्षात् परोक्ष का भेद है। केवलज्ञान प्रत्यक्ष है और स्याद्वाद परोक्ष है। यहाँ स्याद्वाद से तात्पर्य श्रुतज्ञान से है।।२११।।

भावार्थ :– स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनों प्रमाण हैं और दोनों ही जीवादी तत्त्वों को प्रकाशित करने वाले हैं। दोनों में भेद परोक्ष और प्रत्यक्ष का है केवलज्ञान प्रत्यक्ष है और स्याद्वाद परोक्ष है। इन दोनों ज्ञान का जो विषय नहीं है वह अवस्तु है। केवलज्ञान सम्पूर्ण पर्यायों को प्रत्यक्ष जानता है। श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य की कुछ पर्यायों को परोक्ष रूप से।

प्रमाणं चर्चितमथ को नयो नामेत्याह–।।२१२।।

प्रमाण का वर्णन किया गया, अब नय क्या है? यह बताते हैं।।११२।।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।

स्याद्वादप्रविभक्तार्थ विशेष व्यञ्जको नयः।।१०६।।

समानो धर्मो गुणो यस्य स सधर्मा तेन सधर्मणैव सपक्षेणैव एवकाराद्विपक्ष– निराकरणं साध्यस्यानित्यत्वादेः शक्याभिप्रेताप्रसिद्धस्य। सधर्मणो भावः

साधर्म्यं तस्मात्साधर्म्यात्। स्याद्वादः श्रुतज्ञानं तेन प्रविभक्तो विषयीकृतोऽर्थस्तस्य विशेषो नित्यत्वादिस्तद्व्यञ्जकः प्रकटको द्योतको नयो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः। इत्यनेनान्वयव्यतिरेकपक्षधर्मा उक्ताः। अविरोधादित्यनेनान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुः प्रदर्शितः। किमुक्तं भवति– अन्तर्व्याप्तिमन्तरेण त्रिलक्षणो हेतुर्न गमक इति। अथ को नयप्रमाणयोर्विशेषोऽनेकान्त प्रतिपत्तिः प्रमाणम्, एकधर्म प्रतिपत्तिर्नयः।।२१३।।

सधर्म अथवा सपक्ष दृष्टान्त के द्वारा एवकार से विपक्ष का निराकरण किया गया है, साध्य की जो शक्य, अभिप्रेत और अप्रसिद्ध है। समान धर्म होने से श्रुतज्ञान के द्वारा ग्रहण किए गये पदार्थ के विशेष नित्यत्वादी को जो व्यक्त करे वह नय है युक्ति के द्वारा अर्थ को ग्रहण करने वाला है। इसके द्वारा अन्वय और व्यतिरेक रूप पक्षधर्म कहे गये। अविरोधात् शब्द से अन्यथानुपपत्ति रूप हेतु बताया है। क्या कहा गया है? अन्यथानुपपत्ति से तात्पर्य है कि व्याप्ति के बिना पक्षधर्म सपक्ष सत्त्व और विपक्षव्यावृतिरूप हेतु भी गमक नहीं है। नय और प्रमाण में क्या अन्तर है? वस्तु के अनेक धर्मों को जानने वाला प्रमाण और एक धर्म को जानने वाला नय है।।२१३।।

भावार्थ :– साध्य की समानधर्मता सपक्ष के साथ है। नय उस समान धर्म को व्यक्त करने के साथ श्रुतज्ञान के द्वारा ग्रहण किये गये विशेष धर्म को भी व्यक्त करता है अनेकान्तवादियों के यहाँ इसमें कोई विरोध नहीं है। कथंचित् प्रकार से कथन किये जाने से वैधर्म्य का भी ग्रहण हो जाता है।

तद्विषयस्य द्रव्यस्य स्वरूप प्रतिपादनार्थमाह –।।२१४।।

उन प्रमाण और नयों के विषय रूप द्रव्य के स्वरूप को बताने के लिए कहते हैं।।२१४।।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राट् भाव सम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।१०७।।

नया नैगमादयः सप्त उपनयास्तद्भेदोपभेदार्थ पर्यायास्त एवैकान्ताः प्रधानधर्मास्तद्ग्राह्यत्वात्तद्व्यपदेशः। त्रयः काला विषयो येषां ते तथाभूतास्तेषां समुच्चय एकस्मिन्नवस्थानम्। अविभ्राट अपृथक् भावसम्बन्धः सत्तासम्बन्धो यस्य स तथाभूतस्तद्द्रव्यमेकमभेदापेक्षया भेदापेक्षया पुनरनेकप्रकारम्।।२१५।।

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत से सात नय हैं। उपनय, नय के ही उपभेद हैं। पदार्थ के पर्याय ही एकान्त रूप से प्रधान धर्म हैं जिनके, उनको ग्रहण करने के कारण उन्हीं को उपनय कहा गया है तीनों काल जिनके विषय हैं उनका समूह अपृथक् स्वभाव सम्बन्ध वाला अर्थात् सत्ता सम्बन्ध से अभेद

की अपेक्षा वह द्रव्य एक है और भेद की अपेक्षा पर्याय की अपेक्षा अनेक हैं।।२१५।।
भावार्थ :– त्रिकालवर्ती नय और उपनयों का जो विषय है ऐसे पर्यायों का समूह ही द्रव्य है। वस्तु के अनन्त धर्मों में से एक एक धर्म का पर्याय का विवक्षा वश एकान्त रूप तथा उपनय ग्रहण करते हैं। यहाँ विवक्षावश ही अन्य धर्मों की उपेक्षा रहती है उनका निषेध नहीं किया जाता। उन अनन्तपर्यायों का समूह ही द्रव्य है। द्रव्य सत्ता सामान्य की अपेक्षा एक है और पर्यायविशेष की अपेक्षा अनेक प्रकार का है।

तदर्थं चोद्यपरिहारायाह–।।२१६।।

उक्त विषय में परमतावलम्बियों के दोष दर्शन का परिहार करने के लिए कहते हैं।।२१६।।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्।।१०८।।

नित्यानित्यास्तित्वादीनां मिथ्याधर्माणां योऽयं समूहः समुदायः स मिथ्याऽसत्यरूप इति चेदेवं भवतोऽभिप्रायः। मिथ्येत्येकान्तः संग्रहस्तस्य भावो मिथ्यैकान्तता सा नोऽस्माकं नास्ति न विद्यते। कुतो यतो निरपेक्षा नया मिथ्या परस्परमपेक्षा घटना तस्या निर्गताः पृथग्भूता धर्मा व्यलीकाः। सापेक्षाः परस्परसम्बद्धास्ते नया वस्तु परमार्थतत्त्वं यतोऽर्थकृत् क्रमाक्रमाभ्यामर्थकारित्वादतो न चोद्यस्यावतारः।।२१७।।

यदि अन्यमत वालों का यह अभिप्राय हो कि नित्य, अनित्य, अस्तित्व, नास्तित्व आदि मिथ्या धर्मों का जो समूह है वह मिथ्या ही है। मिथ्या एकान्तों के संग्रह का भाव मिथ्यैकान्तता है, वह हमारे यहाँ नहीं है, कैसे? परस्पर अपेक्षा रहित नय मिथ्या हैं। जो एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले नय हैं वे सत्य हैं अर्थ क्रियाकारी हैं क्रम से और युगपत् अर्थक्रियाकारी होने से। अतः कोई दोष नहीं है।।२१७।।
भावार्थ :– यदि पर मतावलम्बी यह कहें कि एकान्तवाद को आप मिथ्या कहते हैं और वही एकान्त मिथ्या का समूह द्रव्य है तो वह मिथ्या ही होता तो आचार्य कहते हैं कि हमारे यहाँ नय एक, एक धर्म को विवक्षानुसार ग्रहण करने पर भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि अन्य धर्म की अपेक्षा के बिना एकधर्म का ग्रहण मिथ्या है, अन्य धर्म की अपेक्षा रखते हुए एक धर्म को ग्रहण करने वाला नय मिथ्या नहीं है, अर्थ क्रिया होने से।

पुनरपि तमर्थं समर्थयन्नाह – ।।२१८।।

पुनः उसी अर्थ का समर्थन करते हुए कहते हैं ।।२१८।।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथाऽन्यथा च सोऽवश्यमविशेष्यत्व मन्यथा।।१०६।।

वाक्येन, अस्ति घटो नास्ति वेति विधि प्रतिषेधरूपेणार्थो नियम्यते नियन्त्र्यते विशेषविषयं नीयते तस्मात्सोऽर्थस्तथा च तदतदात्मक इत्यभ्युपगन्तव्यः। यदि पुनरन्यथाऽन्येन प्रकारेणैकान्तरूपेणाभ्युपगम्यते तदानीमविशेष्यमवस्तुत्वं स्यादेक– धर्मक्रान्तत्वेन वस्त्वस्ति यतः।।२१६।।

विधि और निषेधरूप वाक्य से पदार्थ को नियन्त्रित किया जाता है इसलिए उस पदार्थ को उस रूप तथा अन्य रूप अवश्य मानना चाहिए। यदि ऐसा न मान कर एकान्त रूप मे पदार्थ को एक धर्मवाला ही माना जाय तो उस समय वह अवस्तु हो जायेगा, क्योंकि वह एक ही धर्म से युक्त माना गया है।।२१६।।

भावार्थ :– पदार्थ के स्वरूप का विवेचन विधिरूप स्वद्रव्य, क्षेत्र,काल,भाव की अपेक्षा नास्तित्व रूप किया जाता है। अतः एक ही वस्तु अस्तिरूप तथा नास्तिरूप भी है। यदि ऐसा न मानकर सर्वथा एक रूप माना जाय तो वह अवस्तु हो जायेगा।

वाक् द्विविषया न भवतीत्यस्य निराकरणायाह – ।।२२०।।

वचन दो विषय वाला नहीं होता अर्थात् वचन के द्वारा वस्तु को तद्रूप और अतद्रूप दोनों रूप नहीं कहा जा सकता, इसका निराकरण करने के लिए कहते हैं।।२२०।।

तदतद्वस्तु वागेषा तदेवेत्यनुशासति।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना।।११०।।

एषा वागेतद्वचनं सर्वाभ्युपगतं तच्चातच्च तदतत् अस्तित्वनास्तित्वात्मकं वस्तुतत्त्वं तदेव तादृग्भूतमेव नैकान्तात्मकमेवेत्येवमनुशासति कथयति प्रतिपादयति यदि न सत्या न सद्भूता स्याद्भवेत्। एवं सति मृषा वाक्यानि असत्यरूपाणि वाक्यानि स्युः। तथा सति तत्त्वार्थस्य परमार्थस्य प्रमाणहेतु फलप्रतिपादकस्य येयं देशना कथनं परप्रतिपादनं कथं स्यात् किन्तु न भवेदेव। तथा च विशीर्णं प्रमाणादिलक्षणं वर्त्म। तस्माद्यत्सत्तदनेकान्तात्मकं हेतुज्ञानं प्रमाणवदिति वचनस्य प्रमाण्यमेषितव्यम्।।२२१।।

यह सभी के द्वारा स्वीकार किया गया है कि वस्तुतत्त्व तत् अतत् रूप अर्थात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है। यदि यह कहा जाय कि वस्तुतत्त्व तत् रूप ही है, अनेकान्तात्मक नहीं है तो वह कथन सत्य नहीं होगा। ऐसा होने पर वचन झूठे हो जायेंगे। ऐसा होने पर वास्तविक प्रमाण, हेतु, फल, आदि का प्रतिपादन करने वाले

का उपदेश पर का प्रतिपादन कैसे होगा? अर्थात् नहीं होगा। ऐसा होने पर प्रमाणादि के लक्षण का मार्ग ही समाप्त हो जायेगा। अतः जो वस्तु है, वह अनेकान्तात्मक है, अनुमान प्रमाण के समान इस वचन के प्रमाण मानना चाहिए।।२२१।।

भावार्थ :— वस्तु अनेकान्तात्मक है अतः वाक्य विधि रूप हो या प्रतिषेध रूप दोनों ही विधि और प्रतिषेध दोनों रूप वस्तु का प्रतिपादन करते हैं। विधिवाक्य के द्वारा विधि मुख्य रूप से और प्रतिषेध का गौणरूप से कथन किया जाता है तथा प्रतिषेध वाक्य के द्वारा प्रतिषेध का मुख्यरूप से और विधि का गौण रूप से कथन किया जाता है। जो वाक्य केवल विधि अथवा प्रतिषेध का ही कथन करता है, वह सत्य नहीं है और उस मृषा वाक्य के द्वारा वस्तुस्वरूप का यथार्थ कथन नहीं किया जा सकता।

पुनरपि वाचोलक्षणमाह – ।।२२२।।

पुनः वचन का लक्षण कहते हैं।।२२२।।

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थ प्रतिषेधनिरङ्कुशः।
आह च स्वार्थसामान्यं तादृग्वाच्यं खपुष्पवत्।।१११।।

वाचः स्वभाव आत्मीयं रूपमन्येषां वाच्यत्वेनाभिप्रेततराणां वाग्वचनं तस्या अर्थस्तस्य प्रतिषेधो निराकरणं तस्मिन् निरङ्कुशः पटादीनां निराकरणं करोति स्वार्थं च प्रतिपादयति अतोऽनेकान्तो, यदि पुनः सर्वथा स्वस्य ज्ञानार्थस्य बाह्यार्थस्य सामान्यं परापररूपमपोहं चार्वाक आह आचष्ट इत्यभ्युपगमः स्यात्। तादृगवाच्यं विशेषरहितं सामान्यं खपुष्पवत् गगनकुसुमसमानमतो न किञ्चित्स्यात्।।२२३।।

वचन का स्वभाव अपने अर्थ का कथन तथा अन्य वचन के अर्थ का निराकरण करने में निरङ्कुशः होता है, अन्य अर्थ का निराकरण करता है तथा अपने घटादि का प्रतिपादन करता है। अतः अनेकान्त स्वभाव है। यदि सर्वथा अपने ज्ञान के विषय बाह्य पदार्थ के सामान्य को अपोहरूप को ही बताने वाला माना जाय तो इस प्रकार के वचन विशेष रहित सामान्य आकाशकुसुम समान अवस्तु हैं, अतः कुछ भी नहीं होगा।।२२३।।

भावार्थ :— बौद्ध कहते हैं कि कोई भी वाक्य हो वह अन्यापोहरूप प्रतिषेध का ही कथन करता है, विधि का नहीं। आचार्य इस कथन का निराकरण करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार के वाक्य का वाच्य आकाश कुसुम की तरह अवस्तु ही होगा। क्योंकि हमें कहीं भी विशेष रहित सामान्य और सामान्य रहित विशेष उपलब्ध नहीं होता। वचन का स्वभाव अन्य वचन के अर्थ का प्रतिषेध करना तथा अपने अर्थ का प्रतिपादन करना होता है।

ननु सामान्यमेव वाचोऽर्थो यदुत विशेषे वर्तते सामान्येऽर्थक्रियाभावादिति संसर्गबोधमतं तन्निराकरणार्थमाह – ।।२२४।।

बौद्ध कहते हैं कि सामान्य को कहने वाला वचन ही विशेष को भी कहता है, सामान्य में अर्थक्रिया का अभाव होने से, इस प्रकार सामान्य का कथन करने से ही विशेष का बोध हो जाता है, इस कथन का निराकरण करने के लिए आचार्य कहते हैं।।२२४।।

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेत विशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः।।११२।।

सामान्य सम्बन्धिनी वाक् विशेषे वर्तते विशेषमाचष्टे तत्त्वार्थक्रियाभावात् चेदेवं भवतोऽभिप्रायः तर्हि शब्दस्यार्थोऽभिधेयः कुतः तादृग्भूता वाक् मृषा अलीका सा। यस्मान्न ह्यन्यस्य वाचकोऽन्यमाह घटशब्दः पटार्थस्य न कदाचिदपि प्रतिपादकः नाप्यपोहोऽस्यार्थोऽपोहो हि परव्यावृत्तिः सा च तुच्छा ततो भेदक्षणिकैकान्तपक्षे न वाच्यं नापि वाचको नानुमानं नाप्यागमः सर्वाभावोऽतः स्यात्कारः स्याद्वादः सत्यलाञ्छनः सत्यभूतोऽभिप्रेतविशेषस्याप्तेः निमित्त मिष्टार्थप्राप्तिहेतोराश्रयणीयः सर्वदोषकलङ्कातीतत्वात्।।२२५।।

सामान्य सम्बन्धी वचन ही विशेष का कथन करता है सामान्य में अर्थक्रिया का अभाव होने से यदि ऐसा आपका अभिप्राय है तो शब्द का अभिधेय अर्थ कैसे होगा? इस प्रकार का वचन तो मिथ्या ही है अन्य अर्थ का वाचक अन्य अर्थ को नहीं कहता है घट शब्द कपड़े को अर्थ को बताने वाला कभी नहीं हो सकता। सामान्य कथन करने वाले वचन का अर्थ अपोह भी नहीं हो सकता, अपोह दूसरे का निराकरण है वह तुच्छ है अतः क्षणिकैकान्त पक्ष में न कोई वाच्य है, न वाचक, न अनुमान, न आगम सभी का अभाव है। स्यात् शब्द से युक्त स्याद्वाद ही अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए सत्यभूत है अतः इष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए उसी का आश्रय लेना चाहिए। सभी दोषों से रहित होने के कारण।।२२५।।

भावार्थ :– बौद्धों की मान्यता है शब्द सामान्य का कथन करते हैं किन्तु अवस्तु है अतः सामान्य को कहने वाले शब्द ही अन्यापोह विशेष के बाचक हैं। आचार्य कहते हैं कि सामान्य कथन करने वाले वचन का अर्थ विशेष नहीं हो सकता। अतः वह मिथ्या ही होगा। अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति का एक मात्र उपाय स्याद्वाद ही है। क्योंकि

स्वरूपादि चतुष्टय से अस्ति रूप वस्तुही पररूपादि चतुष्टयसे नास्ति भी है। जिस रूपसे अस्तित्व का कथन किया जाता है, उसी रूप से नास्तित्व का कथन नहीं किया जा सकता और जिस रूप से नास्तित्व का कथन किया जाता है, उसी रूप से अस्तित्व का कथन नहीं किया जा सकता। वस्तु में अस्ति नास्ति दोनों ही धर्म हैं जिनका कथन स्याद्वाद के द्वारा ही संभव है।

तस्यैव स्वरूपमाह – ।।२२६।।

उसी का स्वरूप कहते हैं।।२२६।।

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधियत्।
तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः।।११३।।

विधेयमस्तीत्यादि प्रतिषेध्यस्य नास्तित्वादेरविरोधेनाविरुद्धं यत्तदीप्सितार्थस्याभिप्रेतकार्यस्याङ्गं कारणम्। तथैवादेयं वस्तु हेयात्त्याजत्यादविरूद्धम्। इत्येनेन प्रकारेण स्याद्वादस्य संस्थितिः सर्वप्रमाणैरविरूद्धा सिद्धिरिति प्रमाणहेतु– दृष्टान्ताभासाः परवादिपरिकल्पितप्रमाणहेतुदृष्टान्ता वेदितव्याः। कुतस्तल्लक्षणाभावात्। वस्त्वपि तैर्यत्परिकल्पितं तदपि नास्ति लक्षणाभावात्। तस्माद्यदनेकान्तात्मकं तत्सत्यं लक्षणयोगादिति।।२२७।।

जो विधेय अस्तित्वादि प्रतिषेध्य नास्तित्वादि का विरोध नहीं करता वही अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन कर सकता है। उसी प्रकार आदेय वस्तु त्याज्य का विरोधी नहीं है इस प्रकार स्याद्वाद की स्थिति सभी प्रमाणों से बिना विरोध के सिद्ध होती है। अतः प्रमाणाभास हेत्वाभास और दृष्टान्ताभास परवादियों के द्वारा कल्पित प्रमाण हेतु और दृष्टान्त को ही जानना चाहिए। क्यों? प्रमाण हेतु और दृष्टान्त का लक्षण उनमें नहीं होने से। वस्तु भी जो उनके द्वारा मानी गयी है, वह नहीं है, उसके लक्षण का अभाव होने से। अतः जो वस्तु अनेकान्तात्मक है, वही सत्य है, वस्तु का लक्षण उसमें होने से।।२२७।।

भावार्थ :– वही विधि वाक्य अभीष्ट सिद्धि में कारण हो सकता है जो प्रतिषेध्य का विरोधी नहीं है। उसी प्रकार आदेय के साथ हेय का जो सर्वथा विरोधी नहीं है, वही आदेय हितकर है क्योंकि विधि के साथ प्रतिषेध और आदेय के साथ हेय का अविनाभाव सम्बन्ध है। प्रतिषेध्य के बिना विधेय और विधेय के बिना प्रतिषेध्य नहीं होते, इसी प्रकार आदेय के बिना हेय और हेय के बिना आदेय भी नहीं होते।

शास्त्रार्थोपसंहारकारिकामाह– ।।२२८।।

शास्त्रार्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं ।।२२८।।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्यापेदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये।।११४।।

इत्यनेन प्रकारेणेयं प्रत्यक्षतश्च योऽयमुपदेशस्तस्यार्थं स्वरूपं तस्य विशेषो याथात्म्यं तस्य प्रतिपत्तरवगमस्तस्यै सम्यगुपदेशोऽयं मिथ्येति सर्वज्ञेन ज्ञायते यस्मात्। कृतकृत्यो निर्व्यूढतत्त्वप्रतिज्ञ आचार्यः श्रीमत्समन्तभद्रकेसरी प्रमाणनयतीक्ष्णनखरदंष्ट्राविदारितप्रवादिकुनयमदविह्वलकुम्भिकुम्भस्थलपाटन पटुरिदमाह।।२२९।।

इस प्रकार से यह आप्तमीमांसा की रचना की है प्रत्यक्ष रूप से जो उपदेश है, उसके स्वरूप और विशेष के ज्ञान के लिए, क्योंकि यह उपदेश सम्यक् है या मिथ्या यह सर्वज्ञ के द्वारा जाना जाता है। कृतकृत्य निःस्वार्थ तत्त्वप्रतिज्ञ आचार्य श्रीमतसमन्तभद्र सिंह जो प्रमाण और नय रूपी तीक्ष्ण नख और दांतो से कुनय के मद से भरे हुए परवादी एकान्तवादी हाथियों के गंडस्थल को विदीर्ण करने मे पटु हैं, कहते हैं।।२२९।।
भावार्थ :– जिस प्रकार सिंह मद से भरे हुए हाथियों के गंडस्थल को अपने तीक्ष्ण नख और दांतों से विदीर्ण कर देता है उसी प्रकार आचार्य समन्तभद्र भी अपने प्रमाण और नयरूपी नखों और दांतों से एकान्तरूपवादियों की हठग्राहिता को क्षणभर में नष्ट कर देने में पूर्ण कुशल हैं। उन्होंने समस्त एकान्तवादियों के एकान्तवाद का निराकरण करते हुए मुमुक्षु जनों को समीचीन और असमीचीन उपदेश विशेष का ज्ञान कराने के लिए यह आप्तमीमांसा नामक ग्रन्थ की रचना की है और अर्हन्त भगवान को ही सच्चा आप्त बताया है। वे सर्वज्ञ हितोपदेशी और वीतरागी भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं-

जयति जगति क्लेशावेशप्रपञ्चहिमांशुमान्
विहतविषमैकान्तध्वान्तप्रमाणनयांशुमान्।
यतिपतिरजो यस्याधृष्टान्मताम्बुनिधेर्लवान्
स्वमतयस्तीर्थ्या नाना परे समुपासते।।११५।।

यस्य भट्टारकस्य मताम्बुधेरागमोदधेर्लवान् कणान् अधृष्टानखरीकृतान् परे नाना तीर्थ्याः प्रवादिनः सुगतादयः स्वमते मतिर्येषां ते स्वमतमतयः कृतात्मबुद्धयः समुपासते सेवन्ते सोऽजो जातिजरामरणरहितो यतिपतिः प्रधानस्वामी जयति त्रैलोक्यस्वामित्वं करोति बाह्याभ्यन्तरशत्रून् निहत्य जयति लोके। पुनरपि किंविशिष्टः क्लेशस्य दुःखस्यावेशः कदर्थना तस्य

प्रपन्चो विस्तारः स एव हिमं प्रालेयः तस्यांशुमानादित्यः। एकान्त एव ध्वान्तं तमः विषमं च तदेकान्तध्वान्तं च विषमैकान्तध्वान्तं प्रमाणं च नयाश्च प्रमाणनया उक्तलक्षणा विहतं निराकृतं विषमैकान्तध्वान्तं यैस्ते तथाभूतास्ते च ते प्रमाणनयाश्च त एवांशवः किरणास्ते विद्यन्ते यस्य स तथाभूत इति यतिपतेर्विशेषणम्।।२३०।।

जिन भट्टारक के मतरूपी सागर के कणों को जो परवादियों के मत का खण्डन करने के लिए तीक्ष्ण नख के समान है, अपने मत को श्रेष्ठ समझने वाले परवादी सुगतादि अपना समझकर उपासना करते हैं। वह जन्म, जरा और मरण रहित यतिपति तीनों लोकों के स्वामी बाह्य और अभ्यन्तर शत्रुओं को नष्ट कर संसार में जयवन्त हैं। और कैसे हैं वे भयानक दुःखों के प्रपञ्चरूपी हिम को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं। एकान्त ही विषय है अन्धकार जिन में ऐसे एकान्तवादियों के प्रमाण और नयों को जो अपने प्रमाण और नयरूपी किरणों से नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं, यतिपति का विशेषण है।।२३०।।

भावार्थ :– अर्हन्त भगवान के द्वारा वस्तु को अनेक धर्मवाला बताया गया है, उन्हीं अनेक धर्मों में से एक एक धर्म को ग्रहण करके अन्य मतावलम्बी सुगतादि उन्हें अपना मत मानते हैं और उन्हीं पर अड़े रहते हैं। वह यतिपति अर्हन्त भगवान जो जन्म मरण और जरा रूपी रोग से रहित हैं जो संसार के सभी दुःखों को दूर करने में उसी प्रकार समर्थ हैं जैसे सूर्य वर्फ के ढेर को पिघला देने में समर्थ हैं तथा जो परवादियों के एकान्त से युक्त प्रमाण और नयों को अपने अकाट्य प्रमाण और नयों से खण्डन करते में उसी प्रकार समर्थ हैं जैसे सूर्य अपनी किरणों से विषम अन्धकार को छिन्न भिन्न करने में समर्थ है। ऐसे यतिपति अर्हन्त भगवान संसार में जयवन्त हैं।

श्रीमत्समन्तभद्राचार्यस्य त्रिभुवनलब्धजयपताकस्य प्रमाणनयचक्षुषः स्याद्वादशरीरस्य देवागमाख्यायाः कृतेः संक्षेपभूतं विवरणं कृतं श्रुतविस्मरण शीलेन वसुनन्दिना जडमतिनाऽऽत्मोपकाराय।।२३१।।

जिनकी जयपताका तीनों लोकों में फैल रही हैं प्रमाण और नय ही जिनके नेत्र हैं, स्याद्वाद ही जिनका शरीर है। देवागम नामक कृति का संक्षिप्त व्याख्या की है श्रुत को विस्मरण करने का जिनका स्वभाव है जो जड़ बुद्धि-मूर्ख हैं ऐसे वसुनन्दी ने अपना उपकार करने के लिए।।२३१।।

समन्तभद्रदेवाय परमार्थविकल्प(ल्पि) ने।
समन्तभद्रदेवाय नमोस्तु परमात्मने।।१।।

परमार्थ का विवेक रखने वाले समन्तभद्राचार्य को तथा सबका कल्याण करने वाले परमात्म देव को नमस्कार है।।१।।

सुखाय जायते लोके वसुनन्दिसमागमः।।
तस्मात् निसेव्यतां भव्यैर्वसुनन्दिसमागमः।।२।।

संसार में वसुनन्दि का समागम सुख के लिए होता है इसलिए भव्यजनों के द्वारा वसुनन्दि के समागम की उपासना करनी चाहिए।।२।।

इति श्री वसुनन्द्याचार्यकृता देवागमवृत्तिः समाप्ता।

इस प्रकार वसुनन्दि आचार्य द्वारा लिखी गयी देवागम की व्याख्या समाप्त हुई।

○ ○ ○

परिशिष्ट – 1

आप्तमीमांसा / देवागमस्तोत्रकी

पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा रचित वचनिकाका सार

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

श्री समन्तभद्राचार्य विरचिता

आप्तमीमांसा / देवागमस्तोत्रकी

पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा रचित वचनिकाका सार

दोहा

वृषभ आदि चउवीस जिन, वंदौं सीस नवाय।
विघनहरन मंगलकरन, मन वांछित फलदाय।।१।।
सकलतत्त्वपरकास कर, स्याद्वादमय सार।
शब्द ब्रता सांचे नमौं, जैनवचन हितकार।।२।।
वृषभसेन को आदि ले, अंतिम गौतम स्वामि।
चउदहसै त्रेपन नमौं, गणधर मुनिवर नामि।।३।।
पंचमकाल सु आदि मैं, केवल ज्ञानि तीन।
श्रुतकेवलिहू पंच जे, नमौं कर्ममल छीन।।४।।
तत्त्वारथशासन कियो उमास्वामि मुनि ईश।
सदा तासके चरन युग, नमौं धारि करि सीस।।५।।

सवैया ३१

स्वामि जो समंतभद्र तत्त्वरथ शासन की
महाभाष्य रची ताकी आदि मैं विचार कैं।
परम आप्त मीमांसा देवागम नाम
स्तुति स्याद्वाद साधन मैं भाषी विस्तार कैं।
अष्टशती वृत्ति ताकी कीनी अकलंकदेव
ताकूँ विद्यानन्द सूरि भले मन धारिकैं।
अलंकार रूप वरनी हजार आठ
ऐसे तीन मुनिराय पाय नमौं मद छारिकैं।।६।।

दोहा

आगम की उत्पत्ति को, कारन आप्तविचार।
ताही तैं है ज्ञानवर, नमतें योग्य निहार।।७।।
कियो नमन अब करत हूँ, देवागम थुति देखि।
देशवचनिका तास की, टीका आशय पेखि।।८।।

इस प्रकार मङ्गल के लिए इष्ट को नमस्कार किया। अब शास्त्र की उत्पत्ति तथा शास्त्र का ज्ञान आप्त से होता है। शास्त्र के मूलकर्त्ता परम भट्टारक श्री ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर चतुर्थकाल में हुए। उनकी दिव्यध्वनि ग्रहण कर गणधरों ने द्वादशाङ्ग श्रुत रूप रचना की। उनकी परिपाटी के अनुसार (जो आचार्य) इस पंचम काल में हुए, उन्होंने शास्त्रों की प्रवृत्ति की। इस प्रकार शास्त्र की उत्पत्ति तथा शास्त्र के ज्ञान के कारण आप्त ही हैं। वे शास्त्र आदि में नमस्कार योग्य हैं इस प्रकार जानकर उन्हें नमस्कार कर देवागम स्तोत्र की देशभाषामय वचनिका लिखता हूँ। उसका सम्बन्ध इस प्रकार है – पहले तो उमास्वामी मुनि ने दशाध्यायरूप तत्त्वार्थसूत्र रचा, उसका गंधहस्ति ग्रन्थ महाभाष्य नामक श्री स्वामी समन्तभद्र ने रचा। उसके प्रारम्भ में आप्त की परीक्षा रूप इस देवागम नामक स्तवन किया। अत: इसका 'देवागम' नाम तो आदि अक्षर के सम्बन्ध से है। इसका सार्थक नाम आप्तमीमांसा है। मीमांसा परीक्षा को कहते हैं। इस स्तवन की आचार्य अकलंकदेव ने वृत्ति रची, वह आठ सौ श्लोक प्रमाण है, अतः उसका नाम अष्टशती कहते हैं। उस अष्टशती का अर्थ लेकर श्री विद्यानन्दि नामक आचार्य ने अष्टसहस्री नामक इसी अलंकार रूप टीका रची है। इस प्रकार यह प्रकरण न्यायपद्धति का है। इसका अर्थ व्याकरण तथा न्याय शास्त्र पढ़ने वाले को भासता है। ऐसे पढ़ने वाले तथा इनकी गुरूआम्नाय विरल हो गई है, अतः अर्थ के समझने वाले विरले हैं। मुझे कुछ इनका बुद्धि के अनुसार बोध हुआ, तब विचारा कि सम्यग्दर्शन का प्रधान कारण आप्त, आगम तथा पदार्थ का जानना है और आप्त की परीक्षा इन ग्रन्थों में है। अतः आप्त का स्वरूप इन ग्रन्थों से प्रकट हो तो बहुत बड़ा उपकार हो। ऐसा होने पर अल्पबुद्धि भी आप्त के स्वरूप का वर्णन है। आगम को समझने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। ऐसा विचार कर इस स्तवन की देशभाषामय वचनिका अष्टसहस्री टीका से संक्षिप्त अर्थ ग्रहण कर कुछ लिखता हूँ। भव्य जीव इसे जानें, पढ़ें, धारण करें। इससे आप्त का यथार्थ स्वरूप जान श्रद्धान दृढ़ करें। यदि अर्थ में मैं कुछ हीनाधिक लिखूँ तो विशेष बुद्धिमान मूलश्लोक तथा टीका देखकर शुद्ध बाँचें। मेरी अल्पबुद्धि जानकर हास्य न करें। सत्पुरूषों का स्वभाव गुणग्रहण करने का होता है। अतः दोष देखकर क्षमा ही करें, ऐसी मेरी परोक्ष प्रार्थना है। इस देवागम स्तोत्र की पीठिका इस प्रकार है –

इसमें दश परिच्छेद हैं। इनमें आदि के प्रथम परिच्छेद में तेईस कारिका हैं। उनमें आदि में देवागम इत्यादि तीन श्लोकों में भगवान इन कारणों से तो स्तुतियोग्य नहीं है, ऐसा कहा है। पुनः दोषावरण इत्यादि दो श्लोकों में भगवान् सर्वज्ञ, वीतराग हैं, ऐसा अनुमान किया है। पुनः सत्वमेवासि इत्यादि एक श्लोक में ऐसे सर्वज्ञ, वीतराग तुम अरहंत ही हो, ऐसा कहा है। पुनः त्वन्मता इत्यादि दो श्लोकों में अन्य आप्त नहीं हैं, ऐसा कहा है इस प्रकार आठश्लोकों में तो पीठबंध है। पुनः आगे भावाभाव पक्ष के एकान्त का निषेध पाँच श्लोकों में हैं। उसमें भाव १, अभाव २, भावाभाव ३, अवक्तव्य ४, भावावक्तव्य ५, अभावावक्तव्य ६, भावाभावावक्तव्य ७, इस प्रकार विधि निषेध के सात भंगो की अपेक्षा दोष दिखलाया है। पुनः आगे नव श्लोकों में भावाभाव के सात पक्षों का अनेकान्त रूप स्थापन है। पुनः एक श्लोक में अगले परिच्छेदों में इन पक्षों के सप्तभङ्ग करने की सूचनिका है। इस प्रकार प्रथम परिच्छेद समाप्त किया है।।१।।

आगे द्वितीय परिच्छेद में एकत्वानेकत्व पक्ष का तेरह श्लोकों में वर्णन है। पुनः चार श्लोकों में अद्वैत पक्ष के एकान्त का निषेध है। पुनः चार श्लोकों में पृथकत्व एकान्त पक्ष का निषेध है। पुनः एक श्लोक में दोनों पक्ष और अवक्तव्य पक्ष का निषेध है। पुनः चार श्लोकों में इन पक्षों की अनेकान्त की अपेक्षा स्थापन है। इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद समाप्त किया है।।२।।

आगे तृतीय परिच्छेद नित्यानित्य पक्ष का वर्णन है। इसमें चौबीस श्लोक हैं। इनमें से चार श्लोक में तो नित्यत्व एकान्त पक्ष का निषेध है। पुनः एक श्लोक में दोनों पक्ष और अवक्तव्य का निषेध है। पुनः पाँच श्लोकों में अनेकान्त की अपेक्षा इन पक्षों का स्थापन है। इस प्रकार तृतीय परिच्छेद समाप्त किया है।।३।।

आगे चतुर्थ परिच्छेद भेदाभेद पक्ष का है। इसमें बारह श्लोक हैं। बारह श्लोकों में से छह श्लोकों में तो भेद एकान्त पक्ष का निषेध है। पुनः तीनों श्लोकों में अभेद पक्ष का निषेध है। पुनः एक श्लोक में दोनों पक्ष और अवक्तव्य पक्ष का निषेध है। पुनः दो श्लोकों में अनेकान्त स्थापन है। इस प्रकार चतुर्थ परिच्छेद समाप्त किया है।।४।।

आगे अपेक्षा–अनपेक्षा के पक्ष का पंचम परिच्छेद है। इसमें तीन श्लोकों में एकान्त का निषेध तथा अनेकान्त का स्थापन है। इस प्रकार पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त किया है।।५।।

आगे हेतु आगम के पक्ष का छठा परिच्छेद है। इसमें तीन श्लोक हैं।

उनमें एकान्त का निषेध और अनेकान्त का स्थापन है। इस प्रकार छठा परिच्छेद समाप्त किया है।।६।।

आगे अन्तरङ्ग बहिरंङ्ग तत्त्व के पक्ष का सातवॉ परच्छिेद है। उसमें नव श्लोक हैं। वहॉ चार श्लोकों में तो एकान्त का निषेध है और पाँच श्लोकों में अनेकान्त का स्थापन है। इस प्रकार सातवाँ परच्छिेद समाप्त किया है।।७।।

आगे दैव पौरूष के पक्ष का आठवॉ परच्छिेद है। उसमें चार श्लोकों में एकान्त का निषेध और अनेकान्त का स्थापन है। इस प्रकार आठवाँ परिच्छेद समाप्त किया है।।८।।

आगे पुण्य–पाप के बन्ध की रीति का नवमॉ परिच्छेद है। उसमें चार श्लोकों में एकान्त का निषेध और अनेकान्त का स्थापन है। इस प्रकार नवमां परिच्छेद समाप्त हुआ।

आगे दसवें परिच्छेद में उन्नीस श्लोक हैं। उनमें तीन श्लोकों में तो अज्ञान से बन्ध और अल्पज्ञान से मोक्ष इस प्रकार एकान्त का निषेध कर बन्ध और मोक्ष जैसे हो, उस प्रकार से अनेकान्त से स्थापन किया है। पुनः दो श्लोकों में संसार की उत्पत्ति का क्रम कहा है। पुनः पीछे दो श्लोकों में प्रमाण का स्वरूप, संख्या, विषय, फल, इन चारों का वर्णन कर दो श्लोकों में स्यात्पद का स्वरूप कहा है। बाद में एक श्लोक में स्याद्वाद और केवलज्ञान को कथंचित् समान दिखाया है। अनन्तर नय का हेतु रूप स्वरूप एक श्लोक में कहकर प्रमाण का विषय, वस्तु का स्वरूप एक श्लोक में कहा। अनन्तर एक श्लोक में इसी को दृढ किया। आगे प्रमाण नय के वाक्य का स्वरूप चार श्लोकों में कहा। पीछे एक श्लोक में स्याद्वाद की स्थिति कही। पीछे एक श्लोक में ग्रन्थ कहने का प्रयोजन कहकर उन्नीस श्लोक रूप परिच्छेद समाप्त किया है। समस्त श्लोक एक सौ चौदह हुए। इस प्रकार दश परिच्छेद रूप पीठिका है।।१०।।

इति पीठिका

अष्टसहस्री नामक टीका के कर्त्ता श्री विद्यानन्दि नामक आचार्य ने कहा है – यह देवागम स्तोत्र शास्त्र के प्रारम्भ में रची स्तुति के गोचर आप्त के गुणों के अतिशय की परीक्षा स्वरूप है। अतः मोक्षशास्त्र या तत्त्वार्थ सूत्र के आदि में शास्त्र की उत्पत्ति तथा शास्त्र के ज्ञान का कारण होने से तथा मंङ्गल के लिए मुनि ने भगवान आप्त का स्तवन इस प्रकार किया –

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म भूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद् गुण लब्धये।।१।।

अर्थ – मोक्षमार्ग के नेता, कर्मरूप पर्वत के भेत्ता तथा समस्त तत्त्वों के ज्ञाता आप्त की मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ। इस प्रकार अतिशय रहित गुणों से स्तुति की। भगवान् आप्त ने मानों साक्षात् ही समन्तभद्र से कहा कि हे समन्तभद्र! मुनियों ने यह हमारा स्तवन निरतिशय गुणों से किया है, सो हमारे देवों का आगमन आदि विभूति पाई जाती है, इस प्रकार के अतिशय की अपेक्षा हम महान् हैं – स्तवन करने योग्य हैं। इस प्रकार अतिशय सहित गुणों की अपेक्षा हमारा स्तवन क्यों नहीं किया? ऐसा कहने पर भगवान से समन्तभद्राचार्य कहते हैं। कैसे हैं समन्तभद्राचार्य? मोक्षमार्ग का स्वरूप अपने हित को चाहने वाले, भव्य जीवों को सम्यक् और मिथ्या उपदेश का विशेष ज्ञान कराने के लिए आप्त की परीक्षा करते हैं। पुनः कैसे हैं? उनका मन श्रद्धा और गुणज्ञता इन दोनों से प्रयुक्त है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा अलंकार रूप वचन है। इस प्रकार भगवान आप्त के मानों साक्षात् पूछने पर समन्तभद्राचार्य कहते हैं –

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यंते नातस्त्वमसि नो महान्।।१।।

अर्थ – हे भगवान्! तुम्हारे पास देवों का आगमन आदि तथा आकाश में गमन आदि एवं छत्र चामर आदि विभूतियाँ पाई जाती हैं, इस कारण आप हमारे मुनियों के महान्–स्तुति करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि यह विभूति तो मायावी जो मस्करी आदि इन्द्रजाल वाले हैं, उनमें भी पायी जाती है। इस कारण जो आज्ञा प्रधानी हैं, वे देवों के आगमन आदि विभूति को अपने परमेष्ठी परमात्मा का चिन्ह भले ही न मानें, पर हम सरीखे परीक्षा प्रधानी तो ऐसे चिन्ह से परमेष्ठी को स्तुति करने योग्य नहीं मानते हैं; क्योंकि यह स्तव आगम के आश्रय से है। पुनः इस स्तव का हेतु देवों का आगमन आदि विभूतिसहितपना है सो यह हेतु भी आगम आश्रित है। प्रतिवादी के तो प्रमाणसिद्ध है नहीं। अतः प्रतिवादी साक्षात् देवागमादि देखे बिना कैसे माने? आगम प्रमाणवादी के भी मायावी आदि विपक्ष में रहने से व्यभिचारी हैं। साध्य को कैसे सिद्ध करे? पुनः आगम प्रमाणवादी कहता है – चूँकि सच्चे देवों का विभूतिसहित आना आदि जैसा भगवान के है, वैसा मायावियों के नहीं है, अतः हेतु व्यभिचारी नहीं है, वहाँ भी ऐसा उत्तर

जानना की सच्ची विभूति तो भगवान् के प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध हुई नहीं और आगम से सिद्ध मानें तो हेतु आगमाश्रित ही हुआ। इस कारण इस हेतु से स्तुति करने योग्य भगवान् आप्त सिद्ध नहीं होते हैं।।१।।

पुनः मानों भगवान कहते हैं कि जैसे अन्तरंग और बाह्य शरीरादि महोदय हमारे हैं, वैसे अन्य के नहीं है। हमारा वैभव सच्चा है, अतः हम महान् स्तुति करने योग्य हैं, अतः उस प्रकार हमारी स्तुति क्यों नहीं की? इस प्रकार पूछने पर मानों पुनः आचार्य कहते हैं –

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकष्यस्ति रागादिमत्सु सः।।२।।

अर्थ – अध्यात्म–अंतरङ्ग–शरीराश्रित महान् उदय–मल, पसीना रहितपना आदिक, बाह्य – देवों द्वारा की हुई गन्धोदक वृष्टि आदि से सच्चे लक्षण मायावियों में नहीं पाए जाते हैं। ये लक्षण दिव्य हैं – चक्रवर्त्यादिक मनुष्यों के इस प्रकार नहीं पाए जाते हैं।

इस प्रकार के हेतु से भी भगवान् आप्त तुम हमारे स्तुति करने योग्य नहीं हो, क्योंकि यह अंतरंङ्ग, बहिरंङ्ग सच्चा महोदय यद्यपि पूरणादिक इन्द्रजालियों में नहीं पाया जाता है तो भी कषाय और रागादि सहित स्वर्ग के देवताओं में पाया जाता है, इस कारण हेतु व्यभिचारी है। इस हेतु से भी भगवान् परमात्मा है, स्तुतिगोचर हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ भी कहते हैं – भगवान् के घातिया कर्म के नाश से जैसा विग्रहादि (शरीरादि का) महोदय है, वैसा रागादि सहित देवों में नहीं है? यहाँ भी पूर्वोक्त उत्तर है कि भगवान के घातिकर्म के नाश से उत्पन्न हुआ है, ऐसा साक्षात् दिखाई नहीं देता है। अतः यह भी स्तवन तथा हेतु आगमाश्रित ही है।

प्रश्न :– प्रमाण सम्प्लव के मानने वाले अनेक प्रमाण से सिद्ध मानते हैं। यहाँ आगम प्रमाण से सिद्ध हुआ है, वही आगमाश्रित हेतु जनित अनुमान से सिद्ध हुआ, इसमें दोष क्या है?

उत्तर :– इस प्रकार प्रमाणसंप्लव इष्ट नहीं है। जहाँ विशेष प्रयोजन होता है, वहॉ प्रमाणसम्प्लव इष्ट होता है। पहले प्रमाणसिद्ध प्रामाण्य से सिद्ध हुआ, फिर भी उसके हेतु को प्रत्यक्ष देखकर आगम से सिद्ध करे, पश्चात् उसे प्रत्यक्ष जाने। वहाँ प्रयोजनविशेष होता है। इस प्रकार प्रमाण संप्लव होता है। केवल आगम ही से तथा आगमाश्रित हेतु जनित अनुमान से

प्रमाण कहकर क्यों प्रमाण संप्लव कहना। इस प्रकार इस विग्रहादिक महोदय से भी भगवान् परमात्मा को नहीं मानते हैं।।२।।

पुनः मानों भगवान् कहते हैं कि हमारा तीर्थंकृत सम्प्रदाय है – हम मोक्षमार्गरूपी धर्मतीर्थ चलाते हैं, इस हेतु से हम महान्–स्तुति करने योग्य हैं। इस प्रकार कहने पर पुनः साक्षात् आचार्य कहते हैं :–

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरूः।।३।।

अर्थ – हे भगवान्! तीर्थ – जिससे तिरा जाय, इस प्रकार के धर्ममार्ग को जो करे वे तीर्थकृत्, उनके समय–मत(आगम), उनमें परस्पर विरोध हैं, अतः सबके ही आप्तपना नहीं होता है। उनमें कोई एक गुरू महान् –स्तुति करने योग्य होता है।

भावार्थ – हे भगवान्! आप्त तुम्हारे तीर्थंकरपना रूप हेतु से महान्पना सिद्ध करे तो यह तीर्थंकरपना प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से तो सिद्ध होता नहीं है। तीर्थंकरपना प्रत्यक्ष तो दिखाई देता नहीं है, उसका लिंग (हेतु) भी दिखाई नहीं देता है। यदि तीर्थंकरपना आगम से सिद्ध करेंगे तो पूर्ववत् आगमाश्रय दोष ठहरता है। पुनः यह हेतु व्यभिचारी है। इन्द्रादिक में तीर्थंकरपना यद्यपि असम्भव है फिर भी बौद्धादि अन्यमती चूँकि सब अपने – अपने को तीर्थंकर मानते हैं, अतः सभी महान् ठहरते हैं, किन्तु वे सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि परस्पर विरूद्ध आगम कहते हैं। यदि विरुद्ध न कहते हों तो उनमें मतभेद क्यों हो। अतः तीर्थंकरपना हेतु किसी के महानपने को सिद्ध नहीं करता है।

मीमांसक – इस प्रकार आया हुआ कोई भी पुरूष सर्वज्ञ महान्–स्तुति करने योग्य नहीं है। जो कल्याण को चाहते हैं, उनके वेद ही कल्याण के उपदेश का साधन है।

जैन – वेद स्वयं तो अपने लिए नहीं कहता है। वेद का अर्थ पुरूष ही करता है। पुरूषों के भी परस्पर विरोध ही दिखाई देता है। भट्ट सम्प्रदाय के लोग तो वेद का वाक्यार्थ भावना को मानते हैं। प्रभाकर सम्प्रदाय के लोग नियोग को वाक्यार्थ मानते हैं। वेदान्त मत वाले विधि को वाक्यार्थ मानते हैं। उनके परस्पर विरोध है। इनका स्वरूप विशेष रूप से अंष्टसहस्री में विस्तार से वर्णित है, वहाँ से जानना।

चार्वाक तथा शून्यवादी – चूँकि कोई भी वस्तु सत्यार्थ नहीं है, अतः

कैसा आप्त? और कैसे आप्त की परीक्षा सम्बंधी विवाद का प्रयास किया जाता है?

जैन -- वस्तु नहीं है, ऐसा भी निश्चय कैसे किया जायेगा? तुम नास्तिक तथा शून्यवादी यदि कोई हो तो तुम्हारी बात कौन मानेगा? यदि तुम वस्तु हो तो उसी प्रकार सब वस्तु हैं। तथा समस्त वस्तुओं को जानने वाला सर्वज्ञ आप्त है। वस्तु का स्वरूप कोई किसी प्रकार मानता है, कोई किसी प्रकार मानता है। अतः वहाँ परीक्षा करना चाहिए। परीक्षा प्रमाण रूप ज्ञान से होती है। सच्चे सर्वज्ञ का ज्ञान प्रमाण रूप है। वह सर्वज्ञ (आजकल) दिखाई नहीं देता है, उसका निश्चय करना चाहिए। अल्पज्ञ के निश्चय अपने ज्ञान ही के आश्रय से होता है। अतः साधक तथा बाधक का जिस प्रकार निश्चय हो, वादी प्रतिवादी बिना किसी बाधा के निश्चय करें, कोई बाधा नहीं आए, उस प्रकार से निश्चय करना परीक्षा है।

मीमांसक -- अल्पज्ञ की तो सिद्धि होती है, किन्तु सर्वज्ञ की सिद्धि नहीं होती है।

जैन-- यदि अल्पज्ञ आत्मा की सिद्धि है तो मीमांसक के निषेध करने के लिए इस श्लोक के चौथे पद का अर्थ इस प्रकार करना कि **कश्चिदेव भवेदगुरूः**, कोई चैतन्य, ज्ञान रूप आत्मा ही गुरू -- महान् है; क्योंकि इस चैतन्य आत्मा के अन्य पुद्गल के सम्बंध से ज्ञानावरणादिक कर्म के आवरण से अल्पज्ञान और दोषसहितपना है। अतः आवरण दूर होने पर आत्मा सर्वज्ञ वीतराग होती है। यह बात प्रमाण से सिद्ध है। इस प्रकार सर्वज्ञ का निश्चय होने का निश्चय होने पर आप्त के वचन रूप आगम का निश्चय होता है। आगम से समस्त वस्तु का निश्चय होता है। ऐसा करने से देवागमादि विभूति सहित होने से तथा विग्रहादिमहोदयपने से तथा तीर्थंकरपने से तो आप्त सर्वज्ञ सिद्ध नहीं हुआ। अतः भले प्रकार जिसमें असंभवद्बाधक प्रमाण निश्चय जिसमें हुआ है ऐसे भगवान् अरहन्त! तुम ही संसारी जीवों के प्रभु हो, स्वामी हो अतः आत्यन्तिक दोष तथा आवरण की हानि की अपेक्षा तथा समस्त तत्त्वार्थों को जानने की अपेक्षा सूत्रकारादि मुनियों ने तुम्हारा स्तवन किया है।।३।।

इस प्रकार आचार्य समन्तभद्र ने निरूपण किया तब पुनः मानों भगवान् ने साक्षात् पूछा कि दोष और आवरण की अत्यन्त हानि मुझमें किस हेतु से निश्चय की? इस प्रकार पूछने पर मानों पुनः आचार्य

समन्तभद्र कहते हैं :–

दोषवरणयोर्हानिर्निश्शेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः।।४।।

अर्थ – दोष और आवरण की हानि सामान्य तो प्रसिद्ध है; चूँकि एक देश हानि से अल्पज्ञों के एकदेश निर्दोषपना और एकदेश ज्ञानादिक उस हानि के कार्य दिखाई देते हैं, अतः सम्पूर्ण आवरण की हानि निर्दोष रूप से किसी में देखी जाती है, सिद्ध की जाती है। यहाँ अतिशायन हेतु है। इसका अर्थ यह है कि यह हानि बढती दिखाई देती है। जैसे – क्वचित् – किसी सुवर्ण पाषाणादि में कीट, कालिमा आदि बाह्य आभ्यन्तर मल का अपना हेतु अग्नि पर चढाने से सर्वथा अभाव को प्राप्त होता है, उसी प्रकार अल्पज्ञ के नाश के हेतु सम्यग्दर्शनादिक से दोष का और आवरण का अभाव होता है, इस प्रकार सिद्ध होता है। यहाँ आवरण तो ज्ञानावरणादिक कर्मपुद्गल के परिणाम हैं तथा दोष – अज्ञान रागादिक जीव के परिणाम हैं। यहाँ कोई कहता है – जैसे अतिशायन हेतु से दोष और आवरण की सम्पूर्णरूप से हानि सिद्ध की, उसी प्रकार कहीं बुद्धि आदि गुण की भी हानि बढती दिखाई देती है। अतः यह भी कहीं सम्पूर्ण रूप से सिद्ध होती है। इसके विषय में कहते हैं – यदि आत्मा में बुद्धि की सम्पूर्ण हानि सिद्ध करोगे तो आत्मा के जड़पना आयगा। यह बड़ा दोष है। अतः जीव पुद्गल के सम्बंध रूप बन्धपर्याय में क्षयोपशम रूप बुद्धि का अभाव होने पर आत्मा के स्वाभाविक ज्ञानादिगुण तो सम्पूर्ण रूप में प्रकट होते है तथा बध पर्याय का अभाव होता है, जड़ रूप पौद्गलिक कर्म भिन्न हो जाते है। इस प्रकार पुद्गल के बुद्धि आदि गुण के अभाव का व्यवहार है इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ पुरुष अनुमान से सिद्ध होता है।।४।।

मीमांसक – जीव भावकर्म रूप अज्ञानादि से रहित होने पर भी सूक्ष्मादि समस्त पदार्थों को नहीं जानता है। अथवा अन्य सब पदार्थ को जानता है तो जाने परन्तु धर्म, अधर्म को तो जानता नहीं है, इस प्रकार मानों भगवान् ने फिर पूछा तब मानों पुनः सूत्रकारादिक स्तवन करने वाले मुनियों के बुद्धि का अतिशय बतलाने की इच्छा से भगवान् से कहते हैं –

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतो ऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः।।५।।

अर्थ – सूक्ष्म – स्वभाव से क्षीण परमाणु आदिक, अन्तरित – काल

से जिनका अन्तर पडा ऐसे राम रावणादिक, दूरस्थ – क्षेत्र की अपेक्षा दूरवर्ती हिमवत् आदिक ये पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष दृष्ट हैं; क्योंकि ये अनुमेय हैं। अनुमान प्रमाण में जैसे अग्नि आदिक पदार्थ अनुमान के विषय हैं। ये पदार्थ किसी को प्रत्यक्ष भी दिखाई देते हैं, उसी प्रकार यह सूक्ष्म आदिक भी हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ का भले प्रकार निश्चय होता है।

प्रश्न – जा पदार्थ अनुमान के विषय हैं, वे तो किसी के प्रत्यक्ष हैं किन्तु जो अनुमान गोचर ही नहीं हैं, वे कैसे प्रत्यक्ष होंगे?

उत्तर – यदि धर्मादिक पदार्थों को अनुमान का विषय नहीं मानेंगे तो समस्त अनुमान का उच्छेद हो जायेगा। यहाँ धर्म, अधर्म पदार्थ विवाद के विषय हैं, इन्हीं की सिद्धि करनी है। अन्य पदार्थ चूँकि विवाद में नहीं आए हैं, अतः उनकी चर्चा नहीं करना है। धर्मादिक पदार्थ अनुमान के विषय हैं ही। वे अनित्य स्वभाव रूप हैं। जहाँ किसी को सुख होता हुआ जानो, वहाँ उसके पुण्य का उदय है। इसी प्रकार अनुमान के विषय धर्मादिक पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ का अनुमान कर पुनः स्थापना की।।५।।

आगे पुनः मानों भगवान् ने पूछा – इस प्रकार सामान्य की अपेक्षा तो सर्वज्ञ सिद्ध हुआ, परन्तु ऐसा परमात्मा अरहन्त ही है, ऐसा निश्चय कैसे किया? क्योंकि तुम्हारे हम ही वन्दनीक हैं। ऐसा पूछने पर मानों पुनः आचार्य जिस प्रकार अरहत ही सर्वज्ञ ठहरैं, ऐसा साधन कहते हैं –

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।।६।।

हे भगवान्! इस पूर्वोक्त निर्दोष आवरण और अज्ञानादि से रहित सर्वज्ञ और वीतराग तुम ही हो ; क्योंकि आपके वचन युक्ति और शास्त्र के विरोध से रहित – अविरोधी हैं। इस प्रकार के अविरोधी वचन वाले आप श्रेष्ठ वैद्य जैसे हो। यहाँ भगवान् ने मानों पुनः पूछा – हे समन्तभद्र! हमारे वचन, युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी हैं, यह बात कैसे निश्चित की। वहाँ आचार्य पुनः कहते हैं – हे भगवन्! आपका कहा इष्ट तत्त्व – मोक्ष तथा मोक्षका कारण, संसार तथा संसार का कारण प्रसिद्ध प्रमाण से बाधित नहीं होता है। जो प्रमाणसे बाधित नहीं होता है, वह युक्ति शास्त्राविरोधी है। यहाँ वैद्य का दृष्टान्त श्लोक में नहीं है, फिर भी इसे आचार्य ने स्वयम्भू स्तोत्र में स्वयं कहा है, अतः अष्टसहस्री टीका में कहा है। वैद्य भी रोग तथा रोग की निवृत्ति एवं उनके कारण में निर्बाध प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार

वैद्य का दृष्टान्त है। भगवान् के उपदिष्ट मोक्षादितत्त्व निर्बाध कैसे हैं? सो दिखाते हैं– प्रथम तो भगवान् अरहन्त का कहा हुआ मोक्षतत्त्व प्रमाण से बाधित नहीं होता है, इन्द्रियजनित प्रत्यक्ष प्रमाण तो मोक्ष का विषय ही नहीं है, बाधक कैसे होगा? बाधक अपने विषय का ही साधक होता है। अनुमान और आगमसे मोक्षका अस्तित्व स्थापन्न है ही। कहीं पर दोष और आवरण का अत्यन्त अभाव होने पर अनन्त ज्ञानादिकका लाभ होता है। इस प्रकार मोक्ष अनुमान तथा आगमसे प्रसिद्ध है। मोक्ष का कारण तत्त्व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र भी प्रमाण से सिद्ध है; क्योंकि बिना कारण के कार्य न होना प्रसिद्ध है। संवरतत्त्व भी प्रमाणसे बाधित नहीं होता है। अपने उत्पन्न किए कर्मके वशसे आत्माके एक भवसे अन्य भवकी प्राप्ति संसार है। यह संसार प्रत्यक्ष है, अनुमान का तो विषय ही नहीं है। अनुमान से बाधा कैसे आएगी? अनुमान का यदि विषय हो तो अनुमान साधक ही होगा, बाधक नहीं होगा, पुनः संसार का कारणतत्त्व भी प्रमाणबाधित नहीं है; क्योंकि कारण बिना कार्यके नहीं होता है। मिथ्यात्त्वादि संसारके कारणके रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार भगवान् अरहंत के वचन युक्ति और शास्त्रसे बाधित नहीं होते हैं। ऐसे बाधारहित वचन भगवान्के निर्दोषपनेको सिद्ध करते ही हैं।

प्रश्न – सर्वज्ञ वीतराग के इच्छा बिना उपदेश रूप वचन की प्रवृत्ति कैसे संभव होती है?

उत्तर – वचन प्रवृत्ति का कारण नियम से इच्छा ही हो, ऐसा नहीं है। इच्छा के बिना भी वचन की प्रवृत्ति होती है। जैसे सोते हुए पुरुष आदि के इच्छा के बिना वचन की प्रवृत्ति होती है, उस प्रकार जानना। चूँकि सर्वज्ञ, वीतराग भगवान् स्तुति करने योग्य हैं, अतः हे भगवान्! ऐसे तुम ही मोक्ष मार्ग के प्राप्त करने वाले हो अन्य कपिल (सांख्यमती) आदि ऐसे नहीं है।।६।। इसी बात को दिखलाते हैं –

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवदिनाम्।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते।।७।।

अर्थ – हे भगवन्! तुम्हारा मत अनेकान्त वस्तुस्वरूप वस्तु है। उस अनेकान्त स्वरूप वस्तु का ज्ञान अमृत–मोक्ष का कारण है। अतः यह मत भी अमृत है, सर्वथा बाधारहित है। अतः भव्य जीवों को सन्तोष उत्पन्न

कराने वाला है। इससे बाह्य सर्वथा एकान्त है। उसके अभिप्राय वाले तथा कहने वाले सांख्य आदि मत के प्ररूपक कपिल आदि हैं। वे आप्तपना के अभिमान से दग्ध हैं; क्योंकि वे ऐसा मानते हैं कि हम आप्त हैं और बाधारहित सर्वथा एकान्त कहने वाले हैं। अतः झूठे अभिमान से दग्ध हैं उनका माना स्व इष्ट तत्त्व सर्वथा सत्, सर्वथा असत्, सर्वथा एक, सर्वथा अनेक इत्यादि है। यह दृष्ट – प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित होता है; क्योंकि समस्त बाह्य तथा अन्तरंग वस्तु अनेकान्त स्वरूप है। समस्त जगत् के जीवों के अनुभव में ऐसा ही आता है। अतः हम भी सर्वथा एकान्त रूप नहीं देखते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है।।७।।

शंका – सर्वथा एकान्तवादियों के भी शुभाशुभरूप कुशलाकुशल कर्म की तथा परलोक की प्रसिद्धि है, इससे आप्तपना है। आप्तपना से महानपना– स्तुति योग्य नहीं है?

समाधान – उपर्युक्त शंका होने पर आचार्य कहते हैं –

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ! स्वपरवैरिषु।।८।।

अर्थ – हे नाथ! जो सर्वथा एकान्त के कहने में आसक्त हैं अथवा जिनका अभिप्राय सर्वथा एकान्तरूप पिशाच है उसी के वशीभूत है, उनमें कुशल–कल्याण रूप शुभकर्म तथा अकुशल–अकल्याणरूप अशुभकर्म तथा परलोक एवं परलोक का कारण धर्माधर्म तथा मोक्ष आदि एकान्त भी संभव नहीं है; क्योंकि वे एकान्तवादी अपने और पर के बैरी हैं। जैसे शून्यवादी सर्वथा वस्तु को शून्य मानकर अपना और पर का नाश करता है, उस प्रकार है। स्व और पर क्या है? इसके विषय में कहते हैं – पुण्य तथा पाप रूप कर्म और उसका फल सुख दुःख रूप कुशल–अकुशल और उसका सम्बन्ध रूप परलोक ये तो स्व हैं; क्योंकि इन्हें सर्वथा एकान्तवादी मानते हैं। पर उनके लिए अनेकान्त है; क्योंकि उन्होंने अनेकान्त को नहीं माना है। वे अनेकान्त का निषेध करते हैं अतः वे अनेकान्त के बैरी हैं। यहाँ पर का बैरीपना है। यह पर का बैरीपना ही आपके बैरीपना को सिद्ध करता है; क्योंकि यदि अनेकान्त नहीं मानते हैं तो तत्त्व सर्वथा सत् रूप, सर्वथा असत् रूप, सर्वथा नित्य रूप तथा सर्वथा अनित्य रूप मानेंगे। इस प्रकार मानने पर वस्तु में अर्थक्रिया का अभाव सिद्ध होता है तथा अर्थक्रिया बिना पुण्य–पाप कर्म आदि की सिद्धि नहीं होती है। इस प्रकार पर का बैरीपना

और अपना बैरीपना सिद्ध हुआ। इस प्रकार सर्वथा एकान्तवादियों के प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से विरूद्धभाषीपना है। इससे अज्ञानादि दोषों की सिद्धि है। अतः आप्तपना बनता नहीं है। अतः हे भगवान्! तुम अरहंत ही सर्वज्ञ, वीतराग तथा युक्तिशास्त्र से अविरोधी वचनपने की अपेक्षा निर्दोष हो, इस प्रकार निश्चय कर तत्त्वार्थशासन के आरम्भ में मुनि ने तुमको स्तुतिगोचर किया है; क्योंकि तुम ही तत्त्वार्थशासन की सिद्धि के कारण हो।।८।।

आगे भगवान् फिर पूछते हैं – हे समन्तभद्र! पदार्थों का भाव ही है अभाव नहीं है, ऐसा निश्चय होने से प्रत्यक्ष तथा अनुमान से विरोध का अभाव है। इस तरह भाव एकान्तवादियों के निर्दोषपने की सिद्धि होने से आप्तपना बनता है। अतः उससे स्तुतियोग्यपना होवे। ऐसा पूछने पर मानों पुनः आचार्य कहते हैं –

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्।।६।।

अर्थ – हे भगवान्! पदार्थों का भावैकान्त होने से अभावों का लोप हुआ। इससे पदार्थ सर्वात्मक अनाद्यनन्त ठहरा, किन्तु ऐसा वस्तु का निजरूप नहीं है। अतः तुम्हारा मत ठीक नहीं है। सांख्यमत में तो पदार्थ पच्चीस[1] माने गए हैं। उनमें एक मूल प्रकृति विकार रहित है। एक महान उत्पत्ति विनाश पर्यन्त ठहरने वाली बुद्धि है। एक बुद्धि से उत्पन्न अहङ्कार है। गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द, इस प्रकार पाँच तन्मात्राऐं हैं। इस प्रकारसे सात प्रकृति की विकृति हैं। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ तन्मात्राओंसे उत्पन्न हुए पंचभूत – पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा आकाश और एक मन, इस प्रकार षोडशक को विकार कहते हैं। प्रकृति तथा विकृति से रहित एक पुरुष इस प्रकार पच्चीसतत्त्व हुए। इनका अस्तित्त्व ही है, नास्तित्त्व नहीं है। इस प्रकार भाव एकान्त है। भाव एकान्त को मानने पर चार प्रकार के अभाव का लोप होता है। इतरेतराभाव का लोप करने से सर्वात्मक होने से पच्चीस तत्त्व एक तत्त्व ठहरे। तब भेद कहने का विरोध आता है। अत्यन्ताभाव का लोप करने से प्रकृति के पुरूष का अत्यन्त

---

१. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरूषः।।१।।

अभाव न मानने से प्रकृति के पुरुषरूपपना आता है। तब प्रकृति एवं पुरुष का भिन्न लक्षण कहने का विरोध आता है? प्रागभाव के लोप से प्रकृति से महत्व की उत्पत्ति हुई, महततत्त्व से अहंकार हुआ, अहंकार से षोडशगण हुआ, पंचतन्मात्रा से पंच महाभूत हुए, इस प्रकार सृष्टि के उत्पन्न होने का निषेध होता है। इस प्रकार ये सब अनादि ठहरते हैं। प्रध्वंसाभाव के लोप से सांख्य लोग जो महान् आदि को विनाशमान अनित्य कहते हैं, वे सब नाशरहित ठहरते है, तब प्रलय कहना मिथ्या ठहरता है। पृथिवी आदि महाभूत तो पंच तन्मात्रा में लय हो जाते हैं। षोडशगण अहंकार में लय होते हैं, अहंकार महान् में लय हो जाता है, महान् प्रकृति में लय होता है; इस प्रकार संसारका कहना बिगडता है।

इस प्रकार सांख्यमत वाले जो तत्त्व का स्वरूप कहते हैं, वह तत्त्व का निजस्वरूप नहीं है। इस कारण तत्त्व का स्वरूप अन्य है। इसी प्रकार अन्योन्याभाव के न मानने से एकान्तवादियों के मत में दोष आता है; क्योंकि यदि अन्योन्याभाव नहीं मानते हैं, तब केवल भाव को ही मानना पडेगा। मात्र भाव को मानने पर किसी का भी निषेध नहीं होता है। तब तत्त्व एक रूप ठहरता है, किन्तु ऐसा नहीं है। वेदान्तवादी तो सत्तामात्र एक ब्रह्म को तत्त्व मानते हैं तथा भेदभाव को अविद्या रूप—भ्रमरूप अवस्तु मानते हैं। इस प्रकार का तत्त्व किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता है। तुम्हारा मत अरहन्त का मत नहीं है, क्योंकि तुम्हारे मत में कथंचित् अभाव का लोप नहीं है।।९।।

आगे घटादिक के तथा शब्दादि के प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव का लोप कहने वाले वादी के दोष दिखलाते हुए कहते हैं --

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवे ऽनन्तां व्रजेत्।।१०।।

अर्थ – प्रागभाव – कार्य के पहले न होना, उसका निह्नव—लोप होने से कार्यद्रव्य घटादिक तथा शब्दादिक अनादि ठहरे, किन्तु ऐसे हैं नही, यह दोष आता है। प्रध्वंस – कार्य का विघटना नामक धर्म, उसके प्रच्यव लोप होने से कार्यद्रव्य अनन्तता को प्राप्त होकर अविनाशी ठहरता है, किन्तु ऐसा है नहीं, यह दोष आता है। वहाँ घटादि कार्यद्रव्य के अनादिता तथा अनन्तता के प्रसंग का उदाहरण तो सांख्यमत की अपेक्षा है। शब्दादिक कार्यद्रव्य के अनादिता तथा अनन्तता के प्रसङ्ग का उदाहरण मीमांसक मत

की अपेक्षा है। इनकी चर्चा अष्टसहस्री की टीका से जानना चाहिए।।१०।।

आगे इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव के न मानने वाले वादियों के दोष दिखाने की इच्छा से आचार्य कहते हैं –

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा।।११।।

अर्थ – अन्यापोह – अन्य स्वभाव रूप वस्तु से अपने स्वभाव के भिन्नपने को इतरेतराभाव कहते हैं, इसका व्यतिक्रम –लोप होने से तत् – सर्ववादियों के द्वारा माना गया वस्तु का भिन्न–भिन्न स्वरूप सब एक सर्वात्मक हो जायगा, यह दोष आता है। जो तत्त्व आपने नहीं माना है, दूसरो ने माना है, वह भी आपके द्वारा माना हुआ ठहरेगा, इस प्रकार सर्वात्मक – एक ठहरेगा। अपने समवायी पदार्थ का अन्य समवायी पदार्थों में समवाय होना, यह अत्यन्ताभाव का लोप है। अत्यन्ताभाव का लोप होने पर सर्ववादियों का इष्टतत्त्व कथन को प्राप्त नहीं करता है। अपने माने हुए स्वरूप में पर के माने हुए स्वरूप के भी कथन का प्रसङ्ग आता है। आपके इष्ट तथा अनिष्ट तत्त्व में तीन काल में भी विशेष का मानना नहीं ठहरता है, यह दोष है।

प्रश्न – प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव में विशेष (भेद) क्या है?

उत्तर – कार्यद्रव्य घटादिक के पहले जो अवस्था थी, सो तो प्रागभाव है। कार्यद्रव्य के पीछे जो अवस्था है वह प्रध्वंसाभाव है। इतरेतराभाव ऐसा नहीं है; क्योंकि दोनों भाव रूप वस्तुऐं पृथक्–पृथक् युगपत् दिखाई देती हैं। उनके परस्पर स्वभाव भेद की अपेक्षा से उसका उसमें निषेध तथा उसका निषेध उसमें इतरेतराभाव है। यह विशेष तो पर्यायार्थिकनय के विशेषपना प्रधानपना की अपेक्षा पर्यायों में परस्पर अभाव जानना। अत्यन्ताभाव द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता की अपेक्षा से है। अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यमें अत्यन्ताभाव है। ज्ञानादिक तो पुद्गल में किसी काल में होते नहीं हैं। पुनः रूपादिक जीवद्रव्य में किसी काल में होते नहीं है। इस प्रकार इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव ये दोनों अभाव नहीं मानेंगे तो समस्त तत्त्व का एकतत्त्वरूप हो जायेंगे तथा अपने और पर के इष्टतत्त्व की व्यवस्था नहीं ठहरेगी, इस प्रकार दोष आता है। अतः अभाव को कथंचित् भाव के समान

वस्तु का धर्म मानना योग्य है।।११।।

आगे कहते हैं –

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम्।।१२।।

अर्थ – अभाव – कोई भाव रूप वस्तु नहीं है, ऐसा अभाव एकान्त पक्ष है। उसके होते हुए भाव का लोप हुआ। सो भाव का लोप कहने वाले वादियों के बोध–ज्ञान, जिससे अपना अर्थ – तत्त्व का साधन दूषण किया जाता है और वाक्य पर के अर्थ तत्त्व का साधन दूषण रूप वचन इनका अभाव आया। तब प्रमाण की व्यवस्था नहीं ठहरी तब अपने अभावैकान्त पक्ष की स्थापना कैसे करेगा तथा पर के भावपक्ष में दोष कैसे उपस्थित करेगा। यदि स्वपक्ष का साधन दूषण माना जायगा तो भावपक्ष की सिद्धि होती है, इस प्रकार दोष आता है। अतः अभावैकान्त पक्ष कल्याणकारी नहीं है।।१२।।

आगे समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि परस्पर अपेक्षा रहित भावाभाव पक्ष तथा अवक्तव्य पक्ष भी कल्याणकारी नहीं है –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।१३।

अर्थ – उभय – भाव और अभाव ये दोनों एक स्वरूप नहीं हैं। अतः स्याद्वाद न्याय के शत्रु (विरोधी) के भाव और अभाव दोनों एक स्वरूप कहने में परस्पर परिहारस्थिति लक्षण विरोध आता है। पुनः अवाच्य – कहने में न आए, ऐसा अवक्तव्य एकान्त मानेंगे तो वस्तु अवक्तव्य है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। वहाँ ऐसा जानना कि भाव पक्ष में और अभाव पक्ष को पृथक् पृथक् मानने में जो दोष आते हैं, उन्हें दूर करने की इच्छा से दोनों को एक स्वरूप मानने वाले के विधि निषेध के परस्पर परिहारस्थिति स्वरूपपना है। अतः दोनों को एक रूप मानना युक्त नहीं है। क्योंकि विरोध दूषण आता है। इस कारण ऐसा मानना कल्याणरूप नहीं है। 'पुनः भाव, अभाव और भावाभाव इन तीनों ही पक्ष में दोष आया जानकर यदि कोई अवक्तव्य एकान्त पक्ष को ग्रहण करे तो उसे उसके 'तत्व अवक्तव्य है, ऐसा कहना भी नहीं बनेगा। तब वह पर को अवक्तव्य तत्व का ज्ञान कैसे कराएगा? वचन के बिना ज्ञानमात्र ही से तो पर को ज्ञान कराना बनता नहीं है। अतः अवक्तव्य एकान्त मानना भी कल्याणकारी नहीं है।।१३।।

आगे पुनः मानों भगवान् ने पूछा कि हे समन्तभद्र! जो भाव, अभाव, भावाभाव तथा अवक्तव्य एकान्त मानते हैं, उन पक्षों में तो दोष दिखाकर परमत का निराकरण किया, परन्तु वादी की जीत तो परमत का निराकरण और स्वमत का स्थापन, इन दोनों के अधीन है। अतः हमारा इष्ट तत्त्व कैसे प्रसिद्ध प्रमाण से बाधित नहीं होता है, इसके विषय में कहो। मानों ऐसा पूछने पर आचार्य भाव आदि चारों पक्ष कथंचित् निराबाध दिखाते हैं –

कथंचित्तेसदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा।।१४।।

अर्थ – हे भगवान्! तुम्हारा इष्टतत्त्व कथंचित् – किसी प्रकार सदेव– सत् ही है। कथंचित् – किसी प्रकार असदेव – असत् ही है। किसी प्रकार उभयमेव – सत् और असत् दोनों है। कथंचित् – किसी प्रकार अवक्तव्य ही है। कारिका में 'च' शब्द के ग्रहण से कथंचित् – किसी प्रकार सदवक्तव्य है, किसी प्रकार असदवक्तव्य ही है? किसी प्रकार सत्–असत् अवक्तव्य ही है। ऐसा कैसे है? नययोगात् – द्रव्यार्थिक,पर्यायार्थिक आदि नयों के योग से है। यह कथंचित् किसी प्रकार का प्रयोजन है। किसी प्रकार कहने से सर्वथा का निषेध हुआ। यह बात सर्वथा नहीं है, इस नियम के लिए वचन है। ऐसे प्रश्न के वश से एक ही वस्तु में अविरोध की अपेक्षा विधि प्रतिषेध की कल्पना में सप्तभङ्ग की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार नयवाक्यमात्र ही है। विधि निषेध के भंङ्ग सात ही हैं। इनसे भिन्न भंङ्ग नहीं होते हैं। यदि संयोग भंङ्ग करें तो इन्हीं में अन्तर्भूत होते हैं तथा कोई पुनरुक्त होते हैं। यह सात प्रकार का वस्तु का धर्म है– असत् कल्पना नहीं है। इनसे वस्तु का यथार्थ ज्ञान और वस्तु की अर्थक्रिया रूप प्रवृत्ति का निश्चय होता है। इनमें सत्, असत् और अवक्तव्य ये तीन भङ्ग तो एक एक ही हैं। पुनः सत्–असत् क्रम से कहना और सदवक्तव्य तथा असदवक्तव्य ये तीन द्विसंयोगी है। पुनः सत् असत् – अवक्तव्य यह एक त्रिसंयोगी है। सत् असत् और सदसत् क्रम से कहना, ये तीन तो वक्तव्य हुए तथा एक अवक्तव्य का, इस प्रकार चार तो ये तथा वक्तव्य–अवक्तव्य का संयोग भंग करने से तीन फिर हुए, इस प्रकार सात भङ्ग हुए हैं। यहाँ सत् आदि शब्द तो अनेकान्त के वाचक हैं और कथंचित् शब्द अनेकान्त का द्योतक है। इसके आगे एवकार शब्द अवधारण –नियम के लिए है। कथंचित् शब्द का

पर्यायवाची 'स्यात्' शब्द है। स्यात् शब्द सब वचनों पर लगाया जाता है। जहाँ इसका प्रयोग नहीं होता है, वहाँ भी जो स्याद्वाद न्याय में प्रवीण है, वे सामर्थ्य से जान लेते हैं। स्यात् शब्द के बिना सर्वथा रूप की वस्तु है, इत्यादि कहने में अनेक दोष आते हैं, उनकी चर्चा टीका (अष्टसहस्री) से जाननी चाहिए।।१४।।

पहली कारिका में नययोग कहा, सो अब पहले दूसरे भङ्ग में नययोग दिखलाते हैं –

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादि चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।१५।।

अर्थ – स्वरूपादि चतुष्टय – अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप चतुष्टय से समस्त वस्तुयें सत् ही हैं, इस प्रकार लौकिक जन तथा परीक्षक जन, ऐसा कौन है जिसे यह इष्ट न हो, इसे सब ही मानते हैं। इस प्रकार समस्त लोग मानते हैं। यहाँ सर्ववस्तु कहने से चेतनाचेतन द्रव्य तथा पर्याय एवं भ्रान्ताभ्रान्त तथा आपके इष्ट तथा अनिष्ट इत्यादि जानना चाहिए; क्योंकि जो प्रतीति में आती है, उसका लोप करने का असमर्थपना है। कुनय से जिसकी बुद्धि ग्रसित हुई है, ऐसा कोई दुर्बुद्धि नहीं मानता है। ऐसा व्यक्ति किसी इष्टतत्व में ठहरता नहीं है; क्योंकि वस्तु का वस्तुत्व अपने स्वरूप के ग्रहण करने और पर के स्वरूप का त्याग करने, इन दोनों व्यवस्थाओं से ठहरता है। यदि अपने स्वरूप के समान पर का भी असत्व मानेंगे तो सर्वथा शून्यपने की प्राप्ति होगी। उसी प्रकार स्वद्रव्य के समान पर द्रव्य की अपेक्षा भी सत्व मानेंगे तो भिन्न–भिन्न, न्यारे न्यारे नहीं ठहरेगें। पर द्रव्य के समान स्वद्रव्य की अपेक्षा भी किसी के असत्व मानेंगे तो सत् का द्रव्याश्रय नहीं ठहरेगा। इसी प्रकार अपने क्षेत्र के समान परक्षेत्र से भी सत् मानेंगे तो किसी का न्यारा क्षेत्र नहीं ठहरेगा। परक्षेत्र के समान अपने क्षेत्र से भी असत् मानेंगे तो क्षेत्र के बिना द्रव्य ठहरेगा। इसी प्रकार अपने काल के समान पर काल से भी सत्व मानेंगे तो अपना अपना माना काल नहीं ठहरेगा। परकाल के समान अपने काल की अपेक्षा भी असत्व मानेंगे तो वस्तु समस्त काल में असंभव ठहरेगी। इस प्रकार वह दुर्मति कहाँ ठहरेगा, इष्ट अनिष्ट की व्यवस्था बिना कहीं नहीं ठहरेगा। अतः यह भले प्रकार कहा हुआ मानना चाहिए कि यदि सत्व, असत्व, एकधर्म वस्तु में नहीं माना जायेगा तो स्व–पर तत्त्व की व्यवस्था नहीं ठहरेगी। तब सर्वथा

एकान्ती कहीं नहीं ठहरेगा।।१५।।

इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय भङ्ग की स्थापना कर अब तृतीयादिक भङ्गों का आचार्य निर्देश करते हैं –

क्रमार्पितद्वयाद्द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः।।१६।।

अर्थ – क्रमार्पित – पहले अलग कहे गए सत् असत् दोनो अनुक्रम से कहने से वस्तु द्वैतरूप है। सत् और असत् ये दोनों एक साथ कहने में नहीं आते हैं; क्योंकि एक साथ कहने की वचन की सामर्थ्य नहीं है, अतः अवक्तव्य हैं। अवशिष्ट तीन भङ्ग, जिनके उत्तर पद में अवक्तव्य है, वे अपने अपने हेतु से ग्रहण करना। वहाँ अनुक्रम से जो स्वरूपादि और पररूपादि का चतुष्टय–द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जो द्विक अर्पण किया, उसकी अपेक्षा तो कथंचित् सत् असत् इन दोनों का एक भङ्ग है। इससे द्वैत शब्द बना है। अपने और पर के स्वरूपादि चतुष्टय की अपेक्षा एक समय में कहने की अशक्ति से अवक्तव्य है; क्योंकि उस प्रकार कहने वाले पद और वाक्य का अभाव है। पाँचवाँ, छठा और सातवाँ ये तीन भङ्ग सत्, असत् और उभय में अवक्तव्य लगाकर अपने हेतु के वश से कहने चाहिए। किन्तु एक किस प्रकार? किसी प्रकार सत् अवक्तव्य ही है; क्योंकि स्वरूपादि चतुष्टय की अपेक्षा तो 'सत्' ऐसा वक्तव्य है, परन्तु सत् असत् दोनों एक समय वस्तु में हैं। एक काल में कहे नहीं जाते, अतः अवक्तव्य भी हैं। इस प्रकार यह पाँचवाँ भङ्ग है। इसी प्रकार कथंचित् असत् अवक्तव्य भी है, पररूपादि चतुष्टय की अपेक्षा तो असत् ऐसा कहा जाता है तथा सत्, असत् ये दोनों एक ही काल में हैं, इस प्रकार छठा भङ्ग है। कथंचित् सदसदवक्तव्य ही है; क्योंकि सत् असत् ये दोनों से कहे जाते हैं, ये दोनों एक कालमें नहीं कहे जाते हैं। अतः सदसदवक्तव्य ऐसा सातवाँ भङ्ग है। इस प्रकार ये वक्तव्यावक्तव्यस्वरूप तीन भङ्ग चार भङ्गों से पृथक ही हैं। सत्, असत् और उभय इन तीन में से एक न हो तो अवक्तव्य धर्म नहीं बनेगा; क्योंकि उन तीनों के होते हुए भी उनकी विवक्षा न कर केवल एक न्यारा ही अवक्तव्य भङ्ग कहने से विरोध नहीं है। इस प्रकार इन भङ्गों की स्वमत तथा परमत की अपेक्षा संभव होने की चर्चा अष्टसहस्री में है, वहाँ से जानना चाहिए।।१६।।

आगे कहते हैं – वस्तु का स्वरूप अस्तित्त्व ही है, नास्तित्त्व वस्तु का

स्वरूप नहीं है। अतः पर वस्तु स्वरूप के आश्रय है। एक ही वस्तु के आश्रय होने मे अतिप्रसङ्ग दोष आता है। इस प्रकार का तर्क उपस्थित होने पर आचार्य कहते हैं–

अस्तित्त्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वात् साधर्म्यं यथाभेदविवक्षया।।१७।।

अर्थ – अस्तित्त्व धर्म एक धर्म जीवादिक में प्रतिषेध्य (अस्तित्व के) नास्तित्त्व की अपेक्षा अविनाभावी है। नास्तित्व बिना अस्तित्त्व के नहीं होता है, दोनों का भिन्न आधार नहीं है। यह अस्तित्व नास्तित्व के विशेषणपना है। जो विशेषण होता है, वह एक धर्मी में अपने प्रतिषेध्य धर्म से अविनाभावी होता है। जैसे हेतु के प्रयोग में साधर्म्य – भेदविवक्षा–वैधर्म्य से अविनाभावी है। यह सर्व हेतुवादियों के लिए प्रसिद्ध है। जहाँ अन्वय होता है, वहाँ व्यतिरेक भी होता है। जैसे – घट में अस्तित्त्व है, उसी प्रकार यह पट नहीं है, यह नास्तित्त्व भी है। यहाँ यदि नास्तित्त्व न होता तो घट पट भी हो जाता। इस प्रकार अस्तित्त्व धर्म एक धर्मी में नास्तित्त्व धर्म की अपेक्षा अविनाभावी जानना।।१७।।

आगे पुनः पूछते है – अस्तित्व तो नास्तित्व से अविनाभावी होता है, किन्तु नास्तित्व अस्तित्व की अपेक्षा कैसे अविनाभावी होता है। आकाश के फूल के तो अस्तित्व का कोई प्रकार सभव नहीं है, उसके नास्तित्व ही है। इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते है –

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येक धर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया।।१८।।

अर्थ – नास्तित्व धर्म अपने प्रतिषेध्य अस्तित्व धर्म की अपेक्षा एक धर्मी में अविनाभावी है, क्योंकि यह विशेषण है। जैसे हेतु के प्रयोग में वैधर्म्य अभेद विवक्षा–साधर्म्य रूप प्रतिषेध्य धर्म की अपेक्षा अविनाभावी है। यह हेतु समस्तवादियों को प्रसिद्ध है। जैसे शब्द के अनित्यपने से साधने में कृतकपना हेतु आकाशादि विपक्ष में धर्मरूप है सो घटादि सपक्ष से समान धर्मरूप जो साधर्म्य, उसकी अपेक्षा अविनाभावी विशेषण है। ऐसा उदाहरण जीवादि एक धर्मी पर रूपादि की अपेक्षा नास्तित्व को स्वरूपादि अस्तित्वसे अविनाभावी सिद्ध करता ही है। भावार्थ यह है कि अस्तित्व नास्तित्व दोनों परस्पर विधि निषेध स्वरूप हैं। विधिके बिना निषेध नहीं है और निषेधके बिना विधि नहीं है।।१८।।

आगे पूछते हैं कि अस्तित्व तो विशेषण है, विशेष्य नहीं है। अतः अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभावी सिद्ध करने के लिए दो कारिका अनुमानप्रयोग की कहीं हैं, सो विशेषणरूप धर्म तो साध्य साधन के आधार पर होता नहीं है। अतः अनुमान का प्रयोग कैसे बनेगा, कुछ तो वचनगोचर नहीं है, अतः कहना नहीं बनता है। कुछ ऐसा कहते हैं कि जीवादिक वस्तुओं का अत्यन्त भेद ही है, जैसे घट पट भिन्न हैं, ऐसे कहने वालों के प्रति आचार्य कहते हैं –

विधेय प्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया।।१६।।

अर्थ – विशेष्य (विशेषण के योग्य सब जीवादिक पदार्थ) विधेय – विधि के योग्य अस्तित्त्वधर्म और प्रतिषेध्य – निषेध के योग्य नास्तित्व धर्म, ये दोनों धर्म स्वरूप हैं; क्योंकि विशेषण के योग्य विशेष्य होता है। इस विशेषणपने के साधने को विशेष्य है। विशेष्य – शब्दगोचर–शब्द का विषय है अर्थात् शब्द से कहा जाने वाला विशेष्य विधि – प्रतिषेधस्वरूप ही होता है। इसका उदाहरण इस प्रकार हैं – जैसे साध्य का धर्म हेतु विधिप्रतिषेध स्वरूप ही होता है। जहाँ साध्य को सिद्ध करता है, वहाँ तो हेतु होता है। और जहाँ साध्य को सिद्ध नहीं करता है, वहाँ अहेतु है। जैस शब्द को अनित्य सिद्ध करना हो तब कृतकपना उसके धर्म को हेतु होता है। यह कृतकपना शब्द के अनित्यत्वपने को सिद्ध करता है। यही कृतकपना शब्द को नित्य सिद्ध करने में अहेतु होता है। जहा अग्निमानपना सिद्ध करना हो वहाँ धूमवानपना हेतु है। यह धूमत्व हेतु उसके विपक्ष जलाशय के लिए अहेतु है, ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार विधि प्रतिषेध स्वरूप जीवादिक पदार्थ शब्दगोचर हैं यह बात सिद्ध होती हैं।।१६।।

आगे पूछते हैं कि चार भङ्ग तो स्पष्ट किए। बाकी तीन भङ्ग किस प्रकार प्राप्त करना है। ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं –

शेष भङ्गाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः।
न च कश्चिद्विरोधो ऽस्ति मुनीन्द्र! तव शासने।।२०।।

अर्थ – शेष भङ्ग – बाकी के तीन भङ्ग पहले जो अस्तित्व, नास्तित्व की दो कारिकाओं में नय कहे हैं, उनके योग से प्राप्त करना चाहिए। हे मुनीन्द्र! आपके शासन (आज्ञा, मत) में कुछ भी विरोध नहीं है। यहाँ

कारिका में शेष कहा है सो उत्तर के तीन भङ्गों की अपेक्षा है; क्योंकि पहली दो कारिका में अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनों ही अपने अपने प्रतिपक्षी की अपेक्षा विशेषपना हेतु से सिद्ध किए। इस कारिका से पूर्व की कारिका में विधि प्रतिषेध स्वरूप विशेष्य वस्तु को शब्द गोचर से सिद्ध किया। इस प्रकार यह तीसरा भङ्ग सिद्ध किया। इसको भी विशेषपना हेतु से अपने प्रतिपक्षी की अपेक्षा विधिनिषेध रूप जानना चाहिए। इस प्रकार चार भङ्ग तो यह और शेष तीन भङ्ग अस्तित्वावक्तव्य, नास्तित्वावक्तव्य, अस्तित्वनास्तित्वावक्तव्य, इस प्रकार अपने प्रतिपक्षी की अपेक्षा विशेषणपना हेतु से विधिप्रतिषेधरूप जानना। विशेषणत्वात्, यह नययोग सब के लगाना। एक धर्मी जीवादिक वस्तु विशेषों में एक धर्म विशेषण है, इस प्रकार सर्वज्ञ के मत में कुछ भी विरोध नहीं है। अपने प्रतिपक्षी धर्म से अविनाभावी विशेषण को जो अन्यवादी सिद्ध नहीं करते हैं, उन्हीं के मत में विरोध आता है।।२०।।

आगे अब आचार्य कहते हैं – विधिनिषेध रूप से जो अवस्थित नहीं है। वह अर्थ क्रियाकारी भी नहीं है। इस प्रकार अनेकान्तात्मक वस्तु है। सप्तभङ्गी वाणी की विधि का भागी ही अर्थक्रिया का कहने वाला है। अन्य अर्थक्रिया का कहने वाला नहीं है। जो अस्ति ही है तथा नास्तित्व ही है, ऐसी सर्वथा एकान्तरूप कल्पना करता है, वह असत् कल्पना है – वस्तु का रूप नहीं है। इस प्रकार अपने पक्ष के साधन तथा परपक्ष के दूषण रूप में वचन को समेटते हुआ – संकोचते हुए कहते हैं –

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः।।२१।।

एवं पूर्वोक्त प्रकार न्याय से सप्तभङ्गी विधि में विधि निषेध रूप से अनवस्थित जीवादिक वस्तुयें अर्थक्रिया को करती हैं। नेति चेत् अन्यवादी यदि ऐसा न मानें तो बाह्य और अन्तरंङ्ग कारणों से कार्य का जो निष्पन्न होना माना गया है, वह नहीं बनता है। जीवादिक वस्तु सत् ही हैं अथवा असत् ही हैं, ऐसा सर्वथा नहीं है। किन्तु कथंचित् सत् और कथंचित् असत्। इस प्रकार अनवस्थित वस्तु ही – कार्यकारी है। जो अन्य वादी सर्वथा एकान्त रूप से सत् ही है अथवा असत् ही है, इस प्रकार अवस्थित कहते हैं, उनके यहाँ उन्होंने कार्य की सिद्धि बाह्य और अन्तरङ्ग सहकारी कारण तथा उपादान कारण से जैसी मानी है, वैसी सिद्ध नहीं होती है।

इसकी विशेष चर्चा अष्टसहस्री से जानना चाहिए।।२१।।

आगे तर्क करते हैं – आपने वस्तु को अनेक धर्मस्वरूप माना है वहाँ अस्तित्व आदि धर्मों का धर्मी सहित उपकार्य उपकारक भाव होते हुए धर्मों का उपकार धर्मी करता है या अनेक शक्ति से करता है वहाँ भी वादी दोष बतलाता है। उन सबका निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं – चूँकि एक धर्मी में अनेक धर्म हैं, अतः कथंचित् सब प्रकार संभव है। धर्म धर्मी के अङ्ग–अङ्गी भाव है। इस कारण अनेकान्त कहने से विरोध नहीं है –

धर्मे धर्मे ऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनंतधर्मणः।
अंगित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता।।२२।।

अर्थ – अनन्त धर्म जिसमें पाये जाते हैं ऐसा जो जीव आदिक एक धर्मी है, उसके एक एक अस्तित्व आदि धर्म में अन्य ही अर्थ हैं, भिन्न–भिन्न कार्य हैं, भिन्न–भिन्न प्रयोजन है। वे प्रयोजन क्या हैं? इसके विषय में कहते हैं, उसकी प्रवृत्ति आदिक होना अथवा उसका ज्ञान होना है। समस्त धर्मों का एक ही प्रयोजन नहीं है, जिससे भेदाभेद पक्ष की अपेक्षा दोष आए। परन्तु कथंचित् भेदाभेदात्मक है। अनन्तधर्मात्मक वस्तु जात्यंतर है। धर्मों के स्वरूप सिवाय एक अलग जात्यंतर है, वहाँ विरोध का अवकाश नहीं है। उन अस्तित्व आदि धर्मों में एक धर्म के अङ्गी– प्रधान होने पर शेष अनन्त धर्मों को उसका अङ्गपना -- गौणपना होता है। अतः अन्य अन्य का प्रयोग युक्त है। धर्म, धर्म प्रति के कथंचित् स्वभावभेद बनता है। अतः वस्तु में परमार्थ से अस्तित्व आदि धर्मों की व्यवस्था अङ्गीकार करना चाहिए। इसी से अस्तित्व आदि सप्तभङ्गों की प्रवृत्ति है, सो सुनय के अर्पण की अपेक्षा है। इस प्रकार स्यात् अस्त्येव जीवादि, इत्यादि सप्तभङ्गों का प्रयोग युक्त है।।२२।।

आगे अब एकपना अनेकपना आदि में भी इस प्रकार की प्रक्रिया प्रकट करते हुए आचार्य कहते हैं –

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत्।
प्रक्रिया भङ्गिनीमेनां नयैर्नयविशारदः।।२३।।

अर्थ – नयों में प्रवीण स्याद्वादी सप्तभङ्गी प्रक्रिया को उत्तर प्रकरण में एकपना अनेकपना इत्यादि विकल्प विचार में भी नय के साथ युक्त करें। वहाँ स्यात् – कथंचित् जीवादिक वस्तु सत् द्रव्यनय की अपेक्षा एक ही है।

सत् पर्यायनय की अपेक्षा एक नहीं है।

प्रश्न – द्रव्य तो अनन्त हैं, एक द्रव्य कैसे कहा?

उत्तर – परम संग्रहनय एक सन्मात्र का ग्राहक है, उसकी अपेक्षा एक कहने में दोष नहीं है। कथंचित् जीवादिक वस्तु अनेक ही है; क्योंकि भेद रूप पृथक्–पृथक् दिखाई देते हैं। क्रम से अर्पण किए हुए एकपने और अनेकपने की अपेक्षा कथंचित् अवक्तव्य है।

इसी प्रकार कथंचित् एक अवक्तव्य, कथंचित् अनेक अवक्तव्य और कथंचित् एकानेकावक्तव्य हैं। इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रक्रिया की योजना करना चाहिए। जैसे पहले अस्तित्व को नास्तित्व की अपेक्षा अविनाभावी विशेषणपना हेतु से साधारण कहा था, उसी प्रकार यहाँ एकपना, अनेकपना आदि सप्तभङ्गियों में भी अपने प्रतिपक्षी की अपेक्षा विशेषणपना हेतु से अविनाभावी सिद्ध करना। इस प्रकार एकत्व अनेकत्व रूप से अनवस्थित जीवादिक वस्तु सप्तभङ्गी वाणी में प्राप्त किया हुआ कार्यकारी है सर्वथा एकान्त में क्रम और अक्रमरूप से अर्थक्रिया का विरोध है, अत: कार्यकारी नहीं है, इस प्रकार जानना।।२३।।

चौपाई

स्वामि समन्तभद्र की वाणि सप्तभङ्ग की विधिमय जाणि।
सेवो रविकर सम भवि भरि, मिथ्यातम कूं करि है दूरि।।१।।

इति श्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ।

दूसरा परिच्छेद

अद्वैतादि विकल्पकरि, सप्तभङ्ग सुविचारि।
कहैं मुनी तिनकूं नमूं, मंगलवचन उचारि।।१।।

अब एकानेक विकल्पों में सप्तभङ्ग के द्वितीय परिच्छेद का प्रारम्भ है। वहाँ प्रथम ही अद्वैत एकान्त पक्ष में दोष दिखाते हैं –

अद्वैतैकान्तपक्षे ऽपि दृष्टो भेदो विरुद्ध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात् प्रजायते।।२४।।

अर्थ – एकान्त पक्ष होने से कर्त्ता, कर्म आदि कारकों के तथा क्रियाओं के जो भेद प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हैं, वे विरोध को प्राप्त होते हैं। सर्वथा यदि एक रूप हो तो आप ही कर्त्ता हो, आप ही कर्म हो तथा आप ही से आपकी उत्पत्ति हो। किन्तु ऐसा होता नहीं है।

अद्वैत नाम एकस्वरूप होने का है; क्योंकि दो से युक्त होना द्वैत है। द्वैत न होना अद्वैत है, ऐसा अद्वैत शब्द का व्याख्यान है। अद्वैत का एकान्त होना अद्वैत एकान्त पक्ष है। अद्वैत एकान्त होने से दृष्ट–साक्षात् तथा अनुमान गोचर भेद से विरोध उपस्थित होता है तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध कर्त्ता आदि कारकों का भेद तथा ठहरना, गमन करना आदि अचलन तथा चलने रूप क्रिया के प्रसिद्ध भेद का निषेध कैसे होगा? अपितु निषेध नहीं हो सकेगा। वेदान्ती एक ब्रह्म के होते हुए कर्त्ता, कर्म आदि का भेद मानते हैं, सों सर्वथानित्य एक ब्रह्म का होना वास्तव में सम्भव नहीं होता है। क्योंकि कर्त्ता, क्रिया आदि में उपजना, विनशना यदि मानोगे तो ब्रह्म अनित्य ठहरेगा तथा द्वैत का प्रसंङ्ग आयेगा तथा उत्पन्न होना, विनाश होना एक ही के स्वयं अन्य कारण के बिना होता नहीं है। यदि ये भेद अविद्या से मानें तो अविद्या को तो अवस्तु माना है तथा अवस्तु के कार्यकारण विधान संभव नहीं होता है। अविद्या को यदि वस्तु मानें तो द्वैतपना आएगा, इत्यादि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरोध आता है। असकी चर्चा अष्टसहस्री से जानना चाहिए।।२४।।

आगे इसी अद्वैतपक्ष में ही अन्य दोष दिखलाते हुए आचार्य कहते हैं –

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याविद्याद्वयं न स्याद् बन्धमोक्षद्वयं तथा।।२५।।

अर्थ – पूर्वोक्त अद्वैत एकान्त पक्ष से लौकिक और वैदिक कर्म अथवा शुभ – अशुभ कर्म का आचरण अथवा पुण्य–पाप कर्म ऐसा कर्मद्वैत नहीं ठहरता है। कर्मद्वैत का फल भला – बुरा, सुख दुःख का द्वैत नहीं ठहरता है। फल भोगने का आश्रय यह लोक नहीं ठहरता है।

प्रश्न – कर्म आदि का द्वैत अविद्या के उदय से है।

उत्तर – धर्म – अधर्म के द्वैत का अभाव होने से विद्या अविद्या का द्वैत संभव नहीं है। विद्या–अविद्या यदि नहीं हैं, तब बन्ध – मोक्ष के द्वैत का अभाव होता है। यदि विद्या – अविद्या भी कल्पित मानें तो शून्यवादी जैसी कल्पना भी मानना ठहरती है, किन्तु यह युक्त नहीं है। परीक्षाप्रधानी तो

परमार्थरूप कुछ फल विचार कर प्रवृत्ति करते हैं। पुण्य–पाप, सुख–दुःख, इहलोक–परलोक, विद्या–अविद्या, बन्ध–मोक्ष ऐसे विशेषरहित तत्त्व मे तो परीक्षावान् आदर नहीं करता, शून्यवाद का आदर कौन करेगा?

अद्वैतवादी – हम ब्रह्म–अद्वैतको प्रमाण से सिद्ध हुआ मानते हैं। वहाँ अनुमान प्रमाण तो ऐसा है कि प्रतिभास में नाना वस्तु आती हैं सो प्रतिभास रूप होने पर प्रतिभास मे प्रवेश रूप ही हैं। जैसे कि प्रतिभास का स्वरूप है, उसी प्रकार वे नाना हैं। सुख प्रतिभासता है, इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं है। आगम वेद से भी ऐसा ही सिद्ध होता है कि अभेद है। वेद में ऐसा कहा है कि ब्रह्म शब्द से समस्त वस्तुओं का कथन होता है। वेद के उपनिषदों के जो वाक्य हैं, उनमें ऐसा कहा है कि आराम आदि सब ब्रह्म है, नाना कुछ भी नहीं। लोक नाना को देखता है, उस ब्रह्म को नहीं देखता है। अतः लोक के अविद्या है, इत्यादि। उसका (वेदान्ती का) प्रत्युत्तर द्वारा निषेध करने के इच्छुक आचार्य कहते हैं –

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं स्याद्धेतु साध्ययोः।
हेतुना चेद्विनासिद्धि र्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम्।।२६।।

अर्थ – हे अद्वैतवादी! यदि तू हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानेगा कि 'जो समस्त नाना वस्तु दिखाई देती हैं सो प्रतिभास में समस्त गर्भित हुई, प्रतिभास वाली होने से', इस प्रकार तो हेतु और साध्य दो ठहरे, तब द्वैतपना आया। यदि हेतु बिना आगम मात्र से अद्वैत की सिद्धि मानें तो द्वैतता भी वचनमात्र से कैसे न हो। तथा आगम और अद्वैत ब्रह्म इस प्रकार दो ठहरेगे। तब द्वैतपना क्यों नहीं आएगा।।२६।।

आगे अन्य दोष दिखाते हैं –

अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित्।।२७।।

अर्थ – हे अद्वैतवादी! अद्वैत द्वैत बिना नहीं हो सकता है। अद्वैत शब्द अपने अर्थके प्रतिपक्षी परमार्थ रूप द्वैतकी अपेक्षासे है; क्योंकि यह अद्वैत शब्द निषेधपूर्वक अखण्डपद है। जैसे अहेतुशब्द हेतु बिना नहीं होता है। जहाँ एक अर्थका वाचक एक पद हो, उसे अखण्ड पद कहा जाता है। यहाँ निषेधपूर्वक द्वैत शब्दके पृथक् दो अर्थ परमार्थभूत् नहीं हैं, एक ही अर्थ है। अतः अद्वैत अपने प्रतिपक्षी द्वैतके बिना नहीं हो सकता है। जहाँ

अखरविषाण ऐसा शब्द है, उससे अतिप्रसङ्ग नहीं आता है; क्योंकि यह विषाण शब्द का निषेध खर शब्द सहित हुआ, तब अखण्ड पद न रहा। खरविषाण शब्द खण्ड पद हुआ। इसका अर्थ कुछ वस्तु नहीं है। उसका निषेध भी वस्तु नहीं है। उसके समान यह अद्वैत शब्द नहीं है। इसका तो प्रतिपक्षी द्वैत शब्द है, उसका परमार्थ अर्थ विद्यमान है। इस प्रकार निषेधपूर्वक अखण्ड पद द्वैत बिना अद्वैत नहीं है। इसीमें ऐसा सामान्य वचन है। सज्ञावान पदार्थ प्रतिषेध्य (निषेध करने योग्य वस्तु) के बिना निषेध को प्राप्त नहीं होता है। यदि अखरविषाण की तरह हो तो उसकी संज्ञा वाला पदार्थ नही होता है। अतः ऐसा शब्द प्रतिषेध्य बिना भी होता है। पुनः वेदान्ती कहता है कि दूसरे ने जो अविद्या के कारण द्वैत माना है, उसके प्रतिषेध्य से अद्वैत सिद्ध होता है। इसका उत्तर यह है कि हे वेदान्ती तब तुम्हारे यहाॅ द्वैत की सिद्धि कैसे नहीं होती है?

अद्वैतवादी – हम अविद्या को वस्तुभूत नही मानते हैं, प्रमाण से अविद्या सिद्ध नहीं होती है। इससे द्वैत की सिद्धि नहीं होती है। यदि ब्रह्म को अविद्यावान मानेंगे तो अविद्या के अनर्थकपना आता है। इसके अविद्या नहीं हे, ऐसा अस्तित्व अविद्या का अविद्या मे ही कल्पित किया जाता है। यह अविद्या ब्रह्म के विषय में तीसरी है, ऐसे किसी भी प्रकार से अविद्या सिद्ध नही होती है। जैसे अविद्या का अनुभव होता है, इसी प्रकार ब्रह्म का अनुभव होता है। अतः प्रमाण रूप ज्ञान से अविद्या बाधित हो तो अविद्या को कैसे जानेगा? ब्रह्म का ज्ञान अविद्या के अनुभव बिना होता है। इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं है; क्योंकि अविद्या वस्तुभूत हो। तब बाधा सभव होती है। अविद्यावान् पुरूष अविद्या का निरूपण करने में समर्थ नहीं होता है। इस प्रकार वस्तु के वर्तने की अपेक्षा तो अविद्या की स्थापना नहीं है; क्योंकि वस्तु बिना अन्य में प्रमाण का व्यापार नहीं होता है। अविद्या वस्तु नहीं है अतः अविद्या के अविद्यापना मे साधारण लक्षण ऐसा है कि 'प्रमाण की बाधा को जो सहन नहीं कर सकती, ऐसा जिसका स्वभाव है सो अविद्या है'। यह संसारी के स्वानुभव के आश्रित है। अतः अद्वैतवादी के कुछ दोष नहीं आता है। द्वैतवादी संसारी प्रमाणबाधित माया प्रपंच की अनेक प्रकार कल्पना करता है। इससे द्वैतवादी के अनेक दोष आते हैं।

जैन – यदि समस्त प्रमाण से अतीत अविद्या को अङ्गीकार करे तो परीक्षावान् क्या कहलाया। अविद्या के भी कथंचित् वस्तुपना मान प्रमाण का

विषय मानना चाहिए। जो प्रमाण से सत् असत् का निश्चय करता है, वही परीक्षावान है। शब्दद्वैतवाद तथा संवेदनाद्वैतवाद रूप एकान्तपक्ष का भी ब्रह्मद्वैत पक्ष के समान निराकरण जानना चाहिए।।२७।।

कोई कहता है कि अद्वैत एकान्त का यदि निराकरण किया तो हम पृथकत्व एकान्त अङ्गीकार करेंगे। उससे आचार्य कहते हैं कि ऐसा अवधारण मत करो; क्योंकि पृथकत्व एकान्त भी बाधा सहित है। सो ही दिखलाते हैं –

पृथकत्वैकान्त पक्षे ऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः।।२८।।

अर्थ – पृथकत्व – सब पदार्थ भिन्न ही हैं, ऐसा एकान्त पक्ष होने से पृथकत्व नामक गुण से गुण और गुणी इन दोनों पदार्थो के भिन्नपना होने से वे दोनो अपृथक् – अभिन्न ही ठहरते हैं। इस प्रकार यह पृथकत्व नामक गुण ही नहीं ठहरता है; क्योंकि पृथकत्व गुण को एक को अनेक पदार्थो में ठहरा मानता है। अतः पृथक्त्वगुण कहना निष्फल हुआ। यहॉ ऐसा जानना चाहिए कि वैशेषिक द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, इस प्रकार छह पदार्थ मानता है। इनके उत्तरभेद इस प्रकार हैं – द्रव्य ६, गुण २४, कर्म ५, सामान्य २, विशेष अनेक तथा समवाय एक है। यह गुण समस्त द्रव्य, गुण आदि पदार्थो को भिन्न–भिन्न करता है, ऐसा मानता है। नैयायिक प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इस प्रकार सोलह पदार्थ मानते हैं। इनको वे भिन्न भिन्न ही मानते है। उनके यहॉ पदार्थो के सर्वथा भिन्न होने का पक्ष होने से उनसे पूछते हैं कि पृथकत्व नामक गुण से द्रव्य और गुण ये दोनों अभिन्न हैं या भिन्न हैं। यदि कहें कि अभिन्न हैं तो सर्वथा भिन्न का एकान्त पक्ष कैसे ठहरता है। यदि कहो कि द्रव्य गुण पृथकत्व गुण से भिन्न हैं तो द्रव्य और गुण अभिन्न ठहरे। पृथक्त्व गुण न्यारा है, उसने द्रव्य, गुण का क्या किया? कुछ भी नहीं किया; क्योंकि पृथक्त्व गुण एक है और अनेक में ठहरा मानते हैं। इस प्रकार इस कारिका के व्याख्यान से सर्वथा भेदवादी नैयायिक, वैशेषिकों को उनके सर्वथा पृथक्त्व व एकान्त पक्ष में दोष दिखलाया।।२८।।

आगे अनित्यवादी बौद्धमत वाले पृथकत्व एकान्त मानते हैं कि समस्त पदार्थ परमाणुरूप, निरंश, निरन्वय, विनश्वर तथा भिन्न भिन्न हैं।

उनमें किसी प्रकार मिलाप–जोड़ नहीं है। इस प्रकार एकान्त मानते हैं। उसके विषय में दोष प्रकट करने की इच्छा से आचार्य कहते हैं –

सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे।।२६।।

जीवादिक द्रव्य के एकपनेका लोप माने तथा अपनी पर्यायों से भी एकतारूप अन्वय न मानें तो सन्तान नहीं ठहरती है; क्योंकि क्रम रूप पर्यायो में जीवादिक द्रव्य का अन्वय रूप होना सन्तान है। वह सन्तान क्षणिक पक्ष की अपेक्षा पर्यायों के सर्वथा मानने में परमार्थभूत नहीं बनती है। वह अन्य सन्तान की तरह ठहरती है। समुदाय भी नहीं ठहरता है; क्योंकि एक स्कन्ध मे अपने अवयवों में एकता होना समुदाय है, यह समुदाय भी सर्वथा पृथकत्व पक्ष में नहीं बनता है। साधर्म्य भी नहीं ठहरता है। जिनके समान धर्म है, उनके समान परिणामों की एकता को साधर्म्य कहते हैं। पृथक्त्व एकान्तपक्ष में एकता का लोप होने से यह भी नहीं बनता है। प्रेत्यभाव – परलोक भी नहीं ठहरता है। मर मर कर फिर उत्पन्न होना परलोक कहलाता है। दोनों भवो में एक आत्मा का लोप मानने पर यह भी नही बनता है तथा वर्तमान में एवं इस भव में भी बाल्य, यौवन, वृद्धपना आदि अनेक अवस्थायें होती हैं, उनमें एकपने का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, यह अनुभव भी पृथक्त्व एकान्त पक्ष में विरोध को प्राप्त होता है, तब लेने देने का व्यवहार भी नष्ट हो जाता है। सन्तान, समुदाय तथा परलोक ये निरंकुश हैं – अवश्य हैं तथा प्रमाणसिद्ध हैं, उनका अभाव कैसे माना जायेगा। एकपना के लोप होने से पृथक्त्व एकान्तपक्ष श्रेष्ठ नहीं है।।२६।।

आगे पृथक्त्व एकान्तपक्ष ही में अन्य दोष दिखालाते हुए आचार्य कहते है –

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तरश्च ते द्विषाम्।।३०।।

अर्थ – ज्ञान ज्ञेय वस्तु से सत्स्वरूप की अपेक्षा भी यदि भिन्न मानें तो दोनों ही प्रकार असत्स्वरूप हो जायें। ज्ञान से सत् भिन्न मानें तब ज्ञान असत्स्वरूप हो तथा ज्ञेय से सत् भिन्न मानें तो ज्ञेय असत्स्वरूप होता है। ज्ञान से ही सत् भिन्न मानें तो ज्ञान का अभाव होने से ज्ञेय का भी अभाव

ही हो; क्योंकि ज्ञान माने तो ज्ञान का अविनाभाव तो परस्पर अपेक्षा से सिद्ध है, सो एक का अभाव होने से दूसरे का अभाव हो जायेगा। इससे आचार्य कहते है कि हे भगवन्! तुम्हारे द्वैषी जो सर्वथा एकान्तवादी हैं, उनके बाह्य ज्ञेय तो घट पट आदिक और अन्तरङ्ग ज्ञेय जीवात्मा तथा ज्ञान आदि उन सबका अभाव ठहरता है। अतः पृथकत्व एकान्त कहने वाले बौद्ध तथा वैशेषिक को यह दूषण सत्यार्थ है।।३०।।

आगे बौद्धमती को विशेष दूषण दिखलाते हैं –

सामान्यार्था गिरोन्येषां विशेषोनाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः।।३१।।

अर्थ – अन्य बौद्धमतियोंके मतमें वचन सामान्य अर्थ वाले हैं; क्योंकि उन वचनों से विशेष जो वस्तु का निज लक्षण है, वह नहीं कहा जाता है। उन बौद्धमतियों के सामान्य के अभाव से समस्त वचन मिथ्या ठहरते हैं। **भावार्थ** – बौद्ध ऐसा मानते हैं कि वचन सो सामान्यमात्र को कहते हैं तथा सामान्य वस्तुभूत नहीं है तथा स्वलक्षणरूप विशेष वचन के अगोचर हैं, तो ऐसे वचन उनके मत में समस्त ही मिथ्या ठहरते हैं। वचन बिना बौद्ध अपने मत का एक एकान्तरूप श्रेष्ठ है इस प्रकार मानने वाले वादी का उसी प्रकार का (बाधायुक्त) अवक्तव्य तत्त्व है, इस बात को आचार्य कहते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।३२।।

अर्थ – जो स्याद्वादनय के विद्वेषी हैं, उनके जिस प्रकार अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व परस्पर विरोध के कारण नही ठहरते हैं, उसी प्रकार पृथक्त्व, अपृथक्त्व, भाव भी परस्पर विरोधस्वरूप हैं अतः वे एक स्वरूप नहीं ठहरते हैं; क्योंकि यह भी प्रतिषेधस्वरूप हैं। सर्वथा एकान्त पक्ष में दो विरूद्ध धर्म वाले नहीं ठहरते हैं। जो सर्वथा अवक्तव्य तत्त्व मानते हैं, उनके भी 'तत्त्व अवक्तव्य है', ऐसा वचन भी कहना युक्त नहीं है। अतः अवक्तव्य एकान्त मानना भी श्रेष्ठ नहीं है।।३२।।

एकत्व आदिक एकान्त के निराकरण की सामर्थ्य से अनेकान्त तत्त्व सिद्ध हुआ तो भी उसके ज्ञान की प्राप्ति दृढ़ करने के लिए तथा कोई अनेकान्त तत्त्व के विषय में अन्य प्रकार की आशंका करता है, उसके निराकरण के लिए एकत्वानेकत्व के सप्तभंङ्ग प्रकट करने के इच्छुक

आचार्य उसके मूल दो भङ्ग स्वरूप जीवादि वस्तु के कहते हैं –

अनपेक्ष्ये पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुतः।

तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा।।३३।।

अर्थ – निश्चय से पृथक्त्व और एकत्व यदि परस्पर अपेक्षारहित हों तो दोनों ही अवस्तु ठहरें; क्योंकि दोनों के अवस्तुपना का साधन परस्पर निरपेक्षता हेतु है। एकत्व की अपेक्षा बिना पृथक्त्व अवस्तु है। पृथक्त्व की अपेक्षा बिना एकत्व अवस्तु है। इस प्रकार दोनों ही अवस्तु ठहरते हैं। परस्पर सापेक्ष नयकी अपेक्षा पृथक्त्व और एकत्व दोनों परमार्थ हैं, वस्तुरूप हैं। जैसे हेतुका स्वरूप बौद्धमती पक्षसत्व, सपक्षसत्व, विपक्षव्यावृत्ति इस प्रकार अपने तीन भेदो से विशिष्ट एक मानते हैं। उसके भी अन्वय और व्यतिरेक दो भेद मानते हैं। दोनों परस्पर सापेक्षपने से वस्तुभूत साधन ठहरते है उसी प्रकार पृथक्त्व और ऐक्य दोनों सापेक्ष ही वस्तुरूप हैं, निरपेक्ष अवस्तु हैं।

शङ्का – पृथकत्व ऐक्य के एकान्त का निषेध तो पहले किया ही था, फिर यह कारिका किसलिए कही?

समाधान – विधि, निषेध के अनुमान का प्रयोग बतलाने को फिर इसे स्पष्ट कहा है? परस्पर निरपेक्ष सापेक्ष के दोनों हेतु बतलाए हैं। समस्त मतों में साधन को अन्वय व्यतिरेक स्वरूप माना है सो परस्पर सापेक्ष बिना साधन सिद्ध नहीं होता है, तब अपना मत कैसे सिद्ध करें। अतः दृष्टान्त भी युक्त है। सर्वथा एकान्त मानने से कुछ भी सिद्ध नहीं होता है।।३३।।

आगे वादी आशंका करता है कि एकपने की प्रतीति से तथा पृथक्पने की प्रतीति से जीवादि पदार्थों के एकपना और पृथक्पना कैसे बनता है? एकपना तो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है तथा पृथक्पना सत् रूप एक मानें तो कैसे ठहरे? इस प्रकार प्रतीति के निर्विषयपना आता है। इस प्रकार की आशङ्का होने पर इसका विषय दिखाने की इच्छा से स्वामी समन्तभद्र आचार्य कहते हैं –

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादिभेदतः।

भेदाभेदव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत्।।३४।।

अर्थ – परस्पर सापेक्ष से तो पहली कारिका में बतलाया। यहाँ पुनः

उसके विस्तार से आश्रय कर कहते हैं। सत्सामान्य की अपेक्षा तो समस्त जीवादिक वस्तु एकस्वरूप हैं, इससे एकपना की प्रतीति निर्विषय नहीं है। इस प्रकार भेदाभेद की विवक्षा होने से असाधारण हेतु माना जाता है। सामान्य से तो अभेद विवक्षा से एक हेतु माना जाता है। भेद विवक्षा से विशेष के पक्षधर्म आदि भेद माने जाते हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।।३४।।

आगे वादी शङ्का करता है कि एकपना और पृथक्पना भेद विभेद की विवक्षा से सिद्ध होता है सो विवक्षा और अविवक्षा की तो वस्तु विषय नहीं है, वक्ता की इच्छा मात्र है। उसके वश से तो कोई वस्तु विषय नहीं है। इस प्रकार मानने वाले वादी से आचार्य कहते हैं –

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः।।३५।।

अर्थ – जिसमें अनन्त धर्म हैं ऐसा जो धर्मी विशेष्य (जिसमें विशेषण पाया जाता है) जीवादिक पदार्थ, उसमें विवक्षा तथा अविवक्षा करते हैं सो सत् विशेषण की करते हैं, असत् विशेषण की नहीं करते हैं। यदि कोई पूछे कि ऐसी विवक्षा और अविवक्षा कौन करता है? तो उसका उत्तर यह है कि जो एकत्व, पृथक्त्व आदि विशेषणों को चाहने वाले हैं, वे करते हैं। यहाँ विवक्षा, अविवक्षा, वक्ता के पदार्थ कहने, न कहने की इच्छा रूप है सो कहने की इच्छा करता है, वह सत् रूप विद्यमान होता है। उसी को कहने की इच्छा करता है। असत् अविद्यमान को कहने की इच्छा नहीं करता है। सर्वथा असत् की इच्छा करने पर उससे किस अर्थ की सिद्धि होती है? सर्वथा असत् तो गधे के सींग की तरह अर्थक्रिया से शून्य है। इस प्रकार पदार्थ में एकत्व, पृथक्त्व आदि जो विशेषण सत् रूप होते हैं, उनके चाहने वालों की विवक्षा, अविवक्षा होती है, असत् रूप की नहीं होती है, इस प्रकार जानना चाहिए।।३५।।

जो वादी ऐसा कहते हैं कि पदार्थ में परमार्थ से भेद ही है। अभेद कहा जाता है सो उपचार से है। यदि दोनों परमार्थ से कहे जायें तो विरोध नामक दोष आता है। पुनः कोई, अन्य ऐसा कहते हैं कि पदार्थो में परमार्थ से अभेद ही है तथा जो भेद कहा जाता है सो कल्पना मात्र है। उन दोनों वादियों से आचार्य कहते हैं –

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाऽ भेदौ न संवृतौ।
तावेकत्राऽविरूद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया।।३६।।

अर्थ – पदार्थों मे भेद और अभेद दोनो परमार्थभूत हैं, क्योंकि ये प्रमाण के विषय हैं। न संवृति – उपचार स्वरूप नही है। यहाँ भेदपक्ष, अभेदपक्ष, भेदाभेद पक्ष, इस प्रकार तीन पक्ष कथंचित् परमार्थभूत सिद्ध करना है। हे भगवन्! तुम्हारे मत मे भेद और अभेद सत्यार्थरूप हैं, वे एक वस्तु में विरूद्ध रूप होता नही है। जिनके मत में परस्पर निरपेक्ष भेदाभेद है, उन्ही के विरूद्ध रूप होते हैं, क्योंकि सर्वथा एकान्त प्रमाणगोचर नहीं है। यहाँ प्रमाण गोचर कहा सो प्रमाण का स्वरूप आगे कहेंगे।।३६।।

इस परिच्छेद मे कथचित् अद्वैत है, कथंचित् पृथक्त्व है। इस प्रकार मूल दो भङ्ग विधि–प्रतिषेध की कल्पना करके एक वस्तु मे अविरोध की अपेक्षा प्रश्न के वश से दिखलाए। शेष पॉच भङ्गो की प्रक्रिया, जिस प्रकार पहले कही, उसी प्रकार ही जोडनी। स्यात् एकत्व–पृथक्त्व, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् एकत्व अवक्तव्य, स्यात् पृथक्त्व अवक्तव्य, स्यात् एकत्व पृथक्त्व अवक्तव्य, इस प्रकार पॉच भङ्ग जानना चाहिए। इनके नययोग पूर्वोक्त प्रकार लगाना चाहिए।

चौपाई

एक अनेक पक्ष एकान्त, तजैं होय निजभाव जु संत।
यातैं स्वामिवचन तैं स्वाधि, स्याद्वाद धारो तजि आधि।।१।।

इति श्री स्वामी समन्तभद्रविरचित देवागम स्तोत्र की देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में स्याद्वाद स्थापनारूप द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

तीसरा परिच्छेद

आगे अब नित्य, अनित्य पक्ष का तीसरा परिच्छेद प्रारम्भ करते हैं –

दोहा

नित्य अनित्यजु पक्ष की, कथनी का प्रारम्भ।
करूँ नमूँ मंगल अरथ, जिन श्रुत गणी अदंभ।।१।।

प्रथम ही अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, पृथक्त्व एकान्त का निषेध कर स्थापना किया। अब इसके अनन्तर नित्यत्व, अनित्यत्व एकान्त के निराकरण का प्रारम्भ है। वहाँ प्रथम ही नित्यत्व एकान्त में दोष दिखाते हैं –

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्।।३७।।

अर्थ – नित्यत्वैकान्त – जो कूटस्थ, सदा एक सी रहे ऐसी वस्तु का अभिप्राय – उसका पक्ष होने से उस कूटस्थ में विक्रिया (परिणमन – एक अवस्था से अन्य अवस्था होना ऐसी क्रिया तथा परिस्पंद(चलना, एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र को प्राप्त होना) इस प्रकार की अनेक क्रियायें नहीं बनती हैं। कारक (कर्त्ता, कर्म आदि) का कूटस्थ में पहले ही अभाव है। जिसकी अवस्था में पलटना नहीं होता है, उसमें कारक की प्रवृत्ति कैसे बनेगी। जब कारक का अभाव ठहरा तब प्रमाण कहाँ, प्रमाण का फल प्रमिति कहाँ? क्योंकि जब प्रमाता कर्त्ता हो, तब प्रमाण का फल प्रमिति भी संभव होती है। यदि किसी के प्रति साधन नहीं होगा तो अवस्तु ठहरेगा, तब आत्मा की भी सिद्धि नहीं होगी। इस प्रकार नित्य एकान्त में दोष दिखलाया।।३७।।

साख्य मतवादी कहते हैं कि हम कारण रूप अवक्तव्य पदार्थ को नित्य मानते हैं तथा कार्यरूप व्यक्त पदार्थ को अनित्य मानते हैं, उससे विक्रिया बनती है। व्यक्त (जो पदार्थ किसी निमित्त से छिपा हो, उसका प्रकट होना) तो अभिव्यक्ति है और नवीन अवस्था होना उत्पत्ति है। इस प्रकार व्यक्त पदार्थ को अनित्य मानकर विक्रिया होती हुई कहते हैं, उसमें दूषण दिखाते हैं –

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद् बहिः।।३८।।

अर्थ – नित्यत्व पक्ष का एकान्तपक्षवादी सांख्यमती कहता है कि जो व्यक्त अभिव्यक्ति और उत्पत्ति रूप हैं, वे प्रमाण और कारकों द्वारा व्यक्त होते हैं। यहाँ दृष्टान्त कहते हैं – जैसे इन्द्रिय अपने विषय रूप पदार्थ को व्यक्त

—प्रकट करती हैं, उसी प्रकार प्रमाण कारक व्यक्त पदार्थ को प्रकट करते हैं। उसके निषेध करने के लिए आचार्य कहते हैं कि हे भगवन्! उन एकान्तवादियों के तो प्रमाण और कारक भी नित्य ही हैं। सर्वथा नित्य कारणों से अनित्य कार्य नहीं होता है। इस कारण वे वादी तुम्हारे सही शासन से बाह्य हैं। उनके विकार्य अवस्था पलटने रूप विकार स्वरूप कार्यकहाँ सिद्ध होता है? कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। यदि नित्य प्रमाण कारकों से अभिव्यक्ति, उत्पत्ति, रूप पदार्थों को प्रकट हुए कहें तो बनता नहीं है तथा उन व्यक्तों के भी नित्यपना आना चाहिए, सो नित्यपना है नहीं। इस प्रकार उनके नित्य एकान्त पक्ष में विक्रिया नहीं बनती है।।३८।।

आगे पुनः वादी कहते हैं कि हम कार्य —कारण भाव मानते हैं, अतः हमें कुछ विरुद्ध नहीं है। इसके विषय में आचार्य कहते हैं कि यह तो बिना विचारा सिद्धान्त है। कार्य उत्पन्न होता है, उसमें दो विकल्प हैं — या तो सत् रूप उत्पन्न होना कहना या असत् रूप उत्पन्न होना कहना। इन दोनों विकल्प रूप पक्ष में दोष दिखाते हैं —

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति।
परिणाम प्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनि।।३९।।

अर्थ — यदि कार्य सर्वथा सत् हो, कूटस्थ के समान हो तो जैसे सांख्यमत में पुरूष नित्य है, उसी प्रकार कार्य भी नित्य होगा, उत्पन्न होने योग्य नहीं होगा। यदि सांख्य कहता है कि वस्तु की एक अवस्था से जिस प्रकार अन्य अवस्था होती है, इसी प्रकार विवर्तरूप कार्य उत्पन्न होता है। उसके विषय में कहते हैं कि ऐसा मानने पर वस्तु परिणामी ठहरती है। यह परिणाम की कल्पना नित्यत्व एकान्त की बाधक है। यदि सांख्य कहें कि कार्य असत् रूप उत्पन्न होता है तो सांख्य मत में जो यह कहा है कि असत् का करना असम्भव है, इस सिद्धान्त से विरोध आता है। इस प्रकार नित्यत्व एकान्त के कहने वाले जो सांख्यमती आदि हैं, उनके कार्य की उत्पत्ति का अभाव होता हैं।।३९।।

कार्य का अभाव होने से अनित्यत्व एकान्तवादियों के दोष आता है, इसके विषय में प्रकट रूप करते हैं।

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्ध—मोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नाऽसि नायकः।।४०।।

अर्थ – हे भगवन्! अनेकान्त के उपदेशक आप जिनके स्वामी नहीं हो, उन सर्वथा नित्यवादि एकान्तवादियों के पुण्य पाप की क्रिया–काय, वचन, मन की शुभाशुभ प्रवृत्ति रूप तथा उत्पन्न होने स्वरूप क्रिया नहीं बनती है। इसी से परलोक भी नहीं बनता है। क्रिया का फल सुख दुःख आदि क्यों हों? अपितु नहीं होगा है। बन्ध और मोक्ष ये दोनों भी नहीं होते हैं। अतः नित्य एकान्त का मत परीक्षावालों के लिए आदर करने योग्य नहीं है; क्योंकि इस मत में पुण्य, पाप, परलोक, बन्ध और मोक्ष सम्भव नहीं हैं। उस मत का परीक्षावान किस प्रयोजन से आश्रय लेगा, अर्थात् आश्रय नहीं लेगा।।४०।।

क्षणिकमती बौद्ध कहते हैं कि यह सत्य है कि नित्यत्व एकान्त में दोष हैं। अतः क्षणिक एकान्त प्रतीति सिद्ध है, अतः कल्याणकारी है। ऐसा कहने वाले वादी से आचार्य कहते हैं –

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम्।।४१।।

अर्थ – क्षणिक एकान्तवाद के होने से भी प्रेत्यभाव – परलोक, बन्ध, मोक्ष आदि का होना असम्भव है; क्योकि प्रत्यभिज्ञान (पहले तथा पिछले समय में जो अवस्था हो, उसका जोड रूप ज्ञान) तथा स्मरण ज्ञान आदि के अभाव से कार्य का प्रारम्भ सम्भव नहीं होता है। कार्य के आरम्भ बिना पुण्य–पाप, सुख–दुःख आदि फल कैसे होंगे? अपितु नहीं होंगे। यदि क्षणिकों की सन्तान को कार्य का आरम्भ करने वाला कहें तो सन्तान परमार्थभूत क्षणिक एकान्त में सम्भव नहीं होती है। एक अन्वयी ज्ञाता द्रव्य आत्मद्रव्य ठहरे तो सन्तान सत्य ठहरे, किन्तु क्षणिक पक्ष में ऐसा नहीं है। अतः क्षणिक एकान्तमत हितकारी नहीं है। क्योंकि परलोक, बन्ध, मोक्ष सम्भव न हो तो क्या हितकारी है? जैसी नित्यत्व आदि एकान्त है, वैसा ही यह है। अतः ऐसे मत का परीक्षावान आदर नहीं करता है।।४१।।

इस क्षणिक पक्ष में सत् रूप कार्य की उत्पत्ति नहीं बनती है। सत्

रूप कार्य की उत्पत्ति यदि क्षणिकवादी कहता है तो उसके मत में विरोध आता है। यदि असत् रूप ही कार्य कहें तो उसमें दोष दिखलाते हैं –

यद्यसत्सर्वथाकार्यं तन्माजनि खपुष्पवत्।
मोपादाननियामोऽभून्मा ऽऽश्वासः कार्यजन्मनि।।४२।।

अर्थ – जो कार्य है, वह सर्वथा असत् ही उत्पन्न होता है, यदि ऐसा माना जाय तो वह कार्य आकाश के फूल की तरह न हो। उपादान आदिक जो कार्य के उत्पन्न होने के कारण हैं, उनका भी नियम न ठहरे। उपादान का नियम न ठहरे तो कार्य के उत्पन्न होने का विश्वास न ठहरे कि इसकारण से यही कार्य नियम से उत्पन्न होगा। जैसे जो अन्न उत्पन्न होने का कारण जौ का बीज ही है। इस प्रकार उपादान कारण का नियम हो तो उस कारण से उसी कार्य की उत्पत्ति का विश्वास ठहरे। क्षणिक एकान्त पक्ष में असत् कार्य मानने पर यह नियम नही ठहरता है।।४२।।

क्षणिक एकान्तपक्ष मे अन्य दोष भी आते हैं, इसके विषय में कहते हैं–

न हेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात्।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक्।।४३।।

अर्थ – क्षणिक एकान्त पक्ष में हेतुभाव और फलभाव, आदि शब्द से वास्य (वासना योग्य), वासक (वासना लेने वाला), कर्म और कर्म फल के सम्बन्ध और प्रवृत्ति आदि ये संभव नही होते है, क्योकि ये भाव अन्वय के बिना नहीं होते हैं। जैसे भिन्न अन्य संतान है, वैसे संतानी भी भिन्न ही हैं, वे भी अन्य सन्तान की तरह हैं। संतानी क्षण से भिन्न अन्य सन्तान के समान सन्तान कुछ वस्तु नहीं है। उन सन्तानों की एकता ही को सन्तान कहते हैं। इस प्रकार अन्य भाव के अन्वय बिना हेतु – फल भाव आदि नहीं बनते हैं। सन्तान सन्तानी का अन्वय होना ही सत्यार्थ सन्तान है। उस ही के होने पर हेतु – फल आदि बनते हैं।।४३।।

आगे पुनः क्षणिकवादी के वचन का उत्तर आचार्य देते हैं –

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृत्तिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृतिर्न स्याद्विना मुख्यान्न संवृतिः।।४४।।

अर्थ – सतानी जो क्षण हैं, उनसे सन्तान(क्षणों के प्रवाह की परिपाटी) को इस प्रकार कहते हैं कि जो यह क्षणों की सन्तान है सो ऐसे क्षण हैं। उनसे भिन्न सन्तान कुछ परमार्थभूत नहीं है। परमार्थ से देखा जाय तो क्षण अन्य ही हैं और सन्तान से अनन्य कहे जाते हैं। सो वह व्यवहार–उपचार है। इस प्रकार क्षणिकवादी कहते हैं। उससे आचार्य कहते है – यदि अन्य मे अनन्य कहना सर्वथा संवृति–उपचार है तो मृषा (झूठा) असत्य कैसे न हो, यह तो झूठ ही है। यदि बौद्ध कहे कि जो सन्तान है सो मुख्यार्थ है, सत्यार्थ ही है, तो जो मुख्यार्थ होगा, वह सवृति–उपचार नही होगा। पुनः बौद्ध कहता है कि सन्तान तो संवृति ही है तो (हमारा कहना है कि) संवृति से मुख्य प्रयोजन सत्यार्थ जो प्रत्यभिज्ञानादिक हैं, वे परमार्थभूत सन्तान के बिना कैसे सधैं। जैसे माणिकों मे अग्नि का अध्यारोप कर उपचार किया जाता है तब माणिकों से (बालक से) नियम का कारण नही होता है, उसी प्रकार उपचरित सन्तान सन्तानियों के नियम का कारण नहीं होता है। संवृति उपचार है। वह भी मुख्य सत्यार्थ के बिना तो होती नहीं है। जैसे सच्चा सिह होता है तो उसका चित्र भी होता है। यदि सच्चा सिंह ही नहीं होगा तो उसका चित्र भी कैसे होगा। सन्तान परमार्थभूत नहीं ठहरती है, तब क्षण जो सन्तानी है उनके प्रति शङ्कापना आता है; क्योंकि इन सन्तानी क्षणों के कार्य प्रति नियम का कारणपना नहीं बनता है। न्यारे होकर एक कार्य करें तब शङ्कर दोष आता है।।४४।।

आगे क्षणिकवादी बौद्ध कहते हैं कि सन्तान यदि परमार्थभूत है तो एक सन्तान सन्तानियों से भिन्न है अथवा अभिन्न है? या भिन्नाभिन्न रूप है अथवा दोनों भावों से रहित है? ऐसा सिद्ध नहीं होता है। अतः कहते हैं –

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्य योगतः।
तत्त्वाऽन्यत्वमवाच्यं चेत्तयोः सन्तानतद्वतोः।।४५।।

अर्थ – क्षणिकवादी बौद्ध ऐसा कहते हैं कि सन्तान और संतानी दोनों सतरूप हैं या असत् रूप हैं? अथवा सत्, असत् इन दोनों रूप हैं या

दोनो रूप नहीं हैं? इस प्रकार सब ही धर्मों में इन चार विकल्प रूप वचन के कहने का अयोग है। कुछ कहा नहीं जाता है। इसी प्रकार सन्तान, सन्तानी के भी तत्पना, अन्यपना कहने का अयोग है। यदि वस्तु को धर्मों से अनन्य कहे तो वस्तुमान ही ठहरे। यदि वस्तु से अन्य कहा जाय तो इस वस्तु को धर्मों से अनन्य कहें तो वस्तुमान ही ठहरे। यदि वस्तु से अन्य कहा जाय तो इस वस्तु का यह धर्म है, ऐसा कहना नहीं बनता है। दोनों कहें तो दोनों दोष आवें। दोनों रहित कहें तो वस्तु निःस्वभाव ठहरे। इस प्रकार सन्तान, सन्तानी के तत्त्व, अन्यत्वपना अवक्तव्य ही सिद्ध होता है।।४५।।

ऐरा बोद्ध कहते हैं। उससे आचार्य कहते हैं कि ऐसा कहने वाले को ऐसा कहना –

अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पो ऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम्।।४६।।

अर्थ – क्षणिकवादी से आचार्य कहते हैं सर्वधर्मों मे चार कोटि के विकल्प कहने का वचन अयोग है तो चार कोटि का विकल्प अवक्तव्य है; यह वचन भी मत कहो। ऐसा होने से पदार्थ सब विकल्पों से रहित अवस्तु ही ठहरता है; क्योंकि सब धर्मों से रहित हुआ तब विशेषण विशेष्य भाव से भी रहित हुआ। अतः अवस्तु ही हुआ।।४६।।

जो सर्वथा विशेष्य विशेषणसे रहित हो, उसका प्रतिषेध करना भी नहीं बनता है। अतः वस्तुका ही प्रतिषेध करना बनता है। इसी बातको कहते हैं –

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः संज्ञिनः सतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः।।४७।।

अर्थ – जो सत्ता सहित संज्ञी पदार्थ है, उसी का द्रव्यान्तर, क्षेत्रान्तर, कालान्तर तथा भावान्तर से अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की अपेक्षा निषेध किया जाता है। असत्तारूप का तो निषेध संभव नहीं होता है। सर्वथा अवस्तु प्रतिषेध का विषय नहीं है; क्योंकि असत् भेद रूप तो अवस्तु है। वह विधि, निषेध का स्थान ही नहीं है। कथंचित् सत् विशेष

पदार्थ ही विधि और निषेध का आधार है। अतः यह बात सिद्ध हुई कि अन्य वादियों ने जो सब धर्मों से रहित तत्त्व माना है, वह अवस्तु है।

अवस्तु अवक्तव्य है, ऐसा कहते हैं –

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सर्वान्तैः परिवर्जितम्।
वस्त्वेवाऽवस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।४८।।

अर्थ – जो 'सर्वान्तैः परिवर्जितं' – सर्व धर्मों से रहित है, वह धर्मी नहीं अवस्तु है; क्योंकि ऐसा पदार्थ किसी प्रमाण का विषय नहीं है, वही अनभिलाप्य– अवक्तव्य हैं। यहाँ क्षणिकवादी कहता है कि समस्त धर्मों से रहित अवस्तु अवक्तव्य है ऐसा भी तुम कैसे कहते हो? उस बौद्ध के प्रति कहते हैं कि हम जिसे अवस्तु कहते है, वह सर्व धर्मों से रहित को नहीं कहते हैं। सत् असत् इत्यादि अनेकान्तात्मक वस्तु को कहते हैं। ऐसा होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा प्रक्रिया के विपर्यय के वश से वस्तु को ही अवस्तु कहता हूँ। सर्वथा एकान्तसे सर्व धर्मों से रहित को अवस्तु माना है सो परवादीको कल्पनाकी अपेक्षा लेकर कहना है। परमार्थसे तो; क्योंकि सर्वधर्मोंसे रहित है, अतः अवस्तु है, ऐसा कहना भी हमारा नहीं है।

हमारे यहाँ ऐसा है – जैसे घट को अन्य घट की अपेक्षा अघट कहते हैं, उसी प्रकार अन्य वस्तु को ही अवस्तु कहते हैं, इसमें विरोध नहीं है। जैसे किसी ने कहा कि अब्राह्मण को लाओ तो वहाँ पर जानना चाहिए कि ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादिक को बुलाया है। वहाँ ब्राह्मण का सर्वथा अभाव नहीं कहा है। भाव ही को अपेक्षा से अभाव कहते हैं। इसी प्रकार वस्तु को अवस्तु कहना अपेक्षा से है। जो सर्वथा सर्व धर्मों से रहित है, वह वस्तु तो अवक्तव्य ही है, ऐसा जानना चाहिए।।४८।।

आगे क्षणिकवादियों को कुछ दोष दिखलाते हैं –

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थ – विपर्ययात्।।४९।।

अर्थ – अन्य वादियों के सर्वान्ताः – सर्व धर्म अवक्तव्य हैं। उनके

धर्म के उपदेश रूप तथा अपने तत्त्व का साधन रूप तथा पर के दूषण रूप वचन क्या हैं? अपितु कुछ भी नहीं, तब मौन ही सिद्ध हुआ। वादी कहता है संवृति – व्यवहार के प्रवर्तने को उपचार रूप वचन हैं। उसको ऐसा कहते हैं कि परमार्थ से विपर्यय – उपचार है, सो तो मिथ्या है, असत्य है। पुनः वादी कहता है कि कोई मौनी ऐसा कहे कि मेरे मौन है, उसका ऐसा कहना मौनविरोधी है तो भी अन्य लोगों को बतलाने के लिए कहते हैं, सो उपचार है। उसी प्रकार सब धर्म अवक्तव्य हैं तो भी पर के बतलाने को उपचार रूप वचन से 'अवक्तव्य, ऐसा वचन कहा जाता है उस वादी से कहते हैं कि अवक्तव्य कैसे संभव है? स्वरूप से अवक्तव्य है या पररूप से है या दोनों रूप से है? अथवा तत्त्वस्वरूप से है या मृषास्वरूप से है? इस प्रकार विचार करेंगे तो कोई भी पक्ष नहीं ठहरता है। यदि स्वरूप से अवक्तव्य है तो अवक्तव्य कैसे? जो अपना रूप है, वह कहने में आता है। पर रूप की अपेक्षा अवक्तव्य है तो स्वरूप से वक्तव्य ही ठहरता है। दोनों पक्ष मानने में दोनो दोष आते हैं। तत्त्वरूप से यदि अवक्तव्य कहता है तो व्यवहार से वक्तव्य कहना ठहरता है तथा मृषापने से अवक्तव्य कहना, न कहना समान ही है। इस प्रकार बहुत कहनेसे क्या? सर्वथा अवक्तव्य कहनेमेंतो अवक्तव्य है, ऐसा कहना भी नहीं बनता है। तब अन्य को प्रतीति उत्पन्न कराने का अयोग है।।४९।।

आगे सर्वथा अवक्तव्य कहने वाले वादी से कहते हैं कि अवक्तव्य कहता है? इस प्रकार पूछकर दोष दिखलाते हैं –

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावत्किमबोधतः।
आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटम्।।५०।।

अर्थ – अवक्तव्यवादी से कहते हैं कि तुम तो अवक्तव्य कहते हो सो अशक्यत्वात् तुम्हारे कहने की सामर्थ्य नहीं है, उस अपेक्षा कहते हो या अभाव है, अतः अवक्तव्य कहते हो, या अबोधतः – तुम्हारे तत्त्व का ज्ञान नहीं है, अतः अवक्तव्य कहते हो। इस प्रकार तीन पक्ष पूछे। इनके सिवाय

अन्य पक्ष कहता है तो इन्हीं में अन्तर्भूत होता है। आदि का पक्ष तो अशक्यपना और अन्त का अबोध ये दोनों पक्ष बनते नहीं है। अतः क्षणिक मत के आप्त बुद्ध से सर्वज्ञता कही है तथा क्षमा, मैत्री, ध्यान, दान, वीर्य, शील, प्रज्ञा, करूणा, उपाय, प्रमोद स्वरूप दश बल माने हैं, उस बुद्ध के असमर्थता कैसे बने? मध्यम पक्ष 'अभाव है, सो बौद्धमत वाले से कहते है कि अब ब्याज (छल) से क्या? प्रकट रूप से तत्व का सर्वथा अभाव है, इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहो किन्तु ऐसा कहने से ठीकपना नहीं आता है। मायाचारी करने मे अनाप्तपने का प्रसङ्ग आएगा। इस प्रकार सर्वथा अभाव कहने से अवक्तव्य और शून्य मत मे कुछ भेद नहीं है। इस प्रकार बौद्धमत वाले, शून्यमत का प्रसङ्ग आता है। पुनः यदि ऐसा कहे कि क्षणक्षय तत्व का सङ्केत नही किया जाता है, अतः अवक्तव्य है, उससे कहते हैं कि वस्तु का क्षणक्षय मात्र स्वरूप नहीं है। सामान्य विशेष स्वरूप तथा नित्य, अनित्य रूप जात्यन्तर है। अतः कथचित् संकेत करना सभव है। प्रत्यक्षगम्य स्वलक्षण मे सङ्केत होता ही है। जो वचनगोचर धर्म है, उसमें सङ्केत संभव नहीं है, इस प्रकार सर्वथा अवक्तव्यवादी क्षणिकवादी के शून्यवाद आता है।।५०।।

आगे कहते हैं कि इसी से क्षणक्षय रूप एकान्तरूप में किए हुए कार्य का तो नाश और बिना किये के होने का प्रसङ्ग आता है। सो ऐसा तो उपहास का ठिकाना है –

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बद्ध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते।।५१।।

अर्थ – निरन्वय क्षणिक चित्त है। वह चित्त प्राणी के घातने का अभिप्राय करता है कि मैं इस प्राणी का घात करूँ, इस प्रकार अभिसंधि वाला चित्त तो घातता नहीं है; क्योंकि जिस क्षण में अभिप्राय किया, उस ही क्षण में वह चित्त उत्पन्न हुआ, उसने हनन किया। जो चित्त हिंसा का अभिप्राय करने वाले चित्त से तथा हिंसा करने वाले चित्त से, इस प्रकार दोनों से भिन्न उत्पन्न हुआ, उस चित्त के हिंसा का बँधा हुआ फल हुआ। जिसके बंध हुआ

वह तो नष्ट हुआ, तब अन्य चित्त बंध से छूटा। इस प्रकार किए का नाश ओर बिना किए कहने का प्रसङ्ग आता है सो यह हास्य का स्थान है। सन्तान तथा वासना कहें तो परमार्थ से यह भी क्षणिकवादी के नहीं बनता है। स्याद्वादी के कथंचित् सर्वभाव निर्बाध संभव है।।५१।

आगे क्षणिकवादी के इसी अर्थ को विशेषरूप से कह कर दूषण दिखलाते हैं–

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्नहिंसकः।
चित्तसन्ततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः।।५२।।

अर्थ – क्षणक्षय एकान्तवादी नाश को अहेतुवादक कहते हैं। जिस वस्तु का विनाश होता है, वह वस्तु स्वयमेव बिना हेतु के विनाश को प्राप्त होती है। यदि ऐसा कहते हैं तो जो हिंसा करने वाला हिंसक है, वह हिंसा का हेतु नहीं ठहरेगा। चित्त सन्तान का मूल से नाश होना, उसे (बौद्ध) मोक्ष मानते हैं। मोक्ष से अष्टाङ्ग हेतु, सम्यक्त्व, संज्ञा–संज्ञी वचन तथा काय का व्यापार, अन्तर्व्यायाम, अजीवस्मृति, ध्यान और समाधि ये हैं। बुद्ध धर्म का अङ्गीकार करना सम्यक्त्व है वस्तु का नाम मानना संज्ञा–संज्ञी है, तथा वचन तथा काय का व्यापार, अन्तर्व्यायाम श्वासोछवास का निरोध करना है, जीव का अभाव अजीव है। पिटकत्रय शास्त्र की चिन्ता स्मृति है, एकाग्र होना ध्यान है, लय होना समाधि है, इस प्रकार अष्टाङ्गहेतुक मोक्ष कहना नहीं बनता है। इस प्रकार नाश को हेतु बिना कहने में दोष है।।५२।।

बौद्ध विरूप कार्य अर्थात् विसदृश कार्य के लिए हेतु मानते हैं। उन्हें दोष दिखलाते हुए कहते हैं –

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतुसमागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत्।।५३।।

बौद्धों का कहना है कि विरूप कार्य–हिंसा तथा बन्ध, मोक्ष के प्रारम्भ के लिए हिंसक तथा सम्यक्त्व आदि आठ अङ्ग वाले हेतु का समागम माना जाता है। इस प्रकार कहने वाले बौद्धों से आचार्य कहते हैं कि आपका माना हुआ यह हेतु अपने आश्रयी नाश और उत्पाद से अन्य नहीं है, अनन्य=

अभेद रूप है। जो नाश का कारण है, सो ही उत्पाद का कारण है, इसमें भेद नहीं है। इस प्रकार अयुक्त भाव और भावी अभेदरूप होते हैं, इस कारण उनका कारण भी भिन्न नहीं होता है। इस प्रकार पहले आकार का विनाश और उत्तर आकार के उत्पाद का कारण एक ही है। अतः जो उत्पाद को तो हेतु से माने और नाश को अहेतुक माने सो कैसे बनता है? जैसे जो मुद्गर घट के नाश दोनों ही हेतु के बिना नहीं होते हैं।।५३।। आगे बौद्धों से कहते हैं कि तुम्हारे क्षण से परमाणु उत्पन्न होते हैं या स्कन्ध सन्ततियाँ। यदि कहोगे कि परमाणु उत्पन्न होते हैं तो इसमें हेतु ओर फलभाव का विरोध आएगा। जैसे विनाश को हेतु के बिना मानते हो, उसी प्रकार उत्पाद भी हेतु बिना मानो। यदि स्कन्ध सन्तति को उत्पन्न हुआ मानते हो तो उसमें दोष दिखलाते हैं –

स्कन्धाः सन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत्।।५४।।

अर्थ – रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पाँच स्कन्ध हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण के परमाणु रूप स्कन्ध हैं। सविकल्प निर्विकल्प ज्ञान विज्ञान स्कन्ध हैं, वस्तुओं के नाम संज्ञास्कन्ध हैं तथा ज्ञान, पुण्य तथा पाप की वासना संस्कार स्कन्ध हैं। उनकी सन्तान स्कन्ध सन्तति है। वे असंस्कृत हैं – अकार्य रूप हैं; क्योंकि इनके संवृतिपना है – उपचार से (बुद्धि कल्पित) हैं। बौद्ध परमाणुओं को सर्वथा भिन्न ही मानता है। अतः सन्तान, समुदाय आदि कल्पनामात्र हैं। अतः उस स्कन्धसन्तति के स्थिति, उत्पत्ति, विनाश सम्भव नहीं है; क्योंकि ये स्कन्ध सन्ततियाँ बिना की हुई हैं, कार्य कारण रूप नहीं हैं। बुद्धिकल्पित के क्या स्थिति, उत्पत्ति, विनाश होगा। यह गधे के सीग की तरह कल्पित है। अतः पहली कारिका में जो कहा था कि विरूप कार्य के लिए हेतु का व्यापार माना जाता है, उसमें भी बिगाड़ आता है। यदि स्कन्धसन्तान ही झूठा है, तब कौन रहा? जिसके लिए हेतु का व्यापार माना जाय। इस प्रकार क्षणिक एकान्त पक्ष श्रेष्ठ नहीं है। जैसे नित्य एकान्त पक्ष श्रेष्ठ नहीं है, उसी प्रकार परीक्षा करने पर यह भी सम्भव नहीं है।।५४।।

आगे नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोनों पक्ष सर्वथा एकान्त मानने से दोषयुक्त दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्ते ऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।५५।।

अर्थ – जो स्याद्वादन्याय के विद्वेषी हैं, उनके नित्यत्व और अनित्यत्व ये दोनों पक्ष एकस्वरूप नहीं बनते हैं; क्योंकि दोनों पक्षों में विरोध है। जैसे जीने और मरने में विरोध है। इस प्रकार एक स्वरूप बनता नहीं है। विरोध दूषण के भय से अवाच्यता–अवक्तव्यैकान्त माने तो यह भी अयुक्त है; क्योंकि 'अवाच्य है', ऐसा कहना भी नहीं बनता है। ऐसा कहने पर भी अवक्तव्यपने का एकान्त तो न रहा।।५५।।

इस प्रकार नित्य आदि एकान्त ठहरा। अतः सामर्थ्यवश अनेकान्त की सिद्धि हुई। फिर भी शून्यवादी के आशय को नष्ट करने के लिए तथा अनेकान्त के ज्ञान की दृढ़ता के लिए स्याद्वादन्याय के अनुसार नित्यवादी अनेकान्त को आचार्य दिखलाते हैं –

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः।।५६।।

अर्थ – हे भगवन्! स्याद्वादन्याय के नायक आप अरहंत के समस्त जीव आदिक तत्त्व कथंचित् नित्य ही हैं; क्योंकि प्रत्यभिज्ञायमान हैं। प्रत्यभिज्ञान प्रमाण से पूर्व, उत्तरदशा में 'यह वही है, जो पहले देखा था, इस प्रकार एकपना सिद्ध होता है, यही नित्य है। यह प्रत्यभिज्ञान निर्विषय नहीं है; क्योंकि इसका अविच्छिन्न रूप से अनुभव होता है। क्षणिकवादी कहते हैं कि पूर्वोत्तरदशा में जो सदृशभाव है, उसे एकत्व मानना भ्रम है। उस क्षणिकवादी के प्रति कहते हैं कि पूर्वोत्तर काल की दोनों दशाओं में अन्य अन्य हैं, ऐसा अनुभव किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है। अतः एकत्व प्रत्यभिज्ञान ही सत्यार्थ सिद्ध होता है। यह प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् नहीं है; क्योंकि ऐसा मानने पर बुद्धि के असंचार का दोष आता है। यदि इस प्रत्यभिज्ञान का विषय नित्यता न हो तो अविच्छेद रूप से अनुभव न

हो, तब बुद्धि का संचार कैसे हो? निरन्वय विनाश होने पर एक को छोड़कर दूसरे बुद्धि का संचार कैसे हो? निरन्वय विनाश होने पर एक को छोडकर दूसरे पर बुद्धि कैसे जाय; जो मैंने पहले देखा था, वही मैं वर्तमान काल में देख रहा हूँ, इस प्रकार एक द्रव्य बिना पूर्वोत्तरदशा में बुद्धि का संचार नहीं होगा। अतः प्रत्यभिज्ञान निर्विषय नहीं है। इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान वस्तु को कथंचित् नित्य सिद्ध करता है। समस्त जीवादिक वस्तुओं को कथंचित् नित्य सिद्ध करता है, क्योंकि काल का भेद है। यहाँ भी प्रत्यभिज्ञान प्रमाण से सिद्ध है; क्योंकि क्षणिक बिना भी प्रत्यभिज्ञान नहीं होता है। यह क्षणिक भी प्रत्यभिज्ञानका ही विषय है; क्योंकि पूर्वोत्तर पर्याय स्वरूप कालभेद नहीं मानेंगे तो बुद्धि के संचार का दोष आता है। कालभेद बिना बुद्धि का संचार कैसे कहा जायेगा। पूर्वदशा का स्मरण और वर्तमान दशा का दर्शन रूप बुद्धि का संचार कैसे कहा जायेगा। पूर्वदशा का स्मरण और वर्तमान दशा का दर्शन रूप बुद्धि संचारण पूर्वोत्तर दशारूप पर्याय में होता है। तब ही प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें विरोध आदि दोष भी नहीं है। सर्वथा एकान्त पक्ष में ही दोष आता है।।५६।।

आगे भगवान् ने मानो पूछा कि जीव आदि वस्तु के उत्पाद विनाश रहित स्थितिमात्र किस स्वरूप से है? एक वस्तु त्रयात्मक कैसे सिद्ध होती है। इस प्रकार पूछने पर मानो आचार्य कहते हैं –

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्।।५७।।

अर्थ – वस्तु सामान्य स्वरूप से तो न उत्पन्न होती है और न विनाश को प्राप्त होती है; क्योंकि प्रकट अन्वय स्वरूप है। विशेष की अपेक्षा उत्पन्न होती है, विनाश को भी प्राप्त होती है। एक साथ एक वस्तु में देखें तब उत्पन्न होती है, विनाश को भी प्राप्त होती है और स्थिर भी है। इस प्रकार तीन भावों रूप सत् वस्तु है। सामान्य स्वरूप तो सब अवस्था में साधारण स्वभाव है। उसे अन्य रूप द्रव्य कहते हैं। विशेष व्यतिरेक रूप पर्याय है।

यहाँ व्यक्त ऐसा विशेषण है सो प्रकट प्रमाण से अबाधित सामान्य, विशेष रूप ही सिद्ध होता है, इस प्रकार की जानकारी कराते हैं। एक साथ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, तीनों कहा सो प्रमाण का विषय है। सत् का लक्षण ऐसा ही सिद्ध होता है।।५७।।

आगे अन्य वादी कहते हैं कि जो सत् का लक्षण त्रयात्मक किया सो या तो सत् नित्य ही बने या उत्पन्न होना, विनाश होना रूप अनित्य ही बने। नित्यानित्य में तो विरोध है। अतः यदि उत्पाद और व्ययरूप हो तो पहले इसका कुछ अस्तित्व नहीं है, नवीन ही उत्पन्न होता है, ऐसा कहना चाहिए। यदि नित्य रूप से पहले था तो उसका नाश कैसे हो? यदि पूर्व में अनित्य ही था तो कार्य जो उत्पन्न हुआ या विनाश को प्राप्त हो गया। उसके नवीन होने पर कार्य को सत् कैसे कहेंगे? इस प्रकार जो तर्क करता है, उससे आचार्य कहते हैं कि कार्य का उत्पत्ति के पूर्व तो अभाव स्वरूप ही था। यह अभाव स्वरूप जिस प्रकार है, उस प्रकार से दिखलाते हैं –

कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत्।।५८।।

हेतु अर्थात् उपादान कारण, उसका क्षय (विनाश) है, सो ही कार्य का उत्पाद है; क्योंकि हेतु से कार्य की उत्पत्ति होती है। जो कार्य से सर्वथा अन्य है, उसके नियम नहीं है। वे उत्पाद, विनाश भिन्न लक्षण से न्यारे न्यारे हैं कथंचित् भेद रूप हैं। जाति आदि के अवस्थान से भिन्न नहीं है– कथंचित् अभेद रूप हैं। परस्पर अपेक्षा रहित हो तो अवस्तु हैं – आकाश के फूल तुल्य हैं। यहाँ जैसे कपाल का उत्पाद और घट के विनाश के हेतु का नियम है। अतः हेतु के नियम से कार्य का उत्पाद है, सो ही पूर्व आकार का विनाश है। दोनों में लक्षण भेद है ही। उत्पाद का स्वरूप अन्य और विनाश का स्वरूप अन्य, इस प्रकार लक्षण भेद है ही। सर्वथा भेद ही नहीं है। जिस प्रकार कपाल का उत्पाद और घट का विनाश ये दोनों मृत्तिकास्वरूप ही हैं, उसी प्रकार कथंचित् अभेद रूप भी हैं। इस

प्रकार उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप वस्तु सिद्ध होती है। इन तीनो भावो के परस्पर अपेक्षा न हो तो तीनो ही अवस्तु ठहरे, तब वस्तु सिद्ध नही होती है। केवल उत्पाद ही माने तो नवीन वस्तु का उत्पन्न होना ठहरता है, सो बनता नही है। केवल विनाश ही माने तो उस ही का पुनः उत्पन्न होना न ठहरता है। ऐसी स्थिति मे शून्य का प्रसङ्ग आता है। केवल स्थिति माने तो उत्पाद, विनाश ही न ठहरे। इस प्रकार प्रत्यक्ष विरोध आता है। अत: कथंचित् त्रयात्मक वस्तु मानना युक्त है।।५८।।

आगे इस अर्थ की प्रतीति के समर्थन के लिए लौकिक जन के प्रसिद्ध दृष्टान्त कहते है –

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।५६।।

अर्थ – घडा, मुकुट तथा सुवर्ण को चाहने वाले पुरूष घट को तोडकर मुकुट बनाने मे (क्रमश) शोक, प्रमोद और माध्यस्थ को प्राप्त होते है। यह सब हेतु सहित है। जो घडे को चाहने वाला है उसे तो घट का विनाश होने मे शोक हुआ। घट को तोडकर मुकुट बनाने मे मुकुट को चाहने वाले पुरूष के हर्ष हुआ। वहॉ हर्ष का कारण मुकुट का उत्पाद हुआ। जो सुवर्ण का अर्थी है, उसके शोक और हर्ष न ही हुआ, मध्यस्थ रहा, क्योकि घट भी सुवर्ण था, मुकुट भी सुवर्ण ही है। इस प्रकार माध्यस्थ का कारण सुवर्ण की स्थिति हुई। इस प्रकार लोगो के लिए उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप वस्तु प्रतीतिभेद से सिद्ध है।।५६।।

जो लोकोत्तर जैन व्रती है, उनके भी गति भेद से ऐसा ही सिद्ध है। उसका दृष्टान्त कहते है –

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्वं त्रयात्मकम्।।६०।।

जिसके ऐसा व्रत हो कि मै आज दूध ही लूॅगा, वह दही नहीं खाता है। जिसके ऐसा व्रत हो कि मे आज दही ही खाऊॅगा, वह दूध नही पीता है। जिस पुरूष के गोरस न लेने का व्रत है, वह दोनो नही लेता है, इस

प्रकार तत्व त्रयात्मक है।

भावार्थ – गोरस दूध और दही इन दोनों को ही कहते हैं। यथार्थ रूप से विचार किया जाय तब तीनों में अभेद भी है; क्योंकि दोनों एक गोरसरूप ही हैं। पुनः भेद भी है; क्योंकि व्रती जन ऐसा मानते हैं कि जो दूध खाने की प्रतिज्ञा ले वह दही गोरस होने पर भी दूध को भिन्न मानकर उसे(दही को) नहीं खाता है। इस प्रकार दही की प्रतिज्ञा ले तब दूध को भिन्न मानकर उसे (दूध को) नहीं खाता है। जो दोनों के न खाने की प्रतिज्ञा ले, वह दोनों ही नहीं खाता है। इस प्रकार व्रती भी वस्तु को भेदाभेद रूप मानते हैं। इस प्रकार वस्तु त्रयात्मक ही है, कथंचित् अनित्य ही है। इसी प्रकार कथंचित् नित्यानित्य ही है। कथंचित् अवक्तव्य ही है, कथंचित् नित्य अवक्तव्य ही है। इस प्रकार यथायोग्य सप्तभङ्गी जोड़ना चाहिए। जैसे सत् आदि पर (सप्तभङ्गी) जोड़ी थी, उसी प्रकार नयानुसार सप्तभङ्गी लगाना चाहिए।

चौपाई

नित्य आदि एकान्त वशाय, प्राणी भव में भ्रमण कराय।
तिनके उरधरनकूँ जिनवैन, अनेकान्तमय वरने ऐन।।१।।

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्तमीमांसा नाम देवागमस्तोत्र की देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में स्याद्वाद स्थापन रूप तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ चतुर्थ परिच्छेद

दोहा

भेद आदि एकान्त तम, दूरि कियो जिनसूर।
वचन किरण तैं तास पद, नमूं करम निरमूर।।१।।

वैशषिक मत वाला भेद एकान्त पक्ष की अपेक्षा अपने मत की स्थापना करता है। उसका पूर्वपक्ष इस प्रकार है –

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च।
सामान्य तद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते।।६१।।

अर्थ – कार्य का और कारण का नानापना, गुण और गुणी के भेद रूप नानापना तथा सामान्य और विशेष के अन्यपना है, ऐसा ऐकान्तिक रूप से मानना चाहिए। इस प्रकार वैशोषिक पूर्वपक्ष की स्थापना करता है। इसका उत्तर अगली कारिका में होगा।

यहाँ कार्य के ग्रहण से कार्य, अवयवी, अनित्य गुण तथा प्रध्वंसाभाव का ग्रहण है। कारण के कहने से समवायी, समवाय तथा प्रध्वंस के निमित्त का ग्रहण है। गुण से नित्यगुण का ग्रहण है और गुणी कहने से गुण के आश्रय द्रव्य का ग्रहण है। वैशेषिक मानता है कि इन सबके भेद ही है, ये नाना ही हैं, अभेद नहीं हैं। इस प्रकार एकान्त रूप से मानते हैं। उसके विषय में आचार्य कहते हैं कि ऐसा मानने से दोष आता है।।६१।।

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनिवा।
भागित्वाद्वाऽस्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते।।६२।।

अर्थ – कार्य – कारण, गुण, गुणी और सामान्य विशेष के एकान्त रूप से अन्य (नाना) या सर्वथा ही भिन्न ही माना जाय तो एक द्रव्य आदि कार्य की अनेक कारणों में वृत्ति या प्रवृत्ति नहीं बनती है; क्योंकि कार्यादिक के भाग या खण्डों का अभाव है। जो बिना भाग के सर्वस्वरूप से प्रवृत्ति करे तो एक कार्य में अनेक ठहरें किन्तु ऐसा है नहीं। कार्यद्रव्य को भाग सहित (खण्ड रूप) माना जाय तो कार्य के एकपना न ठहरे। इस प्रकार अनार्हत (अरहन्त मत से अन्य) के मत में वृत्ति का दोष आता है। किन्तु वृत्ति अवश्य माननी चाहिए। यदि वृत्ति नहीं मानेंगे तो कार्य कारण आदि भावों का विरोध आता है। यदि एकदेश की अपेक्षा वृत्ति मानी जाय तो बनती नहीं है; क्योंकि कार्यद्रव्य तथा गुण और सामान्य, इसका अंश माना नहीं

गया है, निःप्रदेशी माना है। सर्वस्वरूप से मानें तो जितने कारण होगें उतने कार्यद्रव्य ठहरेंगे। जैसे एक पृथिवी के अनेक परमाणु रूप कारणों से बने हैं, सो इस प्रकार तो जितने परमाणु है, उतने घट हो जायेंगे, किन्तु ऐसा नहीं है। एक संयोग आदि गुण के अनेक संयोग आदि ठहरें किन्तु ऐसा है नहीं। उसी प्रकार एक सामान्य के अनेक सामान्य ठहरें। इस प्रकार कार्यादिक की कारणदि में वृत्ति का दोष आता है। अतः सर्वथा अन्यपना कर्ता कारणादिक के बनता नहीं हैं। कथंचित् भेद मानना ही निर्बाध सिद्ध होता है।।६२।।

इसी प्रकार कार्यद्रव्य अवयवी आदि का अवयवादि कारण से सर्वथा भेद होने से देश, काल की अपेक्षा भी भेद ठहरता है। इसके विषय में कहते हैं –

देशकालविशेषेऽपि स्याद् वृत्तिर्युतसिद्धवत्।
समान–देशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः।।६३।।

अर्थ – अवयवी (कार्य द्रव्यादिक) के अवयवों (कारणादिक) से सर्वथाभेद मानें तो देश–काल का विशेष होने से भी वृत्ति ठहरे। जैसे दो द्रव्यों के जुड़ने से युतसिद्धि के वृत्ति हो, वैसे ठहरते हैं। पर्वत के और वृक्षादिक के भेदरूप वृत्ति ठहरें सो ऐसा है नहीं। अवयवी आदि के तो कथंचित् भेद है। मूर्ति के कारण और कार्य के एकदेशपना मानें तो यह भी नहीं ठहरता है। अत्यन्त भिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थों के एकदेश में रहना कैसे बनेगा। इस प्रकार सर्वथा भेदपक्ष में दोष आता है।।६३।।

आगे पुनः प्रश्नोत्तर करते हैं:–

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्रयं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः।।६४।।

अर्थ :– वैशेषिक कहता है कि, समवायी पदार्थ के आश्रय–आश्रयी भाव है, इस कारण स्वाधीनता नही है। अतः कार्य–कारणादिक के देश काल के भेद की अपेक्षा वृत्ति नही है। समवायी पदार्थ समवाय के अधीन प्रवृत्ति करता है। अपने आप ही देश काल के भेद से प्रवृत्ति कैसे करेगा। इसके विषय में आचार्य कहते हैं कि हे वैशाषिक ! समवायी पदार्थ से समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्न ही है, जुड़ा नहीं है। अतः तुम्हारा कथन युक्त नहीं है। समवायी पदार्थ जुदा था, उसे जुदे समवायी पदार्थ से किसने जोड़ा (मिलाया)। इस प्रकार सर्वथा भेद मानने से दोष ही आता है।।64।।

वैशेषिक कहता है कि केवल समवाय तो सत्तासामान्य के समान नित्य है। जब कार्य उत्पन्न होता है, तब सत्त समवायी माना जाता है। इस प्रकार समवाय और कार्य के जोड है। उसे आचार्य दोष दिखाते है –

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः।।६५।।

अर्थ – सामान्य और समवाय ये दोनो नित्य और एक है। ये दोनो यदि एक एक पदार्थ मे समस्त रूप से वर्ते तो एक नित्य पदार्थ मे ही समाप्त हो, तब अन्य पदार्थ मे कौन जाय तथा इन दोनो का अश (अवयव) माना नही है। तब अनित्य जो उपजने विनशने वाले कार्य आदि पदार्थ है, वे सामान्य और समवाय बिना ठहरे। जब सामान्य और समवाय ये दोनो ही आश्रय बिना न हो तब उपजने विनशने वाले पदार्थो को आश्रय बिना कौन मानेगा? इनका सत्य और प्रवर्तना नही ठहरता है। इस प्रकार दोष आता है।।65।।

आगे कहते है कि वैशेषिक के परस्पर सापेक्ष न मानने से भेद एकान्त मे पहले कहे गए और अब जो कहे जा रहे है, वे दोष आते है –

सर्वथाऽनभिसम्बंधः सामान्य–समवाययोः।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत्।।६६।।

अर्थ – सामान्य और समवाय मे वैशेषिक ने सर्वथा सम्बन्ध नही माना है। उन दोनो से भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण कर्म ये सम्बन्ध रूप नही होते है, क्योकि परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथा भेद माना है। अत यह बात स्थित होती है कि परस्पर अपेक्षा बिना सामान्य, समवाय और अन्य पदार्थ ये तीनो ही आकाश के फूल की तरह अवस्तु है। वैशेषिको ने कल्पनामात्र वचनजाल किया है। इस प्रकार कार्य–कारण, गुण–गुणी, सामान्य–विशेष इनके अन्यपने का एकान्त भेद एकान्त की तरह श्रेष्ठ नही है।।66।।

आगे अन्य वादी कहते है कि कार्य–कारण आदि के विषय मे जैसे आपने कहा, उस प्रकार अन्यता तथा अनन्यता का एकान्त मत हो। परमाणु के तो नित्यपना है, अत समस्त अवस्थाओ मे अन्यपना का अभाव है। इस प्रकार अनन्यता का एकान्त सदा एक रूप रहता है, कभी भी अन्य स्वरूप नही होता है। इसी को आचार्य कहते हैं –

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं–भ्रान्तिरेव सा।।६७।।

अर्थ – परमाणुओं के अनन्यता–अन्यस्वरूप न होने का एकान्त होने से संघात–परस्पर मिलकर एकान्त होने पर भी विभाग की तरह मिले नहीं ठहरते है; क्योंकि मिलकर स्कन्धस्वरूप नहीं होते हैं? यदि मिलकर स्कन्ध–स्वरूप होना मानें तो अनन्यता का एकान्त नहीं ठहरता है, कथंचित् अन्यस्वरूप हुआ ठहरता है। स्कन्धरूप न हुआ ठहरता है। स्कन्ध रूप न होने पर पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु इस प्रकार भूतचतुष्टय देखना भ्रान्ति रूप ठहरता है; क्योंकि भूतचतुष्क परमाणुओं का कार्य माना जाता है, सो वह भ्रम ठहरता है।।67।।

भूतचतुष्क को भ्रान्ति मानने पर दोष आता है। इसी बात को दिखलाते हैं–

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिंगं हि कारणम्।
उभयाभावतस्तस्थं गुणजातीतरच्च न ।।६८।।

अर्थ– परमाणुओं के कार्य पृथ्वी आदि भूतचतुष्क को भ्रमस्वरूप मानने पर परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरते हैं; क्योंकि कारण कार्यलिङ्ग; स्वरूप है तथा कार्यलिङ्ग से ही कारण का अनुमान किया जाता है। कार्य भ्रम ठहरे तब उसका कारण भी भ्रम ठहरे। कार्य कारण स्वरूप भूतचतुष्क और परमाणु इन दोनों के अभाव से उनके अन्दर विद्यमान गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष समवाय ये भी नहीं ठहरते हैं। अतः परमाणुओं के कथंचित् स्कन्धरूप अन्यरूपता मानना युक्त है। जैसे बौद्धों का परमाणुओं का अन्यस्वरूप न मानना अयुक्त है, उसी प्रकार वैशेषिकों का भी मत सिद्ध नहीं होता है।

सांख्य कार्य कारण को एक स्वरूप ही मानता है, कथंचित् अन्य स्वरूप नही मानता है, उसके मत में दोष दिखलाते हैं –

एकत्वे ऽन्यतराभावः शेषाभावो ऽविनाभुवः।
द्वित्व संख्या–विरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा।।६९।।

अर्थ – कार्य (महान् आदि) तथा कारण (प्रधान) में परस्पर एक स्वरूप तादात्म्य मानने पर जब तादात्म्य स्व स्वरूप हुआ, तब एक का अभाव हुआ, एक रहा। एक रहा सो दूसरे से अविनाभावी है, अतः दूसरे का अभाव होने से शेष एक रहा था, उसका भी अभाव हुआ। इस प्रकार दोनों ही नहीं ठहरते हैं। द्वित्व की जो संख्या मानी है, उसका विरोध आता है, यह संख्या भी नहीं ठहरती है। यदि कहें कि द्वित्व की संख्या तो संवृत्ति

है, कल्पना है, उपचार है। तो कल्पना उपचार है सो मृषा ही है, असत्य ही है, उसकी चर्चा? इस प्रकार प्रधान, महान् आदि सांख्यकल्पित अनन्यता का एकान्त मानने से दोनों का अभाव और द्वित्व संख्या का विरोध आता है। इस प्रकार कार्य कारणादिक के अनन्यता का एकान्त संभव नहीं है।।69।।

आगे अन्यता और अनन्यता इन दोनों पक्षों का एकान्त तथा अवक्तव्य एकान्त मानने में दोष दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।७०।।

अर्थ – स्याद्वादन्याय के विद्वेषियों के अन्यता और अनन्यता दोनों के एक स्वरूपपना संभव नहीं है। अवयव–अवयवी, गुण–गुणी, सामान्य–विशेष आदिक के भेद से अभेद इन दोनों का एक स्वरूपपना नहीं बनता है; क्योंकि भेद और अभेद में परस्पर विरोध है। अवाच्यता का एकान्त भी नहीं बनता है; क्योंकि इस एकान्त में अवाच्य है, इस प्रकार की उक्ति भी युक्त नहीं होती है।।70।।

इस प्रकार अवयव–अवयवी आदि अन्यत्व आदि एकान्त (भेदाभेद एकान्त) का निराकरण कर अब उनके सामने अनेकान्त अपनी सामर्थ्य से सिद्ध हुआ तो भी कुवादी की आशंका दूर करने के लिए दृष्टि निश्चय करने के इच्छुक आचार्य अनेकान्त के विषय में कहते हैं –

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः।।७१।।
संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादि भेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा।।७२।।

अर्थ – द्रव्य और पर्याय, इनके कथंचित् एकपना है; क्योंकि दोनों में अव्यतिरेक है, सर्वथा भिन्नपना नहीं है। उन द्रव्य पर्यायों के कथंचित् नानापना है; क्योंकि इनके परिणाम का भेद है, शक्ति और शक्तिमानपना है, संज्ञा, संख्या, स्वलक्षण और प्रयोजन का भेद है। इस प्रकार छह हेतुओं से नानापना है। आदि शब्द से भिन्न प्रतिभास और भिन्न काल ग्रहण करना। इस प्रकार कथंचित् भेदाभेदपना है, सर्वथा नहीं है।

यहाँ द्रव्य शब्द से तो गुणी, सामान्य, उपादान कारण इनका ग्रहण है – और पर्याय शब्द के गुण, व्यक्ति, कार्य इनका ग्रहण है। अव्यतिरेक शब्द से अशक्यविवेचनपने का ग्रहण है। इसका यह भी अर्थ है कि

विवक्षित द्रव्य पर्यायों का अन्य द्रव्य के गुण पर्याय अन्य द्रव्य में न जायें, यह अर्थ है। द्रव्य पर्यायों में कथंचित् एकता कहने में विरोध, वैयधिकरण्य, संशय, व्यतिकर, संकर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति और अभाव, ये दोष नहीं आते हैं; क्योंकि जिस प्रकार एकता कही, उस प्रकार प्रतीति में आता है, कल्पना से वचनमात्र नहीं कहा है। जो प्रतीतिसिद्ध हो,उसमें दूषण किस प्रकार का है? जहाँ नानापना कहा वहाँ परिणाम के विशेष है, द्रव्य का तो अनादि, अनन्त, एकस्वभाव स्वाभाविक परिणमन है। पर्याय के सादि, सान्त अनेक नैमित्तिक परिणाम हैं। इस प्रकार ही शक्तिमान् शक्तिभाव जानना। द्रव्य नाम है, पर्याय नाम है, इस प्रकार संज्ञा का विशेष है। द्रव्य एक है, पर्याय बहुत हैं, इस प्रकार संख्या का विशेष है, द्रव्य के तो एकपना, अन्वयपना ऐसे ज्ञान आदि कार्य होते हैं। पर्याय से अनेकपना जुदापना आदि ज्ञानरूप कार्य होना यह प्रयोजन का विशेष है। द्रव्य त्रिकालगोचर है, पर्याय वर्तमान कालगोचर है, इस प्रकार कालभेद है। भिन्न प्रतिभास है ही, सो पूर्वोक्त विशेषों से ही जाना जाता है। लक्षणभेद भी उसी प्रकार जानना चाहिए। द्रव्य का लक्षण गुण पर्यायवान है। पर्याय का 'तद्भावः परिणामः' ऐसा लक्षण है। इस प्रकार भेदाभेद के एकान्त का निराकरण कर अनेकान्त की स्थापना की। वस्तु स्वलक्षण के भेद से माना ही है। कथंचित् दोनों रूप एक साथ नहीं कहे जाते, अतः अवक्तव्य ही है। कथंचित् नानात्व अवक्तव्य है क्योंकि परस्पर विरूद्ध रूप है और एक साथ कहा नहीं जाता है। कथंचित् एकत्व अवक्तव्य ही है; क्योंकि अशक्यविवेचन स्वरूप है। युगपत् दोनों रूप कहे नहीं जाते हैं। कथंचित् दोनों रूप है और साथ कहा नहीं जाता है, अतः उभय अवक्तव्य है। इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रक्रिया प्रत्यक्ष और अनुमान से अविरूद्ध जाननी चाहिए।

चौपाई

नानापना एकता भाय पक्षपात तैं मिथ्या थाय।
अनेकान्त साधें सुखदाय, ज्ञात यथा कीया जिनराय।।१।।

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में सर्वथा नानापना मानने वाले एकान्त के पक्षपाती को संबोधन रूप चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ।

अथ पंचम परिच्छेद

दोहा

एक वस्तु में धर्म दो साधे श्री गणधार।
सु अपेक्षा अनपेक्ष तैं, नमों तास पद सार।।1।।

अब यहाँ प्रथम ही अपेक्षा, अनपेक्षा के एकान्त पक्ष में दोष दिखाते हैं –

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिक सिद्धौ च न सामान्यविशेषता।।७३।।

अर्थ – यदि धर्म धर्मी आदि की एकान्त से आपेक्षिक सिद्धि मानें तो धर्म और धर्मी दोनों ही न ही ठहरते हैं। अपेक्षा बिना एकान्त से सिद्धि मानें तो सामान्य विशेषपना ठहरता नहीं है। बौद्ध ऐसा मानते हैं – प्रत्यक्ष बुद्धि में धर्म अथवा धर्मी प्रतिभासित नहीं होता है। प्रत्यक्ष देखने के बाद विकल्प बुद्धि होती है। उस विकल्प बुद्धि से धर्म तथा धर्मी की कल्पना की जाती है। जिसको धर्म के रूप में कल्पना की जाती है, वही ज्ञेयपना की अपेक्षा धर्मी हो जाता है। इस प्रकार विशेष्य–विशेषणपना, गुण–गुणीपना, क्रिया–क्रियावान्पना, कार्य–कारणपना, साध्य साधनपना तथा ग्राह्य–ग्राहकपना इत्यादि परस्पर अपेक्षा मात्र ही से सिद्ध हैं। इस प्रकार बौद्धों की तरह एकान्त से माना जाय तो दोनों नही ठहरते हैं। अतः अपेक्षामात्र सिद्धि एकान्त श्रेष्ठ नहीं है। नैयायिक धर्म, धर्मी की सर्वथा अपेक्षा बिना ही सिद्धि मानते हैं वे कहते हैं कि धर्म और धर्मी भिन्न ज्ञान के विषय हैं। इनके परस्पर अपेक्षा नहीं है, इस प्रकार ऐकान्तिक रूप से मानते हैं। उन नैयायिकों के भी अन्वय–व्यतिरेक नहीं ठहरता है; क्योंकि भेद–अभेद परस्पर अपेक्षा बिना सिद्ध नहीं होते हैं। अन्वय तो सामान्य है और व्यतिरेक विशेष है, वे परस्पर अपेक्षा स्वरूप हैं। उन दोनों के परस्पर अपेक्षा न मानें तो सामान्य–विशेष भाव न ठहरे। अतः अपेक्षा अनपेक्षा ये दोनों ही एकान्त से नहीं बनते हैं। एकान्त से वस्तु की व्यवस्था नहीं है।।73।।

अब उभयैकान्त तथा अवक्तव्य एकान्तमें दोष में दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।७४।।

अर्थ – अपेक्षा तथा अनपेक्षा दोनों का एकान्त मानें तो दोनों एक स्वरूप होते नहीं है; क्योंकि स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के विरोध नामक दोष आता है। जिस प्रकार सत् असत् एकान्तमें दोष आता है, उसी प्रकार ये भी एकान्त श्रेष्ठ नहीं है। पुनः अवाच्यता का एकान्त कहें तो अवाच्य है, ऐसा कहना नहीं बनता है। अतः अवक्तव्य एकान्त भी श्रेष्ठ नहीं है।।74।।

अपेक्षा अनपेक्षासे एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यसे अनेकान्त सिद्ध हुआ तो भी कुवादीकी आशंका दूर करनेके लिए आचार्य अनेकान्तको कहते हैं –

धर्म – धर्म्यविनाभावः सिद्धयत्यन्योन्य – वीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारक–ज्ञापकाङ्गवत्।।७५।।

अर्थ – धर्म और धर्मी का अविनाभाव परस्पर अपेक्षा से सिद्ध है। ध र्म बिना धर्मी नहीं है। धर्म और धर्मी का स्वरूप परस्पर अपेक्षासे सिद्ध नहीं हैं। स्वरूप स्वतः सिद्ध है। जैसे कारक के अङ्ग कर्ता–कर्म आदि हैं तथा ज्ञायक के अङ्ग ज्ञेय–ज्ञायक हैं, उसी प्रकार कर्त्ता बिना कर्म नहीं और कर्म बिना कर्त्ता नहीं है। इस प्रकार अपेक्षासिद्ध है। कर्त्ता का करने वालापना स्वरूप है सो पहले स्वयं सिद्ध है ही। उसी प्रकार कर्म अपने आप सिद्ध है, स्वरूप में अपेक्षापना नहीं है। इसी प्रकार सामान्य–विशेष, गुण–गुणी, कार्य–कारण तथा प्रमाण–प्रमेय इत्यादि जानना। कथंचित् आपेक्षिक सिद्ध है, कथंचित् अनापेक्षिक अवक्तव्य है, कथंचित् दोनों से सिद्ध है, कथंचित् अवक्तव्य है, कथंचित् आपेक्षिक अवक्तव्य है, कथंचित् अनापेक्षिक अवक्तव्य है, कथंचित् दोंनो हैं और अवक्तव्य है। दोनों के अविनाभाव तथा निज स्वरूप हेतु लगाना। इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रक्रिया पूर्वोक्त प्रकार लगानी।।75।।

चौपाई

आपेक्षिक आदिक एकान्त। मिथ्या विषवत् कह्यौ सिद्धांत।
जैन मुनिन के वचन जु मंत्र, सुनें जहर उतरै वह तंत्र।।१।।

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देश भाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में पंचम परिच्छेद समाप्त हुआ।

षष्ठ परिच्छेद

हेतु अहेतु विचारिकैं पक्षपात परिहार।
आगम बरतायौ मुनी नमौं शीश कर धार।।1।।

अब यहाँ प्रथम हेतु और आगम के एकान्त पक्ष में दोष भी दिखलाते हैं –

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरूद्धार्थ–मतान्यपि।।७६।।

अर्थ – यदि अपना सब वाञ्छित कार्य ऐकान्तिक रूप से हेतु से ही सिद्ध होना मानें तो प्रत्यक्षादि से होना नही ठहरता है। एकान्त से आगम ही से सिद्ध होना माने तो प्रत्यक्षादि से विरूद्ध तथा जिनके मत में परस्पर विरूद्ध पदार्थ है, ऐसे आगमोक्त मत से भी सिद्धि को प्राप्त हों, इस प्रकार दोष आता है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि समस्त ही लौकिक जन तथा परीक्षक जन अपने आदर करने योग्य उपेय तत्त्व का निश्चय कर, उसके उपाय तत्त्व का निश्चय करते हैं सो यहाँ मोक्ष के चाहने वाले को भी मोक्ष के स्वरूपका निश्चय कर उसके उपाय का निश्चय करना चाहिए। वहाँ कोई अन्यमती अनुमान से ही उपेयतत्त्व की सिद्धि मानते हैं। उनके प्रत्यक्षादि से वस्तु की प्राप्ति तथा ज्ञान नहीं होगा, जिससे कि अनुमान होता है, क्योंकि आदि लिङ्ग में प्रत्यक्ष दर्शन हो तथा दृष्टान्त प्रत्यक्ष हो, तब अनुमान होता है। इस प्रकार प्रत्यक्षके बिना अनुमान की भी सिद्धि नहीं होती है। अतः जो हेतुसे ऐकान्तिक रूपसे सिद्ध होना मानते हैं उनके परस्पर विरूद्ध अर्थ जिनमें पाए जाते हैं, ऐसे आदिसे किए बिना प्रमाण ठहरे, तब सम्यक्, मिथ्या का विभाग कैसे ठहरे? अतः आगमसे भी सिद्धि होना एकान्तसे मानना श्रेष्ठ नहीं है। इस प्रकार दोनों ही एकान्त बाधा सहित हैं।।76।।

आगे दोनों से सिद्धि मानने के एकान्तमें दोष दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्ते ऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।७७।।

अर्थ – स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी एकान्तवादियों का हेतु और आगम दोनों को एक स्वरूप मानना मत हो; क्योंकि दोनों में एकान्त से मानने

में विरोध दोष आता है। यदि अवक्तव्य एकान्त मानें तो अवक्तव्य है, ऐसा कहना नहीं बनता है। कहने पर वक्तव्य हो जाता है, तब एकान्त नहीं बनता है। इस प्रकार एकान्त में दोष है।।77।। आगे हेतु और अहेतु के एकान्त को दिखलाते हैं –

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतु – साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागम साधितम्।।७८।।

अर्थ –*वक्ता के अनाप्त होने पर जो हेतु से साध्य हो, वह तो हेतु साधित है। वक्ता के आप्त होने से उसके वचन से साध्य होना आगम साधित है।* यहाँ आप्त, अनाप्त का स्वरूप पहले कहा था कि दोष और आवरण से रहित सर्वज्ञ वीतराग अरहंत भगवान आप्त है; क्योंकि उनके वचन युक्ति और आगम से अविरोध रूप हैं तथा उनका कहा तत्त्व प्रमाण से बाधित नहीं होता है। जो दोषसहित है सर्वज्ञ और वीतराग नहीं है, वह अनाप्त है। *उसके वचन, इष्टतत्त्व प्रत्यक्ष बाधित है। अतः आप्त के वचन ही प्रमाणरूप* से स्वीकार करना चाहिए तथा अनाप्त के वचन परीक्षा कर प्रमाणरूप से स्वीकार करना चाहिए, इत्यादि चर्चा अष्टसहस्री से जानना चाहिए। जहाँ आप्त के वचन की अपेक्षा नहीं है, वहाँ कथंचित् सब हेतु से सिद्धि है। जहाँ इन्द्रिय प्रत्यक्ष और लिङ्ग की अपेक्षा नहीं है, वहाँ आगम से सिद्धि है, इत्यादि पहले की तरह सप्तभङ्गी प्रक्रिया जोड़नी चाहिए।।84।।

चौपाई

मोक्ष तत्त्व अर मोक्ष उपाय हेतु अहेतु कथंचित् भाय।
साध्यो अनेकान्त तैं भलैं तजि एकान्त पक्ष मुनि चलैं।।

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देश भाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में छठा परिच्छेद समाप्त हुआ।

सप्तम परिच्छेद

अन्तरङ्ग बहि तत्त्व दो, अनेकान्त तैं साधि।
वरताये तिनकूं नमूं, मिथ्या पक्ष सुवाधि।।1।।

अब यहाँ सबसे पहले जो अन्तरङ्ग अर्थ को ही एकान्त रूप से मानते हैं, उनमें दोष दिखाते हैं –

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलं।
प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणादृते कथम्।।७६।।

अर्थ – अन्तरङ्गार्थ (अपने ही संवेदन में जो ज्ञान आए) का एकान्त (बाह्य पदार्थ को नहीं मानना) होने पर सब बुद्धिवाक्य (हेतुवाद का कारण उपाध्याय और शिष्य का वाक्य) असत्य ठहरता है; क्योंकि वाक्य बाह्य पदार्थ है, वह उत्पन्न कराने के लिए प्रमाण वाक्य कहना भी प्रमाणाभास ही ठहरा। प्रमाणाभास प्रमाण बिना कैसे हो? नहीं होता। इस प्रकार दोष आता है। यहाँ अन्तरङ्गार्थ एकान्त मानने वाला विज्ञानद्वैतवादी बौद्ध बाह्य पदार्थ को मानने वाले वचनमें दूषण देता है। यदि वचनको परमार्थभूत नहीं मानता है तो वचन झूठे हैं। इस प्रकार के वचन प्रमाण नहीं प्रमाणाभास हैं। तब दूषण देना सत्यार्थ कैसे हो। अपना स्वसंवेदन रूप अन्तरङ्ग तत्त्व स्वतः ही सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि स्वसंवेदन ही अद्वैतता मानना है। द्वैत माने बिना साध्य–साधनादि भेद नहीं बनता है। भेद माने तो अद्वैत एकान्त न ठहरे। तब अन्य बाह्य तत्त्वों का मानना सत्यार्थ ठहरता है। यदि उसका निषेध करना अन्य बाह्य तत्त्वों का मानना सत्यार्थ ठहरता है। यदि उसका निषेध करना है तो किससे निषेध करेगा? इत्यादि अन्तरंग एकान्त मानने में दोष है।।79।।

आगे संवेदनाद्वैतवादी बौद्ध के लिए पुनः दूषण दिखाते हैं –

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञा हेतुदोषतः।।८०।।

अर्थ – विज्ञानाद्वैतवादी कहते हैं कि साध्य साधन के विज्ञान के विज्ञप्तिमात्रपना ही है। अतः न तो साध्य ठहरे, न हेतु ठहरे, इससे इसके प्रतिज्ञा और हेतु को दोष आता है। साध्य युक्त पक्ष का वचन प्रतिज्ञा, साधन का, वचन हेतु, उसके कहने में अपने वचन ही से विरोध आता है; क्योंकि वह विज्ञानमात्र तत्त्व को इस प्रकार सिद्ध करता है – नील पदार्थ और

नील की बुद्धि इनके साथ ग्रहण का नियम होने से अभेद है। जैसे – नेत्र के विकार वाले को दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। वे चन्द्रमा परमार्थतः एक ही हैं। इसी प्रकार नील पदार्थ और नील बुद्धि को दो मानना भ्रम है। इस प्रकार अपने तत्त्व को सिद्ध करे, उसके अपने वचन ही से विरोध आता है। साध्य–साधन रूप दो संवेदन देखकर और एकपने का एकान्त कहने पर उसके विरोध कैसे नहीं आता है। यहाँ धर्म–धर्मी का भेद वचन कहा, दो के संवेदन का वचन कहा। ज्ञान और वचन दो कहे। हेतु और दृष्टान्त के भेद से वचन कहे तो अभेद कहने में विरोध कैसे नहीं आयेगा। वचन से विरोध का भय कर अवक्तव्य कहने पर अवक्तव्य वचन भी बनता है। जो अन्य कोई द्वैत मानता है, उसकी मान्यता के निषेध के लिए मैं भी भेद का वचन कहता हूँ। किन्तु (जैनों का, कहना है कि) अद्वैत एकान्त मानने में तो अन्य दूसरा ठहरता ही नहीं है। निषेध किसका? इत्यादि दोष आता है। अतः संवेदनाद्वैतवादी मिथ्यादृष्टि है। इस प्रकार अन्तरङ्गार्थ एकान्त पक्ष में बुद्धि, वाक्य तथा सम्यक् प्रकार उपाय तत्त्व संभव नहीं है। अतः श्रेष्ठ नहीं है।।80।।

आगे बहिरङ्गार्थ पक्ष में दोष दिखलाते हैं –

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिह्नवात्।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाऽभिधायिनाम्।।८१।।

अर्थ – बाह्य घट, पट आदि पदार्थ के एकान्त का तात्पर्य है कि बाह्य पदार्थ ही परमार्थभूत है। अन्तरङ्गज्ञान परमार्थ नहीं है। इस प्रकार का पक्ष होने से प्रमाणाभास का लोप होता है। प्रमाणाभास का लोप होने से समस्त विरूद्ध पदार्थ का विभाग नहीं ठहरता है; क्योंकि प्रमाण अप्रमाण स्वरूप तो ज्ञान है। वह ज्ञान परमार्थभूत नहीं है। तब अप्रमाण क्या? विरूद्ध स्वरूप कहने वाले भी सच्चे ठहरते हैं, इस प्रकार दोष आता है।।81।।

आगे अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों पक्ष मानकर जो एकान्त माने तथा अवक्तव्य एकान्त माने, उसकी मान्यता में दोष दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।८२।।

अर्थ – स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के अन्तरङ्ग तत्त्व ज्ञान और बाह्य तत्त्व ज्ञेय ये दोनों एक स्वरूप नहीं होते हैं; क्योंकि इनमें परस्पर विरोध

है। विरोध भय से अवाच्यता (अवक्तव्य पक्ष का एकान्त) ग्रहण करे तो अवाच्य है, ऐसा कहना नहीं बनता, इस प्रकार दोष है।।८२।।

आगे कहते हैं कि इन दोनों पक्षों को स्याद्वाद का आश्रय लेकर कहे तो दोष नहीं है।

भाव–प्रमेयाऽपेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः।

बहिः प्रमेयाऽपेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते।।83।।

अर्थ – भावप्रमेय की अपेक्षा स्वसवेदन प्रमाण के द्वारा सब कुछ प्रत्यक्ष होने पर प्रमाणाभास कुछ भी नहीं है। बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कहीं प्रमाण है, कहीं अप्रमाण है। जहाँ विसंवाद होने पर बाधा आए वहाँ तो प्रमाणाभास है, जहाँ निर्बाध हो, वहाँ प्रमाण है; क्योंकि एक ही जीव के ज्ञान के आवरण के अभाव, सद्भाव के विशेष से सत्य, असत्य संवेदन परिणाम की सिद्धि है। इस प्रकार अर्हन्तों के मत में सिद्धि होती है।।83।।

जीव शब्द का बाह्य अर्थ भी है। चार्वाक आदि मत वाला कहता है कि जीव ही नहीं तो जीव, ऐसा शब्द कैसे कहा? जीव का ग्रहण करने वाला प्रमाण नहीं है। ऐसा कहने वालों के लिए जीव के ग्रहण प्रमाण का सद्भाव दिखलाते हैं–

जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतु शब्दवत्।

मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोत्तिवत्।।८४।।

अर्थ – जीव शब्द बाह्यार्थ सहित है। इस शब्द का अर्थ जीव वस्तु है; क्योंकि यह शब्द संज्ञा है, नाम है। जो संज्ञा (नाम) हैं; वे बाह्य पदार्थ बिना नहीं होती हैं। जैसे हेतु शब्द का बाह्य अर्थ है। वादी, प्रतिवादी प्रसिद्ध है। यहाँ कोई कहता है कि माया आदि भ्रान्ति की संज्ञा है, उनका बाह्य पदार्थ क्या है? उससे कहते हैं कि मायादिक जो भ्रान्त की संज्ञायें हैं, वे भी अपने स्वरूप बाह्य अर्थ सहित ही हैं। जैसे प्रश्न की उक्ति संज्ञा है। उन प्रमाणों का बाह्यार्थ प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि है। उसी प्रकार मायादिक भ्रान्ति भी संशयादि ज्ञान के भेद रूप हैं। इनका बाह्यर्थ कैसे नहीं है? चार्वाक–शरीर इन्द्रियादि का समूह ही जीव शब्द का अर्थ है। इनसे भिन्न स्वरूप वाली तो जीव वस्तु कुछ है नहीं।

जैन – जीव ऐसे अर्थ से लोक प्रसिद्ध जीव का ग्रहण है। जीव चलता है, जीव गया, जीव बैठता है, इस प्रकार लोक व्यवहार प्रसिद्ध है। ऐसा व्यवहार शरीर के प्रति नहीं होता है, इन्द्रियों और शब्द आदि में इस प्रकार

का व्यवहार नहीं है। इनका भोगने वाला आत्मा है। उस आत्मा में ही यह व्यवहार है।

चार्वाक – जीव गर्भ से लेकर मरण पर्यन्त है, अनादि, अनन्त नहीं है।

जैन – जन्म से पहले और मरण के बाद भी जीव का अस्तित्व है। ऐसा जीव पृथ्वी आदि से उत्पन्न नहीं होता है। जीव इनसे विलक्षण है। पृथ्वी आदि जड़ हैं, जीव चैतन्य है। जो चार्वाक ऐसा नहीं मानते हैं, उनको भी तत्त्व की संख्या लक्षण के भेद से है, वह नहीं बनती। इससे उपयोग स्वरूप, कर्त्ता का भोक्ता स्वरूप ही जीव शब्द का बाह्यार्थ है।

शङ्का – संज्ञा हेतु से जीव अर्थ की सिद्धि की। सो संज्ञा तो वक्ता के अभिप्राय के अनुसार होती है।

समाधान – ऐसा नहीं है। जिसमें अर्थक्रिया हो, वही संज्ञा का बाह्यार्थ है।

शङ्का – खरविषाण संज्ञा का क्या अर्थ है?

समाधान – अभाव के विशेष की प्राप्ति इसका अर्थ है। यह संज्ञा भी बाह्य अर्थ बिना नहीं है, इत्यादि जानना।।84।।

आगे इसी अर्थ को विशेष रूप से सिद्ध करते हैं –

बुद्धि–शब्दाऽर्थ–संज्ञास्तास्तिस्रो बुद्धयादिवाचिकाः।
तुल्या–बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बिकाः।।८४।।

अर्थ – बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं। ये बुद्धि, शब्द और अर्थ इन तीन संज्ञाओं से भिन्न बाह्यार्थ की वाचक हैं। बुद्धि, शब्द और अर्थ इनका बोध भी तीन प्रकार है। वे उनके समान हैं। बुद्धि आदि विषयक तीनों बोध भी उन तीनों (बुद्ध्यादि विषय) के प्रतिबिम्बक–व्यंजक होते हैं। यहाँ ऐसा जानना चाहिए। पूर्व कारिका में जो संज्ञापना हेतु से बाह्य पदार्थ सिद्ध किया था वहाँ बौद्ध मत वाले ऐसा कहते हैं कि जीव शब्द का हेतु बाह्यार्थ तो संज्ञापना हेतु से सिद्ध हो, परन्तु जीव शब्द की बुद्धि और जीव शब्द का शब्द ये भी अर्थ हैं। ये तो विपक्ष हैं, इनमें संज्ञापना हेतु व्याप्त है। अतः इस हेतु के व्यभिचार आता है। उन बौद्धों को आचार्य ने इस कारिका में उपदेश देकर व्यभिचार मिटाया है कि संज्ञापना हेतु तो बाह्यार्थसहितपने ही को सिद्ध करता है। बुद्धि, शब्द और अर्थ ये संज्ञायें हैं। वे इनके बाह्य अर्थ बुद्धि, शब्द और अर्थकी ही वाचक हैं। बुद्धि, शब्द और अर्थ का ज्ञान भी उन तीनों के तुल्य है। इसमें 'जीवको मत मारना'

ऐसा कहनेसे जीव अर्थका प्रतिबिम्बक बोध उत्पन्न होता है। उसी प्रकार बुद्धि जिसका पदार्थ है, ऐसे जीव शब्द से जीव है। जैसे बुद्धि अर्थकी प्रतिबिम्बक होती है, उसी प्रकार शब्द जिसका पदार्थ है, ऐसे जीव शब्दसे जीवको कहते है, ऐसा ज्ञान होता है, इस प्रकार शब्द प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार संज्ञा तो बाह्य पदार्थ नहीं कही है। शब्दका अर्थ, नाम, ज्ञान ये तीनों संज्ञा के समान हैं। ये प्रतिबिम्बित है; क्योंकि उन तीनों का ज्ञान कराते हैं। इस प्रकार व्यभिचार मिटाया।।85।।

आगे विज्ञानाद्वैतवादी बौद्ध कहते हैं कि संज्ञापना से शब्द को आपने बाह्य अर्थ सहित सिद्ध किया सो हम तो बाह्य अर्थ की सिद्धि नहीं करते हैं। संज्ञा भी विज्ञान ही है, उससे भिन्न बाह्य पदार्थ तो नहीं है। हेतु शब्द का दृष्टान्त भी साधनविकल दृष्टान्ताभास है। हेतु भी विज्ञान में आ गया। उस विज्ञानाद्वैतवादी के प्रति दूसरा हेतु आचार्य कहते हैं –

वक्तृश्रोतृ–प्रमातृणां बोध–वाक्य प्रमाःपृथक्।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यर्थौ तादृशेतरौ।।८६।।

अर्थ – वक्ता, श्रोता और प्रमाता इन तीनों के बोध, वाक्य और प्रमाण ये तीनों ही भिन्न–भिन्न हैं। यहाँ कहते हैं कि यदि ये तीनों भ्रान्त हैं, भ्रम रूप हैं तो भ्रान्तस्वरूप होने से प्रमाण होना भी भ्रान्त ही ठहरता है। पुनः कहते हैं कि यदि प्रमाण भी भ्रान्त हो तो प्रमाण के भ्रान्तस्वरूप होने से प्रमाण–अप्रमाण स्वरूप बाह्य प्रमेय पदार्थ भी भ्रान्तस्वरूप ठहरते हैं। ऐसा होने से अन्तरङ्ग ज्ञान और बाह्य पदार्थ सबका ही लोप होता है। तब संवेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नहीं होती है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि वक्ता के अर्थ को ज्ञान बिना तो वाक्य किस प्रकार प्रवृत्त हो तथा वक्ता का वाक्य न प्रवर्तें तो श्रोता को अर्थ का ज्ञान कैसे हो?अथवा पदार्थ का निर्णय करने वाले प्रमाता के पदार्थ की प्रमाणता न हो तो शब्द और अर्थ रूप जो प्रमेय है, उनका यथार्थपना कैसे हो? अतः वक्ता, श्रोता और प्रमाता के ज्ञान, वाक्य एवं प्रमाणता भिन्न–भिन्न मानना चाहिए। यदि इस बातको संवेदनाद्वैतवादी न मानें तो उसका संवेदनाद्वैत भी सिद्ध न हो।।86।।

संवेदनाद्वैतवादी यदि कहते हैं कि भ्रान्तिरहित प्रमाण निर्बाध मानना चाहिए तो आचार्य कहते हैं कि बाह्य पदार्थ माने बिना प्रमाण और

प्रमाणाभास की व्यवस्था नहीं ठहरती है।

बुद्धि--शब्द--प्रमाणत्वं बाह्यार्थेसति नाऽसति।

सत्याऽनृतव्यवस्थैवं युज्यते ऽ र्थाप्त्यनाप्तिषु।।८७।।

अर्थ – बाह्य पदार्थ के होने से बुद्धि और शब्द के प्रमाणपना है। बाह्य पदार्थ के न होने से बुद्धि और शब्द के प्रमाणपना नहीं है, क्योंकि अर्थ की प्राप्ति और अप्राप्ति में इस प्रकार सत्य और असत्य की व्यवस्था युक्त होती है। बाह्य पदार्थ के बिना बुद्धि और शब्द के प्रमाणता नहीं होती है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए की बुद्धि तो ज्ञान है, वह अपनी ही वस्तु की प्राप्ति के लिए है। शब्द पर के प्रतिपादन के लिए है। वचन बिना पर का ज्ञान पर के प्रत्यक्ष ग्रहण में नहीं आता है। स्वपक्ष का साधन और पर पक्ष का दूषण इसी प्रकार होता है अतः जो प्रमाण को निर्बाध मानकर अपना पक्ष साधना चाहता है, उसे बाह्य पदार्थ भी मानना चाहिए। बाह्य पदार्थ के बिना प्रमाण और प्रमाणाभास नहीं ठहरता है। इस प्रकार बाह्य पदार्थ के सिद्ध होने से वक्ता, श्रोता और प्रमाता ये तीनों सिद्ध होते हैं। उनके ज्ञान, वचन, प्रमाण ये तीनों सिद्ध होते हैं। इसी से जीव की सिद्धि होती है। इसी से जीव पदार्थ को जानकर प्रवर्तने के निर्बाध सबाध की सिद्धि है। इस प्रकार भाव प्रमेय की अपेक्षा तो कथंचित् सर्वज्ञान अभ्रान्त सिद्ध होता है। बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कथंचित्, बाह्य पदार्थ में विसंवाद से भ्रान्ति सिद्ध होती है। अविसंवाद से अभ्रान्ति सिद्ध होती है। इस प्रकार कथंचित् उभय, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् उभयावक्तव्य, इस प्रकार पूर्ववत् सप्तभङ्गी प्रक्रिया जोड़नी चाहिए। इस प्रकार अन्तरङ्ग और बाह्य तत्त्व के निर्णय करने का व्यापक उपाय तत्त्व कहना चाहिए।।87।।

अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग विचार , पक्ष होय एकान्त निवार।

तत्त्व जनायौ श्री मुनीवर, अनेकान्त है सत्य उपाय।।

इस प्रकार आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थरूप देश भाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में सातवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।

अष्टम परिच्छेद

दोहा

देवरू पौरूष का, हट विन यथा जनाय।
अनेकान्ततैं साधि जिन, नमूँ मुननि के पाँय।।१।।

अब यहाँ कारक लक्षण उपेय तत्त्व की परीक्षा करते हैं। वहाँ प्रथम ही दैव ही से कार्यसिद्धि है, ऐसा एकान्त पक्ष माननें में दोष दिखलाते हैं –

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरूषतः कथम्।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरूषं निष्फलं भवेत्।।८८।।

अर्थ – यदि दैव रूप एकान्त से सर्वप्रयोजनभूत कार्य सिद्ध होता है, ऐसा माना जाए तो वहाँ पूछते हैं कि पुण्य पाप रूप कर्म, पुरूष के शुभ, अशुभ आचरण रूप व्यापार से कैसे उत्पन्न होता है? यदि दैववादी कहे कि अन्य दैव, जो पहले था, उससे उत्पन्न होता है, पौरूष से नहीं उत्पन्न होता है तो उससे कहते हैं कि इस प्रकार तो मोक्ष होने का अभाव ठहरता है। पूर्व पूर्व दैव से उत्तरोत्तर दैव उत्पन्न हो, तब मोक्ष कैसे होगा? पौरूष करना निष्फल ठहरता है। अतः दैव एकान्त श्रेष्ठ नहीं है। इस कथन से जो एकान्त रूप से कहते हैं कि धर्म के अभ्युदय से मोक्ष होता है, उसका भी निषेध जानना चाहिए। यहाँ कोई कहता है कि जो स्वयं पौरूष रूप प्रवृत्ति न करे, कार्य का उद्यम न करे, उसके तो समस्त इष्टाऽनिष्ट कार्य अदृष्ट (दैव) मात्र से होता है। जो पौरूष उद्यम करे, उसके पौरूष मात्र से होता है। इसका उत्तर यह है कि ऐसा कहने वाला भी परीक्षावान नहीं है; क्योंकि साथ उद्यम करने वाले के भी किसी के कार्य निर्विघ्न सिद्ध होता है, किसी के कार्य तो नहीं होता है, उन्हें अनर्थ की प्राप्ति होती है, इस प्रकार देखा जाता है, अतः ऐसा है कि योग्यता अथवा पूर्व कर्म तो दैव है। इस प्रकार ये दोनों तो अदृष्ट हैं। इस भव में तो पुरूष चेष्टा कर उद्यम करता है, सो पौरूष है। यह पौरूष दृष्ट है। इन दोनों से अर्थ की सिद्धि है। पौरूष वाले के तो होता नहीं दिखाई देता है और दैवमात्र से मानने में वाञ्छा करना अनर्थक ठहरता है। मोक्ष भी परम पुण्य के उदय और चारित्र के विशेष आचरण रूप पौरूष से होता है। अतः दैव का एकान्त श्रेष्ठ नहीं है।

पौरूष ही से कार्य सिद्ध होता है, जो ऐसा एकान्त मानता है, उसमें दोष दिखलाते हैं –

पौरूषादेवसिद्धिश्चेत्पौरूषं दैवतः कथम्।
पौरूषश्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरूषम्।।८६।।

अर्थ – जो पौरूष ही से अर्थ की सिद्धि है, ऐसा एकान्त पक्ष मानता है, उससे पूछते हैं कि पौरूष दैव से कैसे होता है? अतः दैव की उपजाई हुई कार्य की सिद्धि पौरूष कराता है; क्योंकि यह प्रसिद्ध वचन है कि जैसी भवितव्यता होनी होती है, वैसी बुद्धि उत्पन्न होती है, इस प्रकार तो पौरूष समस्त प्राणी करते हैं। उन सबका ही फल होना चाहिए, सो है नहीं। किसी का पौरूष सफल होता है, किसी का निष्फल होता है। यहाँ यदि कोई कहे कि जिससे सम्यग्ज्ञान पूर्वक पौरूष होता है, उसके तो वह (पौरूष) सफल होता है और जिसके मिथ्याज्ञानपूर्वक होता है, उसके निष्फल होता है। उसका उत्तर यह है कि सम्पूर्ण सम्यग्ज्ञान तो सर्वज्ञ के है। छद्‌मस्थ के तो स्वयं के ज्ञान में आई सत्यार्थ सामग्री से भी पौरूष से कार्य होता हुआ दिखाई नहीं देता है। अतः पौरुष का एकान्त पक्ष भी श्रेष्ठ नहीं है।।89।।

आगे दोनों पक्ष के एकान्त में तथा अवक्तव्य एकान्त में दोष दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्ति र्न वाच्यमिति युज्यते।।९०।।

अर्थ – स्याद्वादन्याय के विद्वेषियों के दैव, पुरूष दोनों पक्ष एक साथ सम्भव नहीं है; क्योंकि दोनों पक्षों में परस्पर विरोध है। दोनों का अवक्तव्य एकान्तपक्ष भी नहीं बनता है, क्योंकि अवाच्य पक्ष है। यह बनता नहीं है। अतः स्याद्वादन्याय ही श्रेष्ठ है। ।90।।

आगे पूछा कि स्याद्वादन्याय कैसा है? इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते हैं –

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टाऽनिष्टं स्वपौरूषात्।।९१।।

अर्थ – यदि पुरूष की बुद्धिपूर्वक न हो, उस अपेक्षा से तो इष्ट अनिष्ट कार्य अपने दैव से ही हुआ कहना चाहिए। वहाँ पौरूष प्रधान नहीं है, दैव का ही प्रधानपना है। यदि पुरूष की बुद्धिपूर्वक हो तो उस अपेक्षा से इष्टानिष्ट कार्य पौरूष से हुआ कहना चाहिए। वहाँ देव का गौण भाव है, पौरूष ही प्रधान है। इस प्रकार परस्पर अपेक्षा जाननी चाहिए। इस प्रकार कथंचित् (अबुद्धिपूर्वक) सब दैवकृत है। कथंचित् उभय, कथंचित्

अवक्तव्य, कथंचित् दैवकृत अवक्तव्य, कथंचित् पौरूषकृत अवक्तव्य, कथंचित् उभयकृत, इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रक्रिया पूर्ववत्, जोड़नी चाहिए। ।91।।

चौपाई

बुद्धिपूर्वक में पौरूष मानि दैवकीय मैं बुधि मिलानि।
ऐसै अनेकान्त जे गहैं, ते जन कार्य सिद्धि सब लहैं।।१।।

इति श्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थ रूप देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में आठवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।

नवम् परिच्छेद

पुण्य पाप के बंध कूँ स्याद्‌वाद तैं साधि।
कियौ यथारथ जैन मुनि, नमौं नितहि तजि आधि।।१।।

पूर्व परिच्छेद में दैव कहा। प्राणियों में इष्ट अनिष्ट कार्य साधन वह दैव दो प्रकार का कहा है – एक पुण्य, दूसरा पाप। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम, शुभगोत्र इस प्रकार चार तो पुण्य कर्म होते हैं। इनसे अन्य प्रकृतियाँ पाप कर्म कही हैं। उनके भेद तो सिद्धांत से जानना चाहिए। यहाँ कहते हैं कि इनका आस्रव, बन्ध कैसे होता है? कोई ऐसा एकान्त पक्ष मानते हैं कि पर को दुःख देने में तो पाप है और पर को सुखी करने में पुण्य है। इस प्रकार के एकान्त पक्ष में दोष दिखाते हैं –

पापं ध्रुवं परे दुःखात्, पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाऽकषायौ च, बध्येयातां निमित्ततः।।९२।।

अर्थ – दूसरे को दुःख पहुँचाने से एकान्त रूप से पाप का बन्ध होता है। दूसरे को सुख पहुँचाने से एकान्त रूपसे पुण्य बन्ध होता है। यदि ऐसा एकान्त पक्ष मानें तो तृण कटंकादि अचेतन जो दुःख पहुँचाने वाले हैं और दुग्ध आदि जो सुख पहुँचाने वाले हैं तथा अकषाय जो का परहित में रत वीतरागी मुनि आदि हैं वे भी पुण्य पाप से बंध जायें, क्योंकि परमें सुख दुख उपजाने रूप निमित्त का उनके सद्‌भाव है। यदि कोई कहे कि चेतन ही बंध योग्य है तो वीतराग मुनि चेतन हैं वे भी बधें। यदि कहा जाय कि

वीतराग मुनियों के सुख दुःख उपजाने का अभिप्राय नहीं है, अतः वे नहीं बँधते हैं तो ऐसा कहने पर दूसरे को सुख दुःख उत्पन्न कराने में बन्ध होता ही है, ऐसा एकान्त न रहा। इस हेतु से (पर को सुख दुःख उत्पन्न कराने में) बन्ध नहीं होता है, ऐसा सिद्ध हुआ है।।92।।

स्वयं को दुःख पहुँचाने से पुण्य बन्ध होता है, सुख पहुँचाने से पाप बन्ध होता है, इस प्रकार के एकान्त कथन में दोष दिखलाते हैं।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांताभ्यां युंज्यान्निमित्ततः।।९३।।

अर्थ – स्वयं में दुःख उपजाने से तो पुण्य बन्ध होता है और स्वयं में सुख उपजाने से पाप बन्ध होता है, ऐसा एकान्त रूप से माना जाए तो कषाय के अभिप्राय रहित मुनि तथा ज्ञानी पंडित ये भी पुण्य, पाप दोनों से युक्त होकर बँधे; क्योंकि इनके निमित्त का सद्भाव है। वीतराग मुनि के तो कायक्लेश आदि दुःख की उत्पत्ति पायी जाती है, ज्ञानी पंडित के तत्त्व ज्ञान सन्तोष रूप सुख की उत्पत्ति पाई जाती है, यह निमित्त यदि कहा जाय कि उनके सुख दुःख उपजाने का अभिप्राय नहीं है,उन के बंध नहीं है। तो इस प्रकार अनेकान्त सिद्ध हुआ। इस हेतु से बंध नहीं भी ठहरा। अकषायी भी बँधे तो बन्ध से छूटना नहीं ठहरे। इस प्रकार दोनों ही एकान्त श्रेष्ठ नहीं, प्रत्यक्ष तथा अनुमान से विरोध आता है।।93।।

आगे दोनों का एकान्त मानने में दोष दिखाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावच्यमिति युज्यते।।९४।।

अर्थ – दोनों एकान्तों को एक स्वरूप से एकान्त मानें तो दोनों एक स्वरूप नहीं होते हैं। क्योंकि दोनों पक्षों में स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों का विरोध है अतः कथंचित् मानना युक्त है। अवक्तव्य एकान्त पक्ष मानें तो अवक्तव्य है, ऐसा कहना भी नहीं बनता है। अतः स्याद्वाद ही युक्त है।94।।

आगे पूछते हैं कि स्याद्वाद में पुण्य, पाप का आस्रव कैसे बनता है। ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं –

विशुद्धि संक्लेशांगं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्य पापास्रवौ युक्तौ, न चेद् व्यर्थस्तवार्हतः।।९५।।

अर्थ – अपने में, दूसरे में तथा दोनों में स्थित, उपजाये उपजे सुख और दुःख आदि विशुद्ध और संक्लेश का अङ्ग न हों तो आप अरहन्त के

मत में व्यर्थ कहा है। उनसे बन्ध नहीं होता है। विशुद्धि तो मन्द कषाय रूप परिणाम को कहते हैं। संक्लेश तीव्र कषाय रूप परिणाम को कहते हैं। विशुद्धि का कारण, विशुद्धि का कार्य, विशुद्धि का स्वभाव ये तो विशुद्धि के अङ्ग हैं। संक्लेश के कारण, संक्लेश के कार्य, संक्लेश का स्वभाव ये संक्लेश के अङ्ग हैं। विशुद्धि के अङ्ग से तो पुण्य का आस्रव होता है। संक्लेश के अङ्ग से पाप का आस्रव होता है। आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान रूप परिणाम तो संक्लेश स्वभाव है। आर्त्त, रौद्र, ध्यान का अभाव, आत्मा का स्वयं में स्थित होना विशुद्धि स्वभाव है। आर्त्त, रौद्र, ध्यान के कार्य हिंसादिक क्रियायें भी संक्लेश का अङ्ग हैं। मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग ये आर्त्त, रौद्र, ध्यान के कारण हैं। सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धि के कार्य हैं। धर्म तथा शुक्लध्यान के परिणाम विशुद्धि के स्वभाव हैं। उस विशुद्धि के होते ही आत्मा अपने में ठहरती है। अतः यह अनेकान्त सिद्ध हुआ कि स्वपरस्थ सुख दुःख कथंचित् पुण्य आस्रव के कारण हैं; क्योंकि वे विशुद्धि के अङ्ग हैं। कथंचित् पाप आस्रव के कारण हैं; क्योंकि संक्लेश के अङ्ग हैं। इसी प्रकार कथंचित् उभय हैं, कथंचित् अवक्तव्य हैं, कथंचित् पुण्य हेतु अवक्तव्य हैं, कथंचित् पाप हेतु अवक्तव्य हैं, कथंचित् उभय अवक्तव्य हैं, इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रकिया पूर्ववत् जोड़नी चाहिए।।95।।

चौपाई

निज पर सुख दुःख पुण्य बँधाय, जो विशुद्धि के अङ्ग जु थाय।
बँधे पाप जो रचै कलेश, परम विशुद्धि बंध नहि लेश।।१।।

इति श्री आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थ रूप देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में नवमां परिच्छेद समाप्त हुआ। मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग ये आर्त्त, रौद्र, ध्यान के कारण हैं। सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धि के कार्य हैं। धर्म तथा शुक्लध्यान के परिणाम विशुद्धि के स्वभाव हैं। उस विशुद्धि के होते ही आत्मा अपने में ठहरती है। अतः यह अनेकान्त सिद्ध हुआ कि स्वपरस्थ सुख दुःख कथंचित् पुण्य आस्रव के कारण हैं; क्योंकि वे विशुद्धि के अङ्ग हैं। कथंचित् पाप आस्रव के कारण हैं; क्योंकि संक्लेश के अङ्ग हैं। इसी प्रकार कथंचित् उभय हैं, कथंचित् अवक्तव्य हैं, कथंचित् पुण्य हेतु अवक्तव्य हैं, कथंचित् पाप हेतु अवक्तव्य हैं, कथंचित् उभय अवक्तव्य हैं, इस प्रकार

सप्तभङ्गी प्रकिया पूर्ववत् जोड़नी चाहिए।।95।।

चौपाई

निज पर सुख दुःख पुण्य बँधाय, जो विशुद्धि के अङ्ग जु थाय।
बँधे पाप जो रचै कलेश, परम विशुद्धि बंध नहिं लेश।।१।।

इति श्री आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की संक्षेप अर्थ रूप देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में नवमाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।

दसम परिच्छेद

बन्ध होय अज्ञान तैं, अल्पज्ञान तैं मुक्त।
दोऊ मिथ्यापक्ष बिन, नमौं स्यात्पदयुक्त।।१।।

अब यहाँ अज्ञान से बन्ध ही होता है तथा अल्पज्ञान से मोक्ष ही होता है इस प्रकार दोनों एकान्त पक्ष में दोष दिखाते हैं –

अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा।।९६।।

अर्थ – अज्ञान से बन्ध होता है, यदि ऐसा एकान्त पक्ष मानें तो केवली न हो; क्योंकि ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं। थोड़े ज्ञान से मोक्ष होता है, यदि ऐसा एकान्त पक्ष मानें तो अज्ञान बहुत रहता है, उससे बन्ध होगा, मोक्ष क्या होगा। इस प्रकार दोनों एकान्त पक्षों में दोष आता है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि जो समस्त पदार्थों को जानता है, उसे सर्वज्ञ केवली कहते हैं। यदि ऐसा न होकर अज्ञान से बन्ध ही होता रहे, तब बन्ध से छूटे बिना केवली कैसे हो। अल्पज्ञान होने से तो सर्वज्ञ नहीं होगा; क्योंकि अभी बहुत अज्ञान शेष है। अतः बन्ध होता है, यह पक्ष आता है। इस प्रकार दोनों एकान्त पक्ष श्रेष्ठ नहीं हैं।।96।।

आगे दोनों एकान्त पक्ष तथा अवक्तव्य एकान्त पक्ष मानने में दोष दिखलाते हैं –

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।

अर्थ – जो स्याद्वादन्याय के विद्वेषी हैं, उनके दोनों पक्ष एक स्वरूप नहीं होते हैं क्योंकि उनमें परस्पर विरोध है। अवाच्यता का एकान्तपक्ष भी नहीं बनता है; क्योंकि इसमें अवाच्य है, ऐसा भी कहना नहीं बनता है। अतः यह पक्ष भी श्रेष्ठ नहीं है।

आगे पूछते हैं कि यदि ऐसा है तो प्राणियों के बन्ध कौन से हेतु से होता है; जिससे प्राणियों के इष्ट अनिष्ट कार्य होते हैं। ऐसा पूछने पर इस आशङ्का के निराकरण के इच्छुक आचार्य कहते हैं –

अज्ञानान्मोहतो बन्धः नाऽज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा।।९८।।

अर्थ – मोह सहित अज्ञान से बन्ध है, मोहरहित अज्ञान से बन्ध नहीं है। इस प्रकार कथंचित् अज्ञान से बन्ध है, कथंचित् नहीं है, ऐसा अनेकान्त सिद्ध होता है। ज्ञान थोड़ा भी हो, किन्तु जिसमें मोह न हो, उससे तो मोक्ष होता है। यदि थोड़ा ज्ञान मोह सहित है तो उससे बन्ध होता है। इस प्रकार थोड़े ज्ञान में अनेकान्त सिद्ध होता है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि जो कर्म बन्ध स्थिति और अनुभाग लिए अपना फल देने को समर्थ होता है, वह क्रोधादि कषायों से मिला मिथ्यात्व सहित तथा मिथ्यात्व रहित केवल कषाय सहित अज्ञानता से होता है तथा जिसमें क्रोधादि कषाय तथा मिथ्यात्व न मिले ऐसा अज्ञान यथाख्यात चारित्र वाले मुनि के है। उससे स्थिति, अनुभाग रूप बन्ध नहीं होता है। ऐसा ही स्तोक ज्ञान के विषय में जानना चाहिए। केवलज्ञान की अपेक्षा छद्मस्थ का ज्ञान थोड़ा कहा जाता है, उसमें मोह सहित से बन्ध होता है तथा मोह रहित से मोक्ष होता है। ऐसा जानना चाहिए। यहाँ भी सप्तभङ्गी प्रक्रिया पूर्ववत् जोड़नी चाहिए। अज्ञान से कथंचित् बन्ध है, मोह रहित अज्ञान से बन्ध नहीं है, मोह रहित थोड़े ज्ञान से मोक्ष है, मोह रहित अज्ञान से बन्ध नहीं है। मोह रहित थोड़े ज्ञान से मोक्ष है, मोह सहित थोड़े ज्ञान से बन्ध है, कथंचित् उभय हैं, कथंचित् अवक्तव्य हैं, कथंचित् अज्ञान से अवक्तव्य हैं, कथंचित् अज्ञान से बन्ध अवक्तव्य नहीं हैं, कथंचित् उभय अवक्तव्य हैं, इस प्रकार यहाँ तक सर्वथा एकान्तवादी और आप्त के अभिमान से दग्ध व्यक्ति के मत, इष्ट, तत्त्व में बाधा दिखाई तथा अनेकान्त को निर्बाध दिखाया। उसके दश पक्ष वर्णन किए। सत्–असत्, एक–अनेक नित्य–अनित्य,, भेद–अभेद,

अपेक्षा–अनपेक्षा, हेतु–आगम, अन्तरङ्ग–बहिरङ्गत्त्व, दैवसिद्धि–पौरूषसिद्धि, पुण्य–पाप का बन्ध, अज्ञान से बन्ध, थोड़े ज्ञान से मोक्ष, इस प्रकार दश पक्ष के विधि निषेध से सात–सात भङ्ग कर सत्तर भङ्गों को एकान्त का निषेध किया और स्याद्वाद सिद्ध किया।।98।।

आगे पूछते हैं कि काम आदि दोष स्वरूप जो मोह की प्रकृतियाँ हैं, उन सहित जो अज्ञान है, उससे प्राणी के शुभ अशुभ फल के भोगने का कारण जो पुण्य और पाप कर्म, उससे बँधा कहा, सो तो हो परन्तु कामादिक की उत्पत्ति में ईश्वर निमित्त है। ऐसा पूछने पर इस आशंका को दूर करने के लिए आचार्य कहते हैं –

कामदिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः।।९९।।

अर्थ – कामादिप्रभवः अर्थात् काम, क्रोध, मान, माया, लोभ की उत्पत्ति जिसमें हो, ऐसा भावसंसार है। वह अनेक प्रकार का है; क्योंकि इसमें सुख दुःख आदि देश, काल के भेद से अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, सो यह (कामादिप्रभवः)विचित्र रूप संसार है। यह कर्म बन्ध के अनुरूप होता है। जैसा कर्म पहले बँधा था, उसके उदय के अनुसार होता है। जो कर्म पहले बाँधा था वह अपने कारणों से बाँधा था। वे कारण जीव हैं। वे जीव शुद्धि, अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के हैं। इस प्रकार संसार की उत्पत्ति का क्रम है। यहाँ ईश्वरवादी कहता है कि कामादि की उत्पत्ति ईश्वर कि की हुई है। उससे कहते हैं कि ईश्वर तो नित्य है, एक स्वभाव रूप है। उसकी इच्छा भी एक स्वभाव है। उसका ज्ञान भी एक स्वभाव है तथा संसार में जो कार्य हैं, वे अनेक स्वभाव रूप हैं। जो एक स्वभाव हो, वह अनेक स्वभावरूप कार्य को कैसे करे? यदि करे तो कार्यों की तरह ईश्वर, इच्छा, स्वभाव तथा ज्ञान के अनित्यपना तथा अनेकस्वभावपना आए। इस प्रकार का ईश्वर मान्य तथा सिद्ध नहीं होता है। जीवों के शुद्ध, अशुद्ध भेद करने से किसी के मुक्ति होती है, किसी के संसार ही है, ऐसा सिद्ध होता है।ईश्वरवाद की चर्चा विशेष है, अतः अष्टसहस्री से जानना चाहिए।।99।।

आगे पूछते हैं कि जीवों की जो शुद्धि, अशुद्धि कही, उसका क्या स्वरूप है? आचार्य कहते हैं –

शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः।।१००।।

अर्थ –वे पूर्वोक्त शुद्धि, अशुद्धि शक्ति हैं। योग्यता और अयोग्यता सुनिश्चित असंभवद्बाधक प्रमाण से निश्चित की हुई संभव है। जैसे – उड़द, मूँग वगैरह धान्य में पकने और न पकाने योग्य शक्ति स्वयं की है। उस दोनों की व्यक्ति प्रकट होना तो सादि –काल अपेक्षा आदि सहित है तथा अनादि आदि रहित है। यदि पूछा जाय कि यह व्यक्ति (अभिव्यक्ति) सादि, अनादि क्यों है? तो उसका उत्तर यह है कि यह वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव तर्क का गोचर नहीं है। वस्तु स्वभाव में हेतु नहीं पूछा जाता है। इस प्रकार कारिका का अर्थ है। टीका में ऐसा अर्थ है – जीवों में तो भव्यपना है सो तो शुद्धि शक्ति है। यह सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से निश्चित की जाती है। अशुद्धि शक्ति अभव्यपना है सो सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति रहित है। इसे प्रत्यक्ष रूप से तो सर्वज्ञ जानता है और छद्मस्थ आगम से जानता है। उनकी व्यक्ति होती है सो भव्य जीव के तो शुद्धि की व्यक्ति सादि है। अतः उसके सम्यग्दर्शन आदिक आदि सहित प्रकट होता है। अभव्य जीव के अशुद्धि की व्यक्ति, अनादि ही है; क्योंकि इसके मिथ्यादर्शन आदिक अनादि ही के हैं। इस शक्ति की व्यक्ति का ऐसा भी व्याख्यान है–

जीवों के अभिप्राय के भेद से शुद्धि है। सम्यग्दर्शनादि परिणामस्वरूप अभिप्राय तो शुद्धि है और मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्यक्ति भव्य जीवों के सादि, अनादि है। जहाँ सम्यग्दर्शनादिक उत्पन्न न हों वहाँ तक अशुद्धि की व्यक्ति अनादि कही जाती है तथा सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धि की व्यक्ति सादि कही जाती है, इस प्रकार जानना चाहिए।

प्रश्न – यहाँ स्वभाव में तर्क न होना कहा सो प्रत्यक्ष प्रतीति में आए पदार्थ के स्वभाव के विषय में तर्क न होना कहा है। जो परोक्ष हों, उनमें तर्क किया जाना चाहिए।

उत्तर – अनुमान से प्रतीति में आए पदार्थ में भी तर्क नहीं करना चाहिए और सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीव का स्वभाव है, उसमें भी तक्र नहीं करना चाहिए। यह कहना अच्छी तरह बना कि द्रव्यादि संसार जिसका कारण है ऐसे कामादि प्रभवरूप भाव संसार के कर्मबन्ध के अनुरूपपना होने

से जीवों का शुद्धि अशुद्धि के विचित्रपने में युक्ति होना न होना है।।100।।

आगे मानो भगवान् ने पूछा कि हे समन्तभद्र! सर्वज्ञपना आदि उपेय तत्त्व और उसके उपाय तत्त्व (ज्ञायक) हेतुवाद, अहेतुवाद और कारक तत्त्व—दैव, पौरूष, इनका जानना समस्त रूप से तो प्रमाण और एकदेश की अपेक्षा नयों से कहा है। क्योंकि प्रमाण और नय के बिना जानना नहीं होता है। यह नियम कहा है। प्रथम ही प्रमाण को कहते हैं; क्योंकि इसके स्वरूप संख्या, विषय और फल चारों के विषय में विवाद है। अन्यवादी इन्हें अनेक प्रकार से कहकर अन्यथा मानते हैं। उनके निराकरण के बिना प्रमाण का निश्चय नहीं होता है। ऐसा पूछने पर मानों आचार्य कहते हैं —

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते, युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं, स्याद्वादनय संस्कृतम्।।१०१।।

अर्थ — हे भगवान्! आपके मत में तत्त्वज्ञान प्रमाण है। यह तो प्रमाण का स्वरूप कहा। आपके तत्त्वज्ञान में एक काल में समस्त पदार्थों का प्रतिभासना है अर्थात् यह केवलज्ञान रूप है। जो ज्ञान क्रमभावी है, वह भी प्रमाण है; क्योंकि यह भी तत्त्वज्ञान है। इस प्रकार का ज्ञान मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय। इन चार रूप है। इसके प्रमाण होने में हेतु स्याद्वाद नय से संस्कृत होना हैं। यदि सर्वथा सर्वथा एकान्त कहें तो बाधा आती है। अतः स्याद्वाद से सिद्ध किया हुआ निर्बाध है। युगपत् सर्वभासन और क्रमभावी कहने में प्रमाण की कि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप संख्या कही है। सर्वभासन और क्रमरूप भासन से विषय बतलाया है। इस प्रकार कारिका का अर्थ प्रमाण का स्वरूप, संख्या तथा विषय बतलाने स्वरूप है। वहाँ ऐसा जानना चाहिए कि तत्त्वज्ञान के कहने से अज्ञान, निराकार दर्शन, इन्द्रिय सन्निकर्ष तथा इन्द्रिय की प्रवृत्तिमान के प्रमाणपने का निराकरण हुआ। ये चूँकि प्रमिति के प्रति करण नहीं है, अतः प्रमाण नहीं हैं

प्रश्न — तत्त्वज्ञान को सर्वथा प्रमाण कहने से अनेकान्त से विरोध आता है।
उत्तर — आकार से प्रमाण है और जिस आकार से मिथ्याज्ञान स्वरूप है, उस आकार से अप्रमाण हैं। इस प्रकार बुद्धि के प्रमाण, अप्रमाण स्वरूप होने में अनेकान्त से विरोध नहीं है। जैसे — निर्दोष नेत्र वाला चन्द्रमा और सूर्य को जब उगते हुए देखता है तब पृथ्वी से लगा हुआ देखता है। सो चन्द्र तथा सूर्य की अपेक्षा तो यह देखना प्रमाण है तथा पृथ्वी से लगा देखना अप्रमाण

है। उसी प्रकार दोष सहित नेत्र वाले को एक चन्द्रमा के दो दिखाई दें तो चन्द्रमा का देखना तो प्रमाण है तथा दो चन्द्रमा देखना अप्रमाण है। इस प्रकार एक ही बुद्धि में उपेक्षा विवक्षा से प्रमाण–अप्रमाणपना संभव है।

प्रश्न – प्रमाण, अप्रमाण नाम के नियम का व्यवहार कैसे ठहरता है?

उत्तर – बढ़ने, घटने की अपेक्षा प्रधान और गौण कर नियम का व्यवहार चलता है। जैसे – कस्तूरी आदि में बहुत सुगन्ध देखकर उसे व्यवहार में सुगन्ध द्रव्य कहते हैं। इस प्रकार गन्ध की प्रधानता की अपेक्षा कहा। यद्यपि उसमें स्पर्श आदि भी हैं, तथापि उनकी गौणता है। इस प्रकार नाम का व्यवहार हैं इस प्रकार तत्त्वज्ञान प्रमाण स्वरूप कहा। प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से संख्या दो कही। प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है? व्यवहार प्रत्यक्ष – बुद्धिइन्द्रिय द्वारा विषय को साक्षात् जानना। 2.परमार्थप्रत्यक्ष के दो भेद हैं – 1. सकल प्रत्यक्ष (केवलज्ञान) और 2. विकल प्रत्यक्ष – अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। प्रत्यक्ष का सामान्य लक्षण स्पष्ट रूप से – विषयों सहित जानना है। परोक्ष के पॉच भेद हैं – 1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान, 3. तर्क, 4. अनुमान और 5. आगम। इनका लक्षण इस प्रकार है – जो पहले अनुभव (धारणा) में आयी ऐसी वस्तु का स्मरण होना, याद आना स्मृति है। वर्तमान में अनुभव आया और पहले का याद आना दोनों के एकपना, सदृशपने आदि का जोड रूप ज्ञान सो प्रत्यभिज्ञान है। साध्यसाधन की व्याप्ति–आविनाभाव को जानना तर्क है। साधन से साध्य पदार्थ का ज्ञान होना अनुमान है। अनुमान के दो भेद है – 1. स्वार्थानुमान 2. परार्थानुमान। साधन से साध्य का स्वयं ही निश्चय कर जानना स्वार्थानुमान है और पर के उपदेश से निश्चय कर जानना परार्थानुमान है। अनुमान के पाँच अवयव हैं – प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय अैर निगमन। साधन और साध्य का आश्रय दोनों को पक्ष कहते हैं। इस प्रकार के पक्ष के वचन को प्रतिज्ञा कहते हैं। साध्य का स्वरूप तो शक्य, अभिप्रेत और अप्रसिद्ध ऐसे तीन स्वरूप है। साध्य का आश्रय प्रत्यक्षादिक से प्रसिद्ध होता है। साध्य के साथ जिसकी अविनाभाव रूप से व्याप्ति होती है, वह साधन है। साधन के वचन को हेतु कहते हैं। जो पक्ष के समान तथा पक्ष के विलक्षण (अन्य ठिकाने वाला) हो उसे दृष्टान्त कहते हैं। दृष्टान्त के वचन को उदाहरण कहते हैं। पक्ष के समान को अन्वयी कहते हैं, पक्ष से विपरीत को व्यतिरेक कहते हैं। दृष्टान्त की

अपेक्षा से जो पक्ष को सामान्य रूप से कहता है, वह उपनय है। हेतु पूर्वक पक्ष के नियम के अनुसार कहना निगमन है। इनका उदाहरण इस प्रकार है –

यह पर्वत अग्निमान् है (प्रतिज्ञा)

क्योंकि यह धूमवान है। (हेतु)

जो जो धूमवान नहीं है, वह अग्निवान् नहीं है, जैसे – तालाब (व्यतिरेक, दृष्टान्त), उदाहरण –

चूँकि यह पर्वत धूमवान है। (उपनय)

अतः यह अग्निवान् है। (निगमन)

इस प्रकार पाँच अवयव प्रयोग का परार्थनुमान है। आप्त (सर्वज्ञ, सच्चा वक्ता) के वचन से वस्तु का निश्चय करना आगम प्रमाण है।

इस प्रकार प्रमाण की संख्या है। अन्यवादी स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तथा तर्क को प्रमाण न मानकर संख्या के नियम की स्थापना करते हैं। उनका नियम स्मृति आदि की प्रमाणता का बिगाड़ करता है। प्रमाण का विषय सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है, वही निर्बाध सिद्ध होती है। अन्य वादी, सामान्य, विशेष तथा निरपेक्ष सामान्य और विशेष को प्रमाण का विषय स्थापित करते हैं तो निर्बाध सिद्ध होता नहीं है। तत्त्वज्ञान कथंचित् युगपत प्रतिभास स्वरूप हैं; क्योंकि समस्त विषयस्वरूप है। कथंचित् क्रमभावी है; क्योंकि उसका क्रम रूप विषय है, इत्यादि सप्तभङ्गी जोड़ना तथा पृथक्–पृथक् भेदों में लगाना। जैसे – तत्त्वज्ञान कथंचित् प्रमाण है। अपनी प्रमिति के प्रति साधकतम है। कथंचित् अप्रमाण है; क्योंकि प्रमाण के अन्य भेदों की अपेक्षा प्रमेय है अथवा अपने आप प्रमेय है; क्योंकि प्रमाण के अन्य भेदों की अपेक्षा प्रमेय है,, इत्यादि सप्तभङ्गी जोड़ना चाहिए। प्रमाण की विशेष चर्चा अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक, तत्त्वार्थसूत्र की टीका तथा परीक्षामुख से जाननी चाहिए।।101।।

आगे प्रमाण का फल कहते है; क्योंकि अन्यवादी फल का स्वरूप अन्यथा मानते हैं, उसका निराकरण होता है।

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्याऽस्य स्वगोचरे।।१०२।।

अर्थ – आद्यस्य अर्थात् कारिका युगपत्सर्वभासनं ऐसा पहले कहा है। इससे केवलज्ञान आदि लेना, उसका भिन्न फल तो उदासीनता,

वीतरागता है; क्योंकि केवलियों के समस्त प्रयोजन सिद्ध हुआ। संसार और ससार का कारण हेय था, उसका अभाव हुआ और मोक्ष का कारण उपादेय था, उसकी प्राप्ति हुई। अब कुछ प्रयोजन नहीं रहा, अतः वीतरागता है।

प्रश्न – केवली वीतराग के प्राणियों के हितोपदेश रूप वचन करूणा बिना कैसे प्रवृत्त होते हैं।

उत्तर – उनके घातिकर्म का नाश हुआ, अतः मोह का विशेष जो कारण है सो तो नहीं है अन्तराय के नाश से समस्त प्राणियों को अभयदान देने स्वरूप आत्मा का स्वभाव प्रकट हुआ सो ही परमदया है। वही मोह के अभाव से उपेक्षा है। उपदेश के वचन तीर्थंकरपना नामक नामकर्म की प्रकृति के उदय से बिना इच्छा स्वयमेव प्रवृत्त होते हैं। उनसे समस्त प्राणियों का हित होता है। केवलज्ञान प्रमाण का अभिन्न फल अज्ञान का अभाव है। शेष मति आदि ज्ञान रूप प्रमाण फल साक्षात् तो अपने विषय में अज्ञान का अभाव है। वह उनसे अभिन्न है। परम्परा से हेय का त्याग और उपादेय के ग्रहण का ज्ञान होना फल है तथा उपेक्षा भी है। वे उनसे भिन्न हैं। इस प्रकार कथंचित् फल अभिन्न और कथंचित् भिन्न है। इससे एकान्त का निराकरण है।।102।।

आगे पूछते हैं कि प्रमाण का फल स्याद्वादनय संस्कृत कहा है, सो स्यात् शब्द का स्वरूप क्या है। ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं –

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि।।१०३।।

अर्थ – हे भगवान्! स्यात् पद निपात है, अव्यय है, वाक्यों में अनेकान्त का प्रकाशन करने वाला है। गम्य अर्थात् साधने योग्य–जानने योग्य पदार्थ है, उसके प्रति विशेषण है, क्योंकि इसके अर्थ का योगपना है, अर्थ से सम्बन्ध है। इससे तुम्हारे मत में केवलियों के भी यह है।

प्रश्न – वाक्य क्या है?

उत्तर – वर्णरूप पद है। उन परस्पर अपेक्षा रूपों का निरपेक्ष समुदाय वाक्य है। अन्यवादी तो वाक्य का स्वरूप अन्यथा प्रकार कहते हैं, निर्बाध नहीं है। वे दस प्रकार वाक्य यह कहते हैं – 1. आख्यात शब्द, 2. संघात, 3. संघातवर्तिनी जाति, 4. एक अवयवरहित शब्द, 5. क्रम, 6. बुद्धि, 7 अनुसंहृति 8. आद्यपद,9.अंतपद, 10. सापेक्षपद। इत्यादि अनेक प्रकारों में

बाधा आती है। स्याद्वाद से सिद्ध वाक्य का स्वरूप कहा, वही निर्बाध है।

प्रश्न – अनेकान्त क्या है?

उत्तर – सत्, असत् नित्य, अनित्य, एक, अनेक इत्यादि सर्वथा एकान्तों का निराकरण अनेकान्त है। इन सत् आदि के साथ लगाया स्यात् शब्द, स्याद्वाद का विशेषण होकर, उसे तत्त्व का अवयव कहकर उसका द्योतक होता है; क्योंकि निपात शब्दों को द्योतक भी कहते हैं। यह स्यात् निपात स्याद्वाद का वाचक भी है। (वाक्य) द्योतक पक्ष में गम्य अर्थ होता है, उसी का द्योतक होता है। यदि स्यात् शब्द नहीं लगायेंगे तो अनेकान्त अर्थ नहीं जाना जाता है, ऐसा जानना चाहिए।।103।।

प्रश्न – कथंचित् आदि शब्द से भी अनेकान्त अर्थ का जानना होता है।

उत्तर – यह सत्य है, होता है। यह कथंचित् शब्द भी स्यात् शब्द का पर्याय है सो स्याद्वाद दिखलाते हैं –

स्याद्वादः सर्वथैकान्त त्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः।।१०४।।

अर्थ – स्याद्वाद में स्यात् शब्द सर्वथा एकान्त के त्याग से कथंचित् का पर्याय शब्द है। किं शब्द से उत्पन्न कथं शब्द में चित् प्रत्यय का विधान किया है, तब कथंचित् हुआ है। इस सप्तभङ्ग रूप नय की अपेक्षा यह हेय और उपादेय पदार्थ का विशेषक भेद करने वाला है। स्याद्वाद अनेकान्त रूप वस्तु को अभिप्राय के अनुसार अपना विषय बनाकर सप्तभङ्ग नय की अपेक्षा कर स्वभाव और परभाव से सत्, असत् आदि की व्यवस्था का प्रतिपादन करता है। सप्तभङ्ग नय तो पहले कहे हुए जानना चाहिए। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों के ही भेद नैगम आदिक हैं। नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन तो द्रव्यार्थिक के भेद हैं। तथा ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत ये चार पर्यायार्थिक नय के भेद हैं। इन सातों में नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार तो अर्थप्रधान हैं। शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये तीन शब्द प्रधान हैं। नैगम नय के तीन भेद हैं। दो द्रव्य को प्रधान तथा गौण कर प्रवृत्ति करते हैं, दो पर्याय के प्रधान तथा गौण कर प्रवृत्त होते हैं। द्रव्य और पर्याय को प्रधान तथा गौण कर प्रवृत्त होते हैं, ऐसे तीन हैं। इनमें दो शुद्ध द्रव्य को प्रधान, गौण कर प्रवृत्त होते हैं तथा एक शुद्ध, एक अशुद्ध इस प्रकार दो द्रव्यों को प्रधान, गौण कर प्रवृत्त होते हैं।

इसी प्रकार द्रव्य नैगम दो प्रकार और पर्याय नैगम तीन प्रकार, दो अर्थ पर्याय, दो व्यंजन पर्याय, एक अर्थ पर्याय, एक व्यंजन पर्याय इनको प्रधान, गौण कर प्रवृत्त हाता है। वहाँ प्रधान अर्थ पर्याय तीन प्रकार है – ज्ञानार्थ पर्याय, ज्ञेयार्थ पर्याय और ज्ञान ज्ञेयार्थ पर्याय। नैगम व्यंजन पर्याय छह प्रकार की है – शब्दव्यंजन पर्याय, समभिरूढ़ व्यंजनपर्याय, एवंभूत व्यंजन पर्याय, शब्द समभिरूढ व्यंजनपर्याय, शब्द एवंभूत व्यंजनपर्याय, समभिरूढ एवंभूत व्यंजनपर्याय। नैगम अर्थ व्यंजन पर्याय तीन प्रकार की है – ऋजुसूत्र शब्द, ऋजुसूत्र समभिरूढ़, ऋजुसूत्र एवंभूत। नैगम द्रव्य पर्याय आठ प्रकार है – शुद्ध द्रव्य ऋजुसूत्रार्थ पर्याय, शुद्धद्रव्य शब्द, शुद्धद्रव्यसमभिरूढ़, शुद्धद्रव्य एवंभूत, अशुद्धद्रव्य ऋजुसूत्र,, अशुद्धद्रव्य समभिरूढ़, अशुद्धद्रव्य शब्द,अशुद्धद्रव्य एवंभूत। शब्द नय के काल, कारक, लिंग, सख्या, साधन, उपग्रह, लिंग, संख्या, साधन, उपग्रह के भेद से भेद हैं। वे मुख्य और गुण रूप से प्रवृत्त होते हैं। जितने वचन के भेद हैं, उतने ही नय हैं। उनकी प्रवृत्ति मुख्य और गौण की अपेक्षा विधि और निषेध से सात सात भङ्ग रूप होती है। इस प्रकार नयों की अपेक्षा स्याद्वाद की प्रवृत्ति होती है। स्याद्वाद हेय, उपादेय तत्त्व की जानकारी कराता है।

आगे कहते हैं कि स्याद्वाद केवलज्ञान के समान सर्वतत्त्व प्रकाशक है। इसे ही दिखलाते हैं –

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।१०५।।

अर्थ – स्याद्वाद और केवलज्ञान के द्वारा समस्त तत्त्वों का प्रकाशन होता है। इन दोनों में साक्षात् (प्रत्यक्ष) और परोक्ष जानने का ही भेद है। प्रत्यक्ष और परोक्ष जानने का ही भेद है। प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दोनों में से एक को कहा जायगा तो अवस्तु होगा। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि ज्ञान के दो भेद हैं – 1. प्रत्यक्ष और 2. परोक्ष। इनके सिवाय अन्य कोई नहीं है। दोनों ही प्रधान हैं; क्योंकि इनके परस्पर हेतुपना है। केवलज्ञान से स्याद्वाद की प्रवृत्ति होती है। केलवज्ञान से स्याद्वाद की प्रवृत्ति होती है। केवलज्ञान यद्यपि अनादि सन्तानरूप है, तो भी स्याद्वाद से जाना जाता है। सर्वतत्त्व का प्रकाशन करने में समान कहा, इसका दोनों में समान है। जैसे आगम जीवादि समस्त तत्त्व का, पर का प्रतिपादन करता है। इसी प्रकार केवलज्ञानी भी कहते हैं। इस प्रकार दोनों में समानता है। अन्तर केवल

प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रकाशन करने का ही है। वचन द्वारा कहने की अपेक्षा भी समान हैं; क्योंकि जिन विशेषों को केवली जानता है, उनमें जो वचन अगोचर हैं; वे कहने में ही नहीं आते हैं। स्याद्वाद नयसंस्कृत तत्त्वज्ञानं का व्याख्यान ऐसा है तत्त्वज्ञान प्रमाण और नय से संस्कृत है। यहाँ स्याद्वाद तो सप्तभङ्गीवचन की विधि से प्रमाण है। नैगम आदि अनेक भेद रूप नय है। इस प्रकार संक्षेप से कहा है। विस्तार से अन्य ग्रन्थों से जान लेना चाहिए।।105।।

आगे अब स्याद्वाद नय संस्कृत प्रमाण है, इसका और प्रकार दोनों में संस्कृत है, वही युक्ति और शास्त्र इन दोनों से अविरूद्ध है, सुनिश्चिता–संभवद्बाधक रूप है। इस प्रकार के अभिप्राय वाले आचार्य यह तो पहले ही कह चुके हैं कि स्याद्वाद अहेतुवाद है। अब नयरूप हेतुवाद का लक्षण कहते हैं –

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेष व्यञ्जको नयः।।१०६।।

अर्थ – जिससे साध्य पदार्थ जाना जाता है; सो नय है। वह कैसा है? स्याद्वाद रूप श्रुतप्रमाण उससे भेद रूप किया जो अर्थ का विशेष–शक्य, अभिप्रेत, असिद्ध विशेषण विशिष्ट साध्यमें आया, उसका व्यञ्जक है। साध्य के समान धर्म रूप दृष्टान्त से साधर्म्य (समान धर्मापना) से व्यञ्जक है, सो अविरोध से व्यञ्जक है। साध्य से विरूद्ध पक्ष के साधर्म्य से व्यञ्जक नहीं है। विपक्ष से तो धर्म से ही अविरोध कर हेतु के साध्य का प्रकाशपना है। ऐसा करने से ही हेतु का लक्षण अन्यथानुपपन्नपना होता है। (यदि हेतु का लक्षण अन्य प्रकार कहा जाय तो बाधा है।) इस प्रकार नय ही हेतु है। इस प्रकार नयसामान्य का भी लक्षण होता है; क्योंकि स्याद्वाद से भेदरूप किया जो अर्थ है, वह प्रधानपना से समस्त अङ्गों को व्याप्त करने वाला है। विशेष इस प्रकार है –

नित्यपना आदि को न्यारा न्यारा कहने वाला नय है। यह नय का सामान्य लक्षण जानना चाहिए। हेतु तो जो साध्य प्रतिपत्ति में आए, उसी को सिद्ध करता है। नय सामान्य सब धर्मों में व्यापक है। इस प्रकार अनेक धर्मों सहित वस्तुकी प्रतिपत्ति–प्राप्ति–ज्ञान सो तो प्रमाण है। एक धर्मकी प्रतिपत्ति, धर्मसे सापेक्ष प्रतिपत्ति नय है। प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण

दुर्नय है।।106।।

आगे जो प्रमाण का विषय अनेकान्तात्मक वस्तु कही, वह कैसी है, ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं –

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भाव सम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।१०७।।

अर्थ – तीन काल सम्बन्धी नय और उपनय के एकान्तोंका जो अविश्वग्भाव स्वरूप (अपृथक् स्वभाव) सम्बन्ध को लिए हुए समुच्चय – समूह है, द्रव्य वस्तु है और वह एक, अनेक भेदस्वरूप है। नय का स्वरूप तो पहले कहा जा चुका है। वे नय द्रव्य और पर्याय के भेद से तथा उनके उत्तर भेद से अनेक हैं। एक एक धर्म का ग्रहण करना उनका एकान्त है। उन एकान्तो के समुच्चय रूप धर्म का अपने आश्रय रूप धर्मी को छोडकर अन्य धर्म मे जाना, इस प्रकार अशक्यविवेचनपने रूप समुदाय का यहॉ कथंचित् भेदाभेद जानना चाहिए। सर्वथा भेदाभेद में विरोध है। इस प्रकार त्रिकालवर्ती नय उपनयो के विषयभूत पर्यायविशेषों का समूह द्रव्य है। वह एकानेक स्वरूप है। इस प्रकार सम्यक् रूप से कहा है।।107।।

आगे परवादी की आशङ्का विचार कर अब दूर करने को आचार्य कहते है–

मिथ्या समूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्।।१०८।।

अर्थ – यहॉ अन्यवादी तर्क करते हैं कि तुमने वस्तु के स्वरूप–नय और उपनयों के एकान्त के समूह को द्रव्य रूप कहा। नयो के एकान्त को तो तुम मिथ्या कहते आए हो। मिथ्या नयों का समूह भी मिथ्या ही होता है, उसे आचार्य कहते हैं कि मिथ्या नयो का समूह तो मिथ्या ही है। हमारे जैनियों के नयों के समूह मिथ्या नहीं है, क्योकि ऐसा कहा है कि परस्पर अपेक्षारहित नय तो मिथ्या हैं। परस्पर सापेक्ष नय वस्तुस्वरूप हैं। वे अर्थक्रिया सहित वस्तु को सिद्ध करते है। निरपेक्षपना प्रतिपक्षी धर्म का सर्वथा निराकरण स्वरूप है। प्रतिपक्षी धर्म की अपेक्षा उदासीनता से सापेक्षपना है, उपेक्षा नहीं होती है। यदि प्रतिपक्षी धर्म को मुख्य करेंगे तो प्रमाण और नय दोनों में भेद नहीं रहेगा। प्रमाण, नय ओर दुर्नय का ऐसा ही लक्षण बना है। दोनों धर्मी का ग्रहण प्रमाण है। प्रतिपक्षी धर्म की अपेक्षा सुनय तथा प्रतिपक्षी धर्म का सर्वथा त्याग सो दुर्नय है। इस प्रकार सब

उपसंहार (संक्षेप) जानना चाहिए।।108।।

आगे पूछते हैं कि जो इस प्रकार अनेकान्तात्मक अर्थ है सो वचन से किस नियम से कहा जाता है; जिससे प्रतिनियत (भिन्न भिन्न) पदार्थों में लोगों की प्रवृत्ति हो। इस प्रकार की आशंका होने पर आचार्य कहते हैं –

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथाऽन्यथा च सो ऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा।।१०६।।

अर्थ – विधि रूप तथा निषेध रूप वाक्य से पदार्थ नियम रूप किया जाता है। विधि या निषेध रूप जिस वाक्य के द्वारा वह नियमित किया जाय, उस रूप तथा उससे अन्यथा विपक्ष रूप अवश्य होता है। यदि ऐसा न माना जाय(विधि–निषेध रूप से उसका अवश्यसंभावीपना स्वीकार न किया जाय) तो उस केवल विधि या केवल निषेध वाक्य से जो विशेष्य है, वह नहीं बन सकेगा। यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि जो सत् रूप वस्तु है सो सर्व ही अनेकान्त स्वरूप है। अनेकान्त स्वरूप वस्तु ही अर्थक्रिया की करने वाली है। सर्वथा एकान्त स्वरूप तो अवस्तु है। वह अर्थक्रियारहित है। यह तो विधिरूप वाक्य है, अन्य मती भी इसी प्रकार एकानेक स्वरूप मानते हैं, परन्तु सर्वथा गौण अथवा मुख्य कर एक पक्ष को परमार्थ मानकर दूसरे पक्ष का लोप कर अभिप्राय बिगाड़ते हैं। बौद्ध एक संवेदन को चित्राकार मानते हैं। नैयायिक ईश्वर के ज्ञान को अनेकाकार मानते हैं। सांख्य संवेदन को बुद्धि में आए पदार्थ को जानने वाला मानते हैं। मीमांसक फलज्ञान को स्वसंवेदन स्वरूप और पदार्थों का जानने वाला मानता है। इस प्रकार एकानेक स्वरूप मानें और एक पक्ष को सर्वथा मुख्य अथवा गौण करें, तब अभिप्राय विगड़ा ही कहा जाता है। इस प्रकार तो अनेकान्त स्वरूप वस्तु का विधिवाक्य है। इसी प्रकार निषेध वाक्य है। वस्तु तत्त्व एकान्तस्वरूप नहीं है; क्योंकि सर्वथा एकान्त में सर्वथा अर्थक्रिया नहीं है जैसे आकाश के फूल नहीं हैं। अतः अर्थक्रिया भी नहीं है। इस प्रकार अन्यविदियों द्वारा माने हुए सर्वथा एकान्त की मान्यता का निषेध है; क्योंकि सर्वथा एकान्त तो कुछ वस्तु नहीं है। वह निषेध करने योग्य भी नहीं है और परवादियोंका मान्य भाव रूप है, उसका निषेध है। इस प्रकार विधि, प्रतिषेध वाक्य से वस्तु तत्त्व से नियम रूप किया जाता है। उसी प्रकार

तथा अन्यथा का अवश्यभाव है। यदि अन्यथा न हो तो पदार्थ विशेष नहीं ठहरता है। प्रतिषेध के विधि विशेषण नहीं है। दोनों विशेषण बिना विशेष पदार्थ नहीं है। इस कथन से विधि–प्रतिषेध दोनों को गौण सत्, असत् आदि वाक्य के विषय के विषय मे कोई प्रवृत्ति जानना चाहिए।।109।।

अन्यवादी कहते हैं कि वाक्य सर्वथा विधि रूप से ही वस्तु तत्त्व का नियम करते हैं। इस प्रकार के एकान्त विषय में आचार्य दोष दिखलाते हैं –

तदतद्वस्तु वागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषा वाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना।।११०।।

अर्थ – वस्तु तत् और अतत् दोनों रूप है; क्योंकि यह वाक् (वाणी) तत् ही है। ऐसा कहने पर वह सत्य कैसे हो सकती है, नहीं हो सकती है। इस प्रकार के असत्य वाक्यों से तत्त्वार्थ का उपदेश कैसे प्रवृत्त होता है? असत्य वाक्य को कौन मानता है? यहाँ ऐसे जानना चाहिए कि जो वस्तु है, वह प्रत्यक्षादि प्रमाणके विषयभूत सत्, असत् आदि विरूद्ध धर्मके आधार रूप है। यह अविरूद्ध है। अन्यवादी ऐकान्तिक रूप से कहते हैं कि वस्तु सत् रूप ही है अथवा असत् रूप ही है। यदि वे ऐसा कहते हैं तो कहें, किन्तु ऐसा है नहीं। वस्तु अपना स्वरूप अनेकान्तात्मक स्वयं दिखलाती है। यदि वादी विरूद्ध है, विरूद्ध है, ऐसा कहते हैं, तो कहो, निरर्थक पुकारने में कुछ साध्य नहीं है। इस प्रकार तत् अतत् वस्तु को तत् ही है, ऐसा कहती हुई वाणी मिथ्या है और मिथ्या वाक्यों से तत्त्वार्थ की देशना युक्त नहीं है, ऐसा सिद्ध किया।

वाक्य प्रतिषेध प्रधान कर ही पदार्थ को नियम रूप करता है। ऐसा एकान्त भी श्रेष्ठ नहीं है। ऐसा कहते हैं–

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थ प्रतिषेध निर ङ्कुशः।
आह च स्वार्थ सामान्यं तादृग्वाक्यं खपुष्पवत्।।१११।।

अर्थ – वचन का यह स्वभाव है कि अपने अर्थ सामान्य को तो कहता है, परन्तु अन्य वचनरूप अर्थ का प्रतिषेध अवश्य करता है, उसमें निरंकुश है।

बौद्ध – अन्य वचन के प्रतिषेध रूप वचन का अर्थ निरंकुश हो, स्वार्थ सामान्य तो कहना मात्र है, कुछ वस्तु नहीं है।

जैन – ऐसा वचन तो आकाश के फूल के समान है। वचन के सामान्य अर्थ के प्रतिपादन और अन्य वचन के अर्थ के निषेध के अतिरिक्त अन्य कुछ कहने को नहीं है। दोनों मे से एक न हो तो वचन कहा हुआ, न कहा हुआ समान है, उसका कुछ अर्थ नहीं है। निश्चय दृष्टि से सामान्य विशेष के बिना और विशेष सामान्य के बिना दिखाई नहीं देता है। सामान्य और विशेष दोनों रूप ही वस्तुस्वरूप है। इसके सिवाय अन्यापोह कुछ नहीं है। तत्त्वकी प्राप्ति बिना के वल वचन कह कर अपने तथा पर को ठगने से क्या लाभ है।।१११।।

आगे कहते हैं कि विधि एकान्त के समान निषेध एकान्त का भी निराकरण तो विस्तार से पहले कह ही आए हैं, फिर भी निषेध ही वचन का अर्थ है, ऐसा कहने वाले वादी की आशंका दूर करते हैं।

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः।।११२।।

अर्थ – सामान्य वादी यदि विशेष के विषय में शब्दार्थस्वरूप नहीं है, विशेष का ज्ञान नहीं कराती है तो ऐसी वाणी मिथ्या ही है। अभिप्राय में स्थित जो विशेष, है उसकी प्राप्ति का सच्चा लक्षण अथवा चिन्ह स्याद्वाद (स्यात् शब्द पूर्वक वाद–कथन) है। यह चिन्ह अभिप्राय में स्थित विशेष की जानकारी कराता है। बौद्ध अन्य के निषेधमात्र वाक्य का अर्थ कहते हैं सो अन्यापोह कुछ वस्तु है नहीं। वस्तु तो सामान्यविशेषात्मक है। जब सामान्य को कहा जाता है तब विशेष वक्ता के अभिप्राय में गम्यमान है। उसको भी कहने वाला सामान्य वचन ही है; क्योंकि इसके स्यात् पद लगा हुआ है। अभिप्रेत–विशेष के जानने पर यह स्यात्कार सत्यार्थ चिन्ह है। जो अभाव को कहे, किन्तु भाव को न कहे, ऐसा वचन अनुक्त के समान है।।112।।

आगे कहते हैं कि इस प्रकार स्याद्वाद निश्चय किया। अतः स्याद्वाद ही सत्यार्थ नहीं है। अन्यवाद सत्यार्थ है। इस प्रकार भगवान समन्तभद्रस्वामी अतिशय रूप कहते हैं।

विधेयमीप्सितार्थाङ्ग प्रतिषेध्याऽविरोधि यत्।
तथैवाऽऽदेय–हेयत्वमिति स्याद्वाद संस्थितिः।।११३।।

अर्थ – जो प्रतिषेध्य पदार्थ है सो अविरोधी विधेय पदार्थ है। यह अपने वांछित अभिप्रेत पदार्थ का अङ्गभूत है। उसी प्रकार आदेय हेयत्वग्रहण करने योग्य और त्याग करने योग्यपना भी प्रतिषेध्य का अविनाभावी है। इस प्रकार स्याद्वाद की सम्यक् प्रकार स्थिति है। वहाँ अस्ति इत्यादि तो अभिप्राय में लिया हुआ विधेय है। राजा और चोर आदि के भय से कुछ विधान करना विधेय नहीं कहलाता है; क्योंकि उसमें करने की योग्यता ही है, विधान नहीं हुआ। अभिप्राय में भी नहीं लिया और कहने भी नहीं लगा। इस प्रकार कुछ विधेय है ही नहीं, प्रतिषेध्य भी नहीं। अतः उपेक्षा–उदासीनता मात्र ही है। इन सिबाय अभिप्राय में लिया और विधान भी किया सो विधेय है। यह प्रतिषेध्य (नास्तित्व आदि) से अविरूद्ध है। वही उसी प्रकार वाञ्छित पदार्थ का अङ्ग है; क्योंकि विधि और प्रतिषेध के परस्पर अविनाभाव लक्षणपना है। इस प्रकार विधेय प्रतिषेध स्वरूप के भेद से स्याद्वाद प्रक्रिया जोड़नी चाहिए। अस्तित्व आदि विशेष है। वह अपने स्वरूप से विधेय है। प्रतिषेध्य स्वरूप की अपेक्षा विधेय नहीं है – इस प्रकार कथंचित् विधेय है। कथंचित् अविधेय है।

इस प्रकार प्रतिषेध्य पर लगाना। उसी प्रकार जीवादि पदार्थ पर लगाना– कथंचित् विधेय, कथंचित् प्रतिषेध्य। इस प्रकार स्याद्वाद की सम्यक् स्थिति युक्ति और शास्त्र से अविरूद्ध सिद्ध होती है। पहले भाव एकान्त इत्यादि में ही विधि, प्रतिषेध के विरोध, अविरोध का समर्थन किया है। अतः श्री समन्तभद्राचार्य भगवान् से कहते हैं कि हे भगवान्! हमने निर्बाध निश्चय किया है कि युक्ति और शास्त्र से अविरोधी वचनपने से तुम ही निर्दोष हो, अन्य नहीं हैं। उनके वचन निर्बाध नहीं है।।113।।

इस आप्तमीमांसा को जो प्रारम्भ किया था उसका निर्वहण और स्वयं के लिए उसके फल को आचार्य प्रकट करते हैं।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छता।
सम्यङ्मिथ्योपदेशार्थ विशेषप्रतिपत्तये।।११४।।

अर्थ – इस प्रकार दस परिच्छेद स्वरूप यह आप्तमीमांसा सर्वज्ञविशेष की परीक्षा है सो हित के इच्छुक भव्यजीवों के सम्यक् और मिथ्या उपदेश

के विशेष सामर्थ्य रूप असत्यार्थ की प्रतिपत्ति हेय, उपादेय रूप जानना चाहिए। श्रद्धान करने और आचरण करने के लिए हमने रची है। इस प्रकार आचार्य ने अपना अभिप्रेत प्रयोजन कहा है। अतः यह आर्य पुरूषों के विचार करने के योग्य है। हित तो मोक्ष है और उसका कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का कहना है। ज्ञान ही से मोक्ष होता है, यह मिथ्या उपदेश कहा जाता है। शास्त्र के आरम्भ में आप्त स्तवन मोक्षमार्ग के नेता, कर्मरूपी पर्वतों के भेत्ता तथा विश्व तत्त्व के ज्ञाता ऐसा किया, उसकी परीक्षा की है। इसी से इसका नाम आप्तमीमांसा है। आदि अक्षर के नाम से इसका नाम देवागम स्तोत्र है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ संक्षेपार्थ लिखा है।।114।।

जयति[1] जगति क्लेशावेशप्रपंच हिमांशुमान्,
विहतविषमैकान्तध्वान्त प्रमाणनयांशुमान्।
यतिपतिरजो यस्याधृष्यान्मताम्बुनिधेर्लवान्।
स्वमतमतयस्तीर्थ्यानानापरे समुपासते।।

चौपाई

ज्ञान अज्ञान मोक्ष अरू बन्ध। संतति की उत्पत्ति संबंध।
नय प्रमाण इन सबकी रीति स्याद्वाद भाषी मुनि नीति।।१।।

इति श्री आप्तमीमांसा नामक देवागम स्तोत्र की देशभाषामय वचनिका के आधुनिक हिन्दी अनुवाद में दसवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।।10।।

(यहाँ तक एक सौ चौदह कारिकायें हुई।)

---

1. यह पद्य वसुनन्दि सैद्धान्तिक की वृत्ति के अन्त में ग्रन्थ समाप्ति का मंगलाचरण रूप है, परन्तु पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा ने इसकी भाषावचनिका नहीं लिखी है। शायद अष्टसहस्रीकार के मतानुसार ग्रन्थकर्त्ता की कृति नहीं समझकर पंडितजी ने भाषावचनिका करने से इसे छोड़ दिया हो।

सवैया 23

घाति निवार भये अरहंत अघातिनिवारि सुसिद्ध कहाए।
पंच अचार समारि अचारिज भव्यनि तारतरे श्रुत गाए।
अंग उपंग पढै उवझाय पढ़ात घणे शिव राह लगाए।
साधु सवै गुणमूलधरै तव साधय मोक्ष नमों मन भाए।।1।।

दोहा

मंगल कारण पंच गुरू, नमों विघ्नकी हानि।
ग्रन्थ अंति मंगल अरथ, नमस्कार मम जानि।।2।।
समन्तभद्र अकलंक पुनि, विद्यानंदि सुजानि।
इनके चरन नमों सदा, साधुत्रयी गुणखानि।।3।।

सवैया 23

देश ढुंढाहर जैपुर थान महान नरेयश जगेश विराजै।
न्याय चलैं सवलोक भलैं विधि वात्सल है सुख सों डर भाजे।
जैन जनावुहते तिनमें जु अध्यातम शैलि भली सुसमाजै।
हौं तिनमैं जयचंद सुनाम कियो यह काल पढ़ो निज काजैं।।4।।

दोहा

अष्टादश सत साठि षट् विक्रम सम्वत जानि।
चैत्र कृष्णचोदस दिवस पूर्ण वचनिका मानि।।5।।

❁ इति ❁

परिशिष्ट – 2

देवागम स्तोत्र कारिकार्थ

देवागम नभोयान – चामरादि – विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्।।१।।

अन्वय – देवागम = (देवों का आगमन), **नभोयान** = (आकाश में गमन), **चामरादिविभूतयः** = (चँवर, छत्रादि विभूति चिह्न), **मायाविषु** = (मायावी पुरुषों में), **अपि** = (भी), **दृश्यन्ते** = (देखे जाते हैं), **अतः** = (इसलिये) **त्वं** (आप=हे नाथ), **नो** = (हमारे लिए) **महान** = (पूज्य) **असि** = (हो)।

कारिकार्थ :– हे भगवान! देवों का आगमन, आकाश में गमनादि और चामर आदि विभूतियाँ आपमें पायी जाती हैं, इस कारण आप हमारे स्तुति करने योग्य नहीं हो सकते हैं। क्योंकि ये विभूतियाँ तो मायावी पुरुषों में भी देखी जाती हैं।

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादि महोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः।।२।।

अन्वय – दिव्यः = **(दिव्य, मनोहर)**, सत्यः = **(सत्य, वास्तविक)**, सः एषः= **(वह, यह)**, अध्यात्मं = **(अन्तरंग)**, बहिः = **(बहिरंग)**, अपि = **(भी)**, विग्रहादिमहोदयः = **(शरीरादि रूप महोदय)**, रागादिमत्सु = **(रागादिक युक्त)**, दिवौकस्सु = **(देवों में)**, अपि = **(भी)**, अस्ति = **(है)**,

कारिकार्थ :– हे भगवान! आपमें शरीर आदि का जो अन्तरंग और बहिरंग अतिशय पाया जाता है वह यद्यपि दिव्य और सत्य है, किन्तु रागादियुक्त देवों में भी उक्त प्रकार का अतिशय पाया जाता है। अतः उक्त कारणों से भी आप स्तुत्य नहीं हो सकते हैं।

तीर्थकृत्समयानां च परस्पर विरोधतः।।
सर्वेषामाप्तता नास्ति, कश्चिदेव भवेद्गुरुः।।३।।

अन्वय – तीर्थकृत्समयानां = **(तीर्थ प्रवर्तकों के आगमों में)** च = **(और)** परस्पर विरोधतः= **(आपस में विरोध होने से)**,सर्वेषां= **(सभी के यहाँ)**, आप्तता = **(सर्वज्ञता)**, नास्ति = **(नहीं है)**, कश्चिदेव =**(कोई एक ही)**, गुरुः = **(गुरु)**, भवेत् = **(हो)**।

कारिकार्थ :– अपने–अपने तीर्थों का प्रवर्तन करने वाले कपिल, सुगत आदि तीर्थंकरों के आगमों में परस्पर विरोध पाये जाने से सब तीर्थंकरों में आप्तत्व संभव नहीं है। अतः उनमें से कोई एक ही हमारा स्तुत्य हो सकता है।

दोषाऽऽवरणयोर्हानिर्निःशेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः।।४।।

अन्वय – यथा = (जिसप्रकार), क्वचित् = (सुवर्ण आदि द्रव्य में), स्वहेतुभ्यः = (अपने कारणों से), बहिः = (बहिरंगमल), अन्तः = (अन्तरंग), मलक्षयः = (मल का नाश), तथा = (उसी प्रकार), अतिशायनात्= (अतिशायन होने से), दोषावरणयोः = (दोष और आवरणों की) हानिः (अभाव), निश्शेषा = (पूर्ण रुप से) अस्ति = (है)।

कारिकार्थ :– किसी पुरुष विशेष में दोष और आवरण की पूर्ण हानि हो जाती है क्योंकि दोष और आवरण की हानि में अतिशय देखा जाता है। जैसे खान से निकाले हुए सोने में कीट आदि बहिरंगमल और कालिमा आदि अन्तरंग मल रहता है, किन्तु अग्नि में पुटपाक आदि हेतुओं के द्वारा सुवर्ण में दोनों प्रकार के मलों का अत्यन्त नाश हो जाता है।

सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ–संस्थितिः।।५।।

अन्वय – अनुमेयत्वतः = **(अनुमेय होने से/अनुमान का विषय होने से)**, सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः = **(सूक्ष्म, अन्तरित एवं दूरवर्ती पदार्थ)**, कस्यचिद्= **(किसी के)**, प्रत्यक्षाः = **(प्रत्यक्ष)**, यथा = **(जैसे)**, अग्न्यादिः **(अग्नि आदि)**, इति = **(इस प्रकार)**, सर्वज्ञसंस्थितिः = **(सर्वज्ञ की भली प्रकार से सिद्धि होती है।)**

कारिकार्थ :– देश, काल, और स्वभाव से विप्रकृष्ट पदार्थ किसी न किसी के प्रत्यक्ष होते हैं, क्योंकि उनको हम अनुमान से जानते हैं। जो पदार्थ अनुमान से जाने जाते हैं, उन्हें कोई न कोई प्रत्यक्ष भी जानता है। जैसे पर्वत में अग्नि को दूरवर्ती पुरुष अनुमान से जानता है किन्तु पर्वत पर रहने वाला प्रत्यक्ष जानता है। इस प्रकार धर्मादि समस्त पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ की सिद्धि होती है।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्ति शास्त्राऽविरोधिवाक्।
अविरोधी यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते।।६।।

अन्वय – युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् = **(युक्ति और शास्त्र से आपके वचन विरोध रहित हैं)** सः = **(वह)** त्वं एव = **(आप ही)**, निर्दोष = **(वीतराग, सर्वज्ञ)**, असि = **(हो)**, यत् = **(जो)**, ते = **(आपका)**, इष्टं = **(इष्टतत्त्व)**, प्रसिद्धेन = **(प्रत्यक्ष से)**, न = **(नहीं)**, बाध्यते = **(बाधित–खंडित होता है)।**

कारिकार्थ :– हे भगवान! पहिले जिसे सामान्य से वीतराग तथा सर्वज्ञ सिद्ध किया गया है, वह आप (अर्हन्त) ही हैं। आपके निर्दोषपने में प्रमाण यह है कि आपके वचन युक्ति और आगम से अविरोधी हैं। आपके इष्ट तत्त्व मोक्षादि में किसी प्रमाण से बाधा नहीं आने के कारण यह निश्चित है कि आपके वचन युक्ति और आगम से अविरोधी हैं।

त्वन्मतामृत – बाह्यानां सर्वथैकान्त–वादिनाम्।
आप्ताऽभिमान दग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते।।७।।

अन्वय – त्वन्मतामृतबाह्यानां = **(आपके मतरुपी अमृत से बहिर्भूत)**, सर्वथैकान्तवादिनाम् = **(सर्वथा एकान्तवादिओं का)**, आप्ताभिमानदग्धानां= **(अपने आप्तपने के अभिमान से जल रहे हैं)**, स्वेष्टं = **(उनका अपना इष्टतत्त्व)**, दृष्टेन = **(प्रत्यक्ष से)**, बाध्यते = **(बाधित होता है)**।

कारिकार्थ :– जिन्होंने आपके मतरुपी अमृत का स्वाद नहीं लिया है जो सर्वथा एकान्तवादी हैं और जो 'हम आप्त हैं' इस प्रकार के अभिमान से जल रहे हैं, उनका जो इष्टतत्त्व है, उसमें प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधा आती है।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्त ग्रह रक्तेषु नाथ स्व पर वैरिषु।।८।।

अन्वय – नाथ = **(हे नाथ)** एकान्तग्रहरक्तेषु = **(एकान्तवादियों के यहाँ पर)** स्वपरवैरिषु = **(स्व और पर के शत्रुओं के यहाँ पर)**, कुशलाकुशलं कर्म = **(शुभ–अशुभ कर्म)**, परलोकः = **(परलोक)**, च = **(मोक्ष आदि)**, न = **(नहीं)**, क्वचित्ः = **(कुछ भी)**।

कारिकार्थ :– हे भगवान! जो वस्तु के अनन्तधर्मों में से किसी एक ही धर्म को मानते हैं ऐसे एकान्तग्रह रक्त नर अपने भी शत्रु हैं और दूसरे के भी शत्रु हैं। उनके यहाँ पुण्यकर्म एवं पापकर्म तथा परलोक आदि कुछ भी नहीं बन सकता है।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्।।९।।

अन्वय – पदार्थानां = **(पदार्थों का)**, भावैकान्ते = **(एकान्त से अस्तित्त्व है ऐंसा स्वीकार करने पर)**, अभावानां = **(चारों प्रकार के अभावों का)**, अपह्नवात् = **(लोप हो जाने से)**, सर्वात्मकम् = **(सब रूप)**, अनादि = **(अनादि)**, अनन्त = **(अंत रहित)**, अस्वरुपं **(स्वरूप रहित)**, अतावकं = **(जो आपको नहीं मानते हैं उनके यहाँ पर)**।

कारिकार्थ :— पदार्थों का सद्भाव ही है, ऐसा भावैकान्त मानने पर पदार्थों के अन्योन्याभाव आदि चार प्रकार के अभाव का निराकरण होने से सब पदार्थ सब रूप हो जायेंगे। इसी प्रकार सब पदार्थ अनादि, अनन्त और स्वरूप रहित भी हो जायेंगे।

कार्यद्रव्य मनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां ब्रजेत्।।१०।।

अन्वय —प्रागभावस्य = **(प्राग् अभाव के)**, निह्नवे = **(लोप करने पर)**, कार्यद्रव्यं = **(कार्यरूप द्रव्य)**, अनादिस्यात् = **(अनादि हो जावेगा)**, च = **(और)**, प्रध्वंसस्य = **(प्रध्वंस)**, धर्मस्य = **(धर्म के)**, प्रच्यवे= **(अभाव मानने पर)**, अनन्ततां = **(अनन्तपने को)**, ब्रजेत = **(प्राप्त होगा)**।

कारिकार्थ :— प्रागभाव के निराकरण करने पर घट आदि कार्य द्रव्य अनादि हो जायेगा और प्रध्वंसाभाव के निराकरण करने पर कार्यद्रव्य अनन्ता को प्राप्त होगा।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्याऽपोह व्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा।।११।।

अन्वय — अन्यापोह = **(इतरेतराभाव को)** व्यतिक्रमे = **(लोप करने पर)** तदेकं = **(वह इष्ट तत्त्व)**, सर्वात्मकं = **(सबरूप)**, अन्यत्र समवाये = **(अत्यन्ताभाव के नहीं मानने पर)**, सर्वथा = **(सब प्रकार से)**, न = **(नहीं)**, व्यपदिश्येत् = **(कथन)**।

कारिकार्थ :— अन्यापोह के व्यतिक्रम करने पर अन्योन्याभाव के न मानने पर किसी का जो एक इष्ट तत्त्व है वह सब रूप हो जायेगा। तथा अत्यन्ताभाव के अभाव में किसी भी इष्टतत्त्व का किसी भी प्रकार से व्यपदेश नहीं हो सकेगा।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावाऽपहन्व वादिनाम्।
बोध वाक्यं प्रमाणं न केन साधन दूषणम्।।१२।।

अन्वय — भावापह्ववादिनाम् = **(भाव पदार्थ का सर्वथा लोप करने वालों के यहाँ)** अभावैकान्तपक्षेऽपि = **(अभाव एकान्त के पक्ष को स्वीकार करने पर भी)** बोधवाक्यं = **(ज्ञान वचन)**, प्रमाणं = **(प्रमाण)**, न = **(नहीं)**, केन= **(किससे)**, साधनदूषणं = **(साधन दूषण)**।

कारिकार्थ :— भाव का लोप करने वाले अभावैकान्तवादियों के मत में भी इष्टतत्त्व की सिद्धि नहीं हो सकती है। वहाँ न बोध प्रमाण है, और न वाक्य। और प्रमाण के अभाव में स्वमत की सिद्धि तथा परमत का खण्डन

किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।१३।।

अन्वय – स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)**, उभयैकात्म्यं = **(उभय का एकान्त अर्थात् सर्वथा भावाभाव)**, न = **(नहीं बनता)**, विरोधात् = **(विरोध होने से)**, अवाच्यतैकान्तेऽपि = **(अवक्तव्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी)**, अवाच्यं = **(अवाच्य)**, इति = **(इस प्रकार)**, उक्तिः = **(कथन)**, न युज्यते = **(कहा नहीं जा सकता)**।

भावार्थ :– स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ भाव और अभाव का निरपेक्ष अस्तित्व नहीं बन सकता है। क्योंकि दोनों के सर्वथा एकात्म्य मानने में विरोध आता है। अवाच्यतैकान्त भी नहीं बन सकता है। क्योंकि अवाच्यतैकान्त में भी यह अवाच्य है ऐसे वाक्य का प्रयोग नहीं बन सकता।

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नय योगान्न सर्वथा।।१४।।

अन्वय – ते = **(हे नाथ आपका)** इष्टं = **(वस्तु तत्त्व)** कथंचित् = **(किसी अपेक्षा से)**, सत् = **(सत्)**, एव = **(ही)**, कथंचित् = **(किसी अपेक्षा से)**, तत् = **(वह वस्तु तत्त्व)**, असदेव = **(असत् ही)**, तथा = **(कथंचित्)**, उभयं = **(उभय अर्थात् सत् असत्)**, अवाच्यं च = **(और अवक्तव्य भी)**, नययोगात् = **(नय विवक्षा से)**, न सर्वथा = **(सब प्रकार से नहीं)**।

कारिकार्थ :– हे जिनेन्द्र देव! आपके अनेकान्त शासन में वस्तु कथंचित् सत् ही है, कथंचित् असत् ही है। इसी प्रकार अपेक्षा भेद से वस्तु उभयरूप भी है और अवाच्य भी हैं। नय की अपेक्षा से ये सबरूप बन जाते हैं। सर्वथा नहीं।

सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।१५।।

अन्वय – स्वरूपादि चतुष्टयात = **(स्वरूपादि चतुष्टय से)**, सर्वं = **(समस्त इष्ट वस्तु)**, सदेव = **(सत् ही)**, विपर्यासात् = **(पररूपादि चतुष्टय से)**, असदेव = **(असत् ही है।)**, कः = **(कौन)**, न इच्छेत् = **(कौन स्वीकार नहीं करेगा)**, न चेत् **(यदि नहीं मानता है तो)**, न व्यवतिष्टते = **(व्यवस्था नहीं बनेगी)**।

कारिकार्थ :– स्वरूपादि चतुष्टयकी अपेक्षासे सब पदार्थोंको सत् कौन नहीं मानेगा, और पररूपादि चतुष्टयकी अपेक्षासे सब पदार्थों को असत् कौन नहीं

मानेगा, यदि ऐसा कोई नहीं मानता है तो वस्तुकी सही व्यवस्था नहीं बनेगी।

क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहाऽवाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः।।१६।।

अन्वय – क्रमार्पितद्वया = **(क्रम से विवक्षित दोनों धर्मों की अपेक्षा से)**, द्वैतं = **(द्वैत अर्थात् उभयरूप है)**, सह = **(एक साथ)**, अशक्तितः = **(दोनों धर्मों के कहने की शक्ति न होने से)**, अवाच्यं = **(अवक्तव्य है)**, अवक्तव्योत्तरः= **(अवक्तव्य है उत्तर में जिसके ऐसे)**, शेषाः = **(शेष)**, त्रयो = **(तीन)**, भंगा = **(भंग अर्थात् धर्म)**, स्वहेतुतः = **(अपने अपने कारणों से)** जान लेना चाहिए।

कारिकार्थ :– दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा होने से वस्तु उभयरूप है और एक साथ विवक्षा होने से कह न सकने से वस्तु अवाच्य रूप है। इसी प्रकार 'स्यादस्ति अवक्तव्य' आदि तीन भंग भी अपने–अपने कारणों से बन जाते हैं।

अस्तित्त्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक धर्मिणि।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेद विवक्षया।।१७।।

अन्वय – भेद विवक्षया = **(भेद विवक्षा होने से)** यथा = **(जैसे)** साधर्म्य = **(अन्वय)**, विशेषणत्वात् = **(विशेषण होने से)**, अस्तित्वं = **(अस्तित्वं धर्म भी)**, एक धर्मिणि = **(एक धर्मी में)**, प्रतिषेध्येन = **(प्रतिषेध्य के साथ अर्थात् नास्तित्त्व के साथ)**, अविनाभावी = **(अविनाभाव सम्बन्ध को लिए है)**।

कारिकार्थ :– एक धर्मी में अस्तित्त्व धर्म अपने नास्तित्त्व धर्म के साथ अविनाभावी है, क्योंकि वह विशेषण है। जैसे – हेतु में विशेषण होने से साधर्म्य वैधर्म्य का अविनाभावी होता है।

नास्तित्वं प्रतिषेध्येना ऽविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेद विवक्षया।।१८।।

अन्वय – अभेदविवक्षया = **(अभेद की विवक्षा होने से)** यथा = **(जैसे)** वैधर्म्य = **(व्यतिरेक)**, विशेषणत्वात् = **(विशेषण होने से)**, नास्तित्वं = **(नास्तित्व)**, एक धर्मिणि = **(एक धर्मी में)**, प्रतिषेध्येन = **(अस्तित्व के साथ)**, अविनाभावी = **(अविनाभाव सम्बन्ध को लिए हुए हैं)**।

कारिकार्थ :– एक धर्मीमें नास्तित्व धर्म अपने प्रतिषेध्य अस्तित्व धर्मके साथ अविनाभाव संबंध रखता है। क्योंकि वह विशेषण है। जैसे – हेतुमें वैधर्म्य साधर्म्य का अविनाभावी होता है।

विधेय प्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया।।१६।।

अन्वय – शब्द गोचरः = **(शब्द का विषय)**, विशेष्य = **(जीवादिपदार्थ)**, विधेयप्रतिषेध्यत्मा = **(विधि एवं निषेधरूप)**, यथा = **(जैसे)**, साध्यधर्मो = **(साध्य का धर्म)**, अपेक्षया = **(अपेक्षा से)**, हेतुः = **(हेतु)**, अहेतुश्च = **(और अहेतु)**, अपि = **(भी)**।

भावार्थ :– शब्द का विषय होने से विशेष्य, विधि और निषेध रूप होता है। जैसे – साध्य का धर्म अपेक्षा भेद से हेतु और अहेतु रूप होता है।

शेष भंगाश्च नेतव्या यथोक्त नय योगतः।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र!तव शासने।।२०।।

अन्वय – **यथोक्तनययोगतः** = **(यथोक्त नय की विवक्षा से)** शेष भंगाश्च = **(शेष भंग भी)** नेतव्या = **(जान लेना चाहिए)**, मुनीन्द्र = **(हे नाथ)**, तव शासने = **(आपके अनेकान्त रूप शासन में)**, कश्चिद् = **(किसी भी प्रकार का)**, विरोधः = **(विरोध)**, नास्ति = **(नहीं है)**।

कारिकार्थ :– यथोक्त नय के अनुसार शेष भंगों को भी लगा लेना चाहिए। हे भगवन्! आपके शासन में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है।

एवं विधि निषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः।।२१।।

अन्वय – एवं = **(इस प्रकार)**, विधिनिषेधाभ्यां = **(विधि और निषेध के द्वारा)**, अनवस्थित = **(कथंचित् सत् कथंचित् असत्)**, अर्थकृत् = **(अर्थक्रियाकारी है)**, चेत् = **(यदि)**, नेति = **(नहीं माना जाये तो)**, यथा= **(जैसे)**, कार्य =**(कार्य)**, बहिरन्तरूपाधिभिः = **(बहिरंग और अंतरंग कारणों के द्वारा)** न = **(नहीं होगा)**।

कारिकार्थ :– इस प्रकार विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु अवस्थित नहीं है, वह अर्थक्रियाकारी भी नहीं होती है। यदि ऐसा नहीं माना जाए तो बाह्य और अंतरंग कारणों से कार्य का निष्पन्न होना जो माना गया है, वह नहीं बनेगा।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्त धर्मिणः।
अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता।।२२।।

अन्वय – अनन्तधर्मणः = **(अनंत धर्म से युक्त)**, धर्मिणः = **(धर्मी के)**, ध र्मे धर्मे = **(प्रत्येक धर्म में)**, अन्य एव = **(भिन्न ही)**, अर्थः = **(प्रयोजन है)**, अन्यतम = **(किसी एक)**, अन्तस्य = **(धर्म के)**, अंगित्वे = **(प्रधान होने पर)**, शेषान्तानां = **(शेष धर्म)**, तदङ्गिता= **(गौण हो जाते हैं।)**

कारिकार्थ :– अनन्त धर्म वाले धर्मी के प्रत्येक धर्म का अर्थ भिन्न–भिन्न होता है। और एक धर्म के प्रधान होने पर शेष धर्मों की प्रतीति गौण रूप से होती है।

एकाऽनेक विकल्पादावुत्तरत्राऽपि योजयेत्।
प्रक्रियां भङ्गिनीतेना नयैर्नय विशारदः।।२३।।

अन्वय – नय विशारदः = **(नयों की योजना लगाने में कुशल)** उत्तरत्र = **(उत्तरवर्ती)** एकानेकविकल्पादौ = **(एक अनेक आदि धर्मों में)**, अपि = **(भी)**, एनां = **(इस)**, भंगिनीम् = **(सप्तभंगी को)**, प्रक्रियां = **(प्रक्रिया को)**, योजयेत् = **(युक्त कर लें अर्थात् लगा लेना चाहिए)**।

कारिकार्थ :– नय विशारदों को एक अनेक आदि धर्मों में भी सप्तभंग वाली उक्त प्रक्रिया की नय के अनुसार योजना कर लेना चाहिए।

इति प्रथम परिच्छेद

अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते।।२४।।

अन्वय–अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि = **(अद्वैत एकान्त के पक्ष में भी)**, कारकाणां = **(कारकों का)**, क्रियायाश्च = **(और क्रियाओं का)**, दृष्टो = **(प्रमाण सिद्ध)**, भेदो = **(भेद)**, विरुध्यते = **(विरोधरूप दिखाई देता है)**, एकं = **(जो एक रूप होता है)**, स्वस्मात् = **(अपने से)**, न जायते = **(उत्पन्न नहीं होता है)**।

भावार्थ :– अद्वैतैकान्त पक्ष में भी कारकों और क्रियाओं में जो प्रत्यक्ष, सिद्ध भेद हैं, उसमें विरोध आता है, क्योंकि जो प्रत्यक्ष स्वयं एक है वह अपने से ही उत्पन्न नहीं हो सकता।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोक द्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्या द्वयं न स्याद्बन्धमोक्ष द्वयं तथा।।२५।।

अन्वय – **कर्मद्वैतं** = **(दो कर्म)** फलद्वैतं = **(दो फल)** लोकद्वैतं = **(दो लोक)**, च = **(और)**, नो भवेत् = **(नहीं बनते हैं)**, तथा = **(उसी प्रकार)**, विद्याविद्याद्वयं = **(विद्या और अविद्या ये दोनों)**, बंधमोक्षद्वयं = **(बंध और मोक्ष)**, न स्यात् = **(नहीं बनेंगे)**।

कारिकार्थ :– अद्वैतैकान्त पक्ष में शुभ और अशुभ कर्म, पुण्य और पाप इहलोक, परलोक, ज्ञान, अज्ञान, बन्ध मोक्ष इनमें से एक का भी द्वैत सिद्ध नहीं होगा।

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्द्वैतं स्याद्धेतु साध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम्।।२६।।

अन्वय – चेत् = **(यदि)**, हेतोः = **(हेतु से)**, अद्वैतसिद्धिः = **(अद्वैत की अर्थात् एकत्व की सिद्धि मानी जाये तो)**, हेतुसाध्ययोः = **(हेतु और साध्य का)**, द्वैतं स्यात् = **(द्वैत सिद्ध होता है।)**, चेत् = **(यदि)**, हेतुना बिना = **(हेतु के बिना)**, सिद्धिः =**(सिद्धि मानी जाये तो)**, वाङ्मात्रतः = **(वचन मात्र से अर्थात् कथन मात्र से)** द्वैतं = **(द्वैत)**, किम् न भवेत = **(क्यों नहीं होगी अर्थात् द्वैत की भी सिद्धि हो जावेगी)**।

कारिकार्थ :– यदि हेतुसे अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो हेतु और साध्य का द्वैत सिद्ध होता है। हेतु के बिना अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो वचन मात्र से द्वैत की सिद्धि ही क्यों न मान ली जाये।

अद्वैतं न बिना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित्।।२७।।

अन्वय – हेतुना बिना = **(हेतु के बिना)** अहेतुः = **(अहेतु)** इव = **(तरह)**, द्वैतात् बिना = **(द्वैत के बिना)**, अद्वैतं न = **(अद्वैत नहीं बनता है।)**, प्रतिषेध्यात् ऋते = **(प्रतिषेध्य के बिना)**, क्वचित् = **(कहीं पर भी)**, संज्ञिनः = **(संज्ञी–पदार्थ का)**, प्रतिषेधः = **(निषेध)**, न स्यात् = **(नहीं होगा)**।

कारिकार्थ :– यदि हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो हेतु और साध्य का द्वैत सिद्ध होता है। हेतु के बिना यदि अद्वैत की सिद्धि मानी जाये तो वचन मात्र से द्वैत की सिद्धि ही क्यों न मान ली जाये।

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः।।२८।।

अन्वय – हेतुना बिना = **(हेतु के बिना)** अहेतुः = **(अहेतु)** इव = **(तरह)**, द्वैतात् बिना = **(द्वैत के बिना)**, अद्वैतं न = **(अद्वैत नहीं बनता है।)**, प्रतिषेध्यात् ऋते = **(प्रतिषेध्य के बिना)**, क्वचित् = **(कहीं पर भी)**, संज्ञिनः = **(संज्ञी–पदार्थ का)**, प्रतिषेधः = **(निषेध)**, न स्यात् = **(नहीं होगा)**।

कारिकार्थ :– पृथक्त्वैकान्तपक्ष में द्रव्य, गुण आदि यदि पृथकत्व गुण से अपृथक् हैं तो स्वमत से विरोध होता है, और यदि द्रव्यादि पृथकत्व गुण से पृथक् है तो वह पृथकत्व गुण ही नहीं हो सकता है, क्योंकि पृथकत्व गुण अनेक पदार्थों में रहता है।

संतानः समुदायश्च साधर्म्यञ्च निरंकुशः।
प्रेत्यभावश्च तत् सर्वं न स्यादेकत्व निह्नवे।।२९।।

अन्वय– एकत्वनिह्नवे = **(एकत्व का लोप करने पर)**, निरङ्कुशः = **(सकल बाधाओं से रहित)**, संतानः = **(संतान)**, समुदायश्च = **(और समुदाय)**, साध्यर्म्य = **(साधर्म्य)**, च = **(और)**, प्रेत्यभावश्च = **(परलोकादि)**, तत्सर्वं = **(ये सब)**, न स्यात् = **(नहीं हो सकते)**।

भावार्थ :– यदि एकत्व का सर्वथा लोप किया जाए तो जो संतान समुदाय और साधर्म्य तथा प्रेत्यभाव आदि निर्बाधरूपसे माने गए हैं वे सब नही बनेंगे।

सदात्मना च भिन्नं चेञ्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाऽप्यसत्।
ज्ञानाऽभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम्।।३०।।

अन्वय – सदात्मना = **(सत्स्वरूप की अपेक्षा से)** च = **(और)** ज्ञानं = **(ज्ञान को)**, ज्ञेयात् = **(ज्ञेय से)**, भिन्न = **(भिन्न)**, चेत् = **(यदि)**, द्विधा = **(ज्ञान ज्ञेय दोनों)**, अपि = **(भी)**, असत् = **(अवस्तु हो जायेंगे)**, ते = **(हे नाथ)**, द्विषाम् = **(द्वेष रखने वालों के यहाँ)**, ज्ञानाभावे = **(ज्ञान के अभाव में)**, बहिरन्तश्च = **(बहिरंग और अंतरंग)**, ज्ञेयं = **(ज्ञेय)**, कथं = **(कैसे बनेगा)**।

कारिकार्थ :– ज्ञान को यदि सत् स्वरूप से भी ज्ञेय से पृथक् माना जाए तो ज्ञान और ज्ञेय दोनों का अभाव हो जाता है। ज्ञान के अभाव में बाह्य

तथा अंतरंग किसी भी ज्ञेय का अस्तित्व आपसे द्वेष रखने वालों के यहाँ कैसे बन सकता है?

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाऽभिलप्यते।
सामान्याऽभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः।।३१।।

अन्वय – अन्येषां = **(दूसरों के यहाँ अर्थात् बौद्धों के यहाँ)**, गिरः = **(वचन, शब्द)**, सामान्यार्थाः = **(सामान्य को ही विषय करते हैं)**, विशेषः = **(विशेष)**, न = **(नहीं)**, अभिलप्यते = **(कहा जाता है)**, तेषां = **(उनके यहाँ से)**, सामान्याभावतः = **(सामान्य का अभाव होने से)**, सकलाः = **(सभी)**, गिरः = **(वचन)**, मृषा एव = **(असत्य ही होंगे)**।

कारिकार्थ :– दूसरों के यहाँ वचन सामान्य अर्थ को कहने वाले कहे गये हैं, क्योंकि उनके द्वारा विशेष का कथन नहीं किया जाता। सामान्य का अभाव होने से उनके यहाँ अपूर्ण वचन मिथ्या ही ठहरते हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।३२।।

अन्वय – स्याद्वादन्याय विद्विषां = **(स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)** विरोधात् = **(विरोध होने से)**, उभयैकात्म्यं = **(उभय का एकान्त अर्थात् पृथक्त्व एवं अपृथक्त्व का एकान्त)**, न = **(नहीं बनता)**, अवाच्यतैकान्ते = **(अवाच्यता के एकान्त में भी)**, अवाच्यमिति= **(अवाच्य इस प्रकार)**, उक्तिः = **(कथन)**, अपि = **(भी)**, न युज्यते = **(घटित नहीं होता)**।

कारिकार्थ :– स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ उभय का एकान्त भी नहीं बनता क्योंकि विरोध आता है। अवाच्यतैकान्त को स्वीकार करने पर भी 'अवाच्य' यह कथन नहीं बन सकता।

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वय हेतुतः।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा।।३३।।

अन्वय – हि द्वयहेतुतः = **(कारण कि दो हेतुओं से)** अनपेक्षे = **(परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न रखने पर)**, पृथक्त्वैक्ये = **(पृथक्त्व एवं ऐक्य अर्थात् अपृथक्त्व)**, अवस्तु = **(अवस्तु रूप)**, ततः = **(इसलिये)**, द्वयहेतुतः = **(परस्पर सापेक्ष दो हेतुओं से)**, तदेवैक्यं पृथक्त्वं = **(वे ही दोनों**

पृथकत्व और एकत्वरूप हैं), यथा = **(जैसे),** स्वभेदैः = **(अपने भेदों की अपेक्षा से),** साधनं = **(साधन वस्तुरूप होता है)।**

कारिकार्थ :– परस्पर निरपेक्ष पृथकत्व और एकत्व दोनों हेतु द्वय से अवस्तु हैं। वही वस्तु एक भी है और पृथक् भी है, जिस प्रकार अपने भेदों के द्वारा साधन एक और अनेक रूप होता है।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादि भेदतः।
भेदाऽभेद विवक्षायामसाधारण हेतुवत्।।३४।।

अन्वय – भेदाभेदविवक्षायां = **(भेद और अभेद की विवक्षा में)** असाधारण हेतुवत् = **(असाधारण--असामान्य हेतु की तरह),** सत्सामान्यात = **(सत्ता सामान्य की अपेक्षा से)** सर्वैक्यं = **(सभी पदार्थों में एकता है),** द्रव्यादिभेदतः = **(द्रव्यादि पदार्थों के भेदों की अपेक्षा से),** पृथक् = **(भिन्नता है)।**

भावार्थ :– सत्ता सामान्य की अपेक्षा से सब पदार्थ एक रूप हैं, और द्रव्य आदि के भेद से अनेक रूप हैं। जैसे असाधारण हेतु भेद की विवक्षा से अनेक रूप और अभेद की विवक्षा से एक रूप होता है।

विवक्षा चाऽविवक्षा च विशेष्येऽनन्त धर्मिणि।
सतों विशेषणस्याऽत्र नाऽसतस्तैस्तदर्थिभिः।।३५।।

अन्वय – **अत्र** = **(इस)** अनंतधर्मिणि = **(अनंत धर्मात्क जीवादि पदार्थ रूप)** विशेष्ये = **(विशेष में),** सतः विशेषणस्य = **(सत्स्वरूप विशेषण की ही),** विवक्षा = **(विवक्षा),** अविवक्षा = **(अविवक्षा),** च = **(और),** तदर्थिभिः = **(उनके चाहने वालों के द्वारा),** तैः = **(उन प्रतिपत्ताओं के द्वारा),** असतः = **(असत् की),** न = **(नहीं)।**

कारिकार्थ :– विवक्षा और अविवक्षा करने वाले व्यक्ति अनंत धर्म वाली वस्तु में विद्यमान विशेषण की ही विवक्षा और अविवक्षा करते हैं, अविद्यमान की नहीं।

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाऽभेदौ न संवृती।
तावेकत्राऽविरुद्धौ ते गुण मुख्य विवक्षया।।३६।।

अन्वय – प्रमाणगोचरौ = **(प्रमाण के विषय होने के कारण),** भेदाभेदौ = **(भेद और अभेद),** सन्तौ = **(वास्तविक हैं),** संवृत्ति न = **(काल्पनिक नहीं),** ते = **(आपके अनेकान्त शासन में),** गुण मुख्य विवक्षया = **(गौण और**

मुख्य की विवक्षा से), एकत्र = (एक पदार्थ में), अविरूद्धौ = (विरूद्ध नहीं पड़ते हैं।)

कारिकार्थ :– हे भगवन्! आपके मत में भेद और अभेद प्रमाण के विषय होने से वास्तविक हैं, काल्पनिक नहीं। वे दोनों एक वस्तु में गौण और मुख्य की विवक्षा को लिये हुए बिना विरोध के रह जाते हैं।

इति द्वितीय परिच्छेद

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाऽभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलं।।३७।।

अन्वय – नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि= (नित्य एकान्त पक्ष में भी) विक्रिया = (परिणमन रूप क्रिया), न उपपद्यते = (उत्पन्न नहीं होती है), प्रागेव = (पहले से ही), कारकाभावः = (कारकों का अभाव है।), क्वप्रमाणं = (प्रमाण कैसे), क्वतत्फलं = (प्रमाण का फल भी कैसे बनेगा अर्थात् नहीं बनेगा),

कारिकार्थ :– यदि नित्यत्व एकान्त का पक्ष अंगीकार किया जाये तो पदार्थों में विक्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती। जब पहले ही कारकों का अभाव हो जाता है, तब प्रमाण और प्रमाण का फल ये दोनों कहाँ बन सकते हैं।

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियाऽर्थवत्।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः।।३८।।

अन्वय – इन्द्रियार्थवत् = (इन्द्रियों के द्वारा अर्थ की) प्रमाणकारकैः = (प्रमाण और कारकों के द्वारा), व्यक्तं = (व्यक्त पदार्थों की), व्यक्तं = (अभिव्यक्ति), चेत् = (यदि), ते च नित्ये = (प्रमाण और कारकों को नित्य मानने पर), साधोः = (हे नाथ), ते शासनात् = (आपके शासन से), बहिः = (बहिर्भूत), किं विकार्यं = (विकार्य क्या बन सकता है अर्थात् नहीं)।

कारिकार्थ :– यदि महदादि व्यक्त पदार्थ प्रमाण और कारकों के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं, जैसे कि इन्द्रियों के द्वारा अर्थ अभिव्यक्त होता है, तो प्रमाण और कारक दोनों को नित्य होने से अनेकान्त शासन से बाहर किसी

भी प्रकार की विक्रिया पदार्थों में नहीं बन सकती।

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति।
परिणाम प्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्त बाधिनी।।३९।।

अन्वय – यदि = **(यदि)** कार्यं = **(कार्य को)**, सर्वथा सत् = **(एकान्त से सत्स्वरूप माना जाय तो)**, पुवंत = **(पुरूष तत्त्व की तरह)** उत्पत्तुं = **(उत्पत्ति के योग्य)**, न अर्हति = **(नहीं ठहरता है)**, परिणामप्रक्लृप्तिश्च = **(अवस्थान्तर की परिकल्पना)** नित्यत्वैकान्तबाधिनीं = **(नित्यत्वैकान्त को खण्डित करने वाली है)**।

भावार्थ :– यदि कार्य सर्वथा सत् है तो पुरूष के समान उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है और उत्पत्ति न मानकर कार्य में परिणाम की कल्पना करना नित्यत्व एकान्त की बाधक है।

पुण्यपाप क्रिया न स्यात्प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्ध मोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नाऽसि नायकः।।४०।।

अन्वय :– पुण्यपाप क्रिया = **(पुण्य और पाप की क्रिया)**, न स्यात् = **(नहीं होगी)**, प्रेत्यभाव = **(परलोक)**, फलं = **(सुख दुःखादि फल)**, कुतः = **(कैसे होगें)**, बंधमोक्षौ= **(बंध और मोक्ष)**, तेषां न = **(उनके यहाँ नहीं बनते हैं)**, येषां = **(जिनके)**, त्वं = **(आप)**, नायकः = **(नायक)**, न असि = **(नहीं हो)**

भावार्थ :– हे भगवन्! जिनके आप नायक नहीं हैं उन एकांतवादियों के मत में पुण्य पाप की क्रिया, परलोक गमन, सुख दुःख आदि फल, बंध और मोक्ष ये सब नहीं बन सकते हैं।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः।
प्रत्यभिज्ञानाद्य भावान्न कार्यारम्भः कुतः फलं।।४१।।

अन्वय – क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि = **(क्षणिक एकान्त पक्ष में भी)**, प्रत्यभिज्ञानाद्यभावात् = **(प्रत्यभिज्ञान आदि का अभाव होने से)** न कार्यारम्भः = **(कार्य का आरम्भ नहीं हो सकता)**, फलं कुतः = **(पुण्य पाप रूप फल भी कैसे बनेगा)**, प्रेत्यभावादि असंभवः = **(परलोकादि भी नहीं बनेंगे)**।

कारिकार्थ :– क्षणिक एकान्त के पक्ष को अंगीकार करने पर प्रेत्यभाव आदि नहीं बन सकते। प्रत्यभिज्ञान आदि ज्ञानों का अभाव होने से कार्य का आरम्भ नहीं हो सकेगा। और कार्य के आरम्भ न होने पर उसका फल भी कैसे बनेगा?

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि ख पुष्पवत्।
मोपादान नियामोऽभून्माऽऽश्वासः कार्यजन्मनि।।४२।।

अन्वय – यदि = **(यदि)**, कार्यं = **(कार्य को)**, सर्वथा = **(एकान्त से)**, असत् = **(असत् माना जाय तो)**, तत् = **(वह कार्य)**, खपुष्पवत्= **(आकाश के पुष्प की तरह)**, माजनि = **(उत्पन्न नहीं हो सकता)**, उपादाननियामो = **(उपादान कारण का नियम भी)**, मामूत = **(नहीं बनेगा)**, कार्य जन्मनि = **(कार्य की उत्पत्ति में)**, आश्वासः = **(विश्वास)**,माभूत् = **(नहीं होगा)**।

कारिकार्थ :– यदि कार्य सर्वथा असत् है तो आकाश पुष्प की तरह उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। तथा कार्य की उत्पत्ति में उपादान कारण का नियम नहीं रहता है। और कार्य की उत्पत्ति का कोई विश्वास भी नहीं रहता है।

न हेतुफल भावादिरन्यभावादनन्वयात्।
सन्तानान्तरवन्नैकः संतानस्तद्वतः पृथक्।।४३।।

अन्वय – क्षणिकैकान्तपक्षे = **(क्षणिक एकान्त पक्ष में)** सन्तानान्तरवत् = **(अन्य संतान की तरह)**, हेतुफलभावादिः न = **(हेतुभाव एवं फलभाव नहीं बनते)**, अनन्वयात् = **(अन्वय न होने से)**, अन्यभावात् = **(भिन्नता है)**, तद्वतः = **(संतानवान् से)**, पृथक् = **(भिन्न)**, एकः = **(एक)**, संतानः न = **(संतान नहीं है)**।

कारिकार्थ :– क्षणिक एकान्तपक्ष में अन्वय के अभाव में कार्य–कारण भाव आदि नही बन सकते हैं, क्योंकि कारण से कार्य संतानान्तर के समान सर्वथा पृथक् है। संतानियों से पृथक् कोई एक संतान भी नहीं है।

अन्येष्वनन्य शब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृतिर्न स्याद् विना मुख्यान्न संवृतिः।।४४।।

अन्वय – अन्येषु = **(अन्यों में)** अयं = **(यह)**, अनन्यशब्दः = **(अनन्य इस प्रकार जो शाब्दिक व्यवहार होता है वह)**, संवृत्तिः = **(कल्पना से है)**, कथं = **(कैसे)**, सा = **(संवृत्तिः)**, मृषा न = **(असत्य नहीं होगी)**, मुख्यार्थः = **(मुख्य अर्थ)**, संवृत्तिः न स्याद् = **(काल्पनिक नहीं होता)**, मुख्यात् बिना न संवृत्तिः = **(मुख्य के बिना कल्पना नहीं होती)**।

कारिकार्थ :– पृथक् पृथक् क्षणों में अनन्य शब्द का जो व्यवहार है वह संवृत्ति से है और संवृत्ति होने से वह मिथ्या क्यों नहीं है? मुख्य अर्थ संवृत्ति स्वरूप नहीं होता है और मुख्य अर्थ के बिना संवृत्ति नहीं हो सकती।

चतुष्कोटे र्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः।
तत्त्वाऽन्यत्वमवाच्यं चेत्तयो सन्तानतद्वतोः।।४५।।

अन्वय – सर्वान्तेषु = **(समस्त धर्मों में)** चतुष्कोटेर्विकल्पस्य = **(चतुष्कोटिरूप विकल्प के)**, उक्त्ययोगतः = **(कहने का अयोग होने से)**, तयोः संतानतद्वतोः== **(उन संतान और संतानी के)**, तत्त्वान्यत्वं अवाच्यं = **(एकत्व और अनेकत्व धर्म अवाच्य हैं)**, चेत् = **(यदि ऐसा कहते हो तो)**।

भावार्थ :– यदि यह कहा जाये कि चूंकि सब धर्मों मे चतुष्कोटि का विकल्प बनता नहीं है अतः संतान और संतानियों में एकत्व और अन्यत्व ये दोनों धर्म अवाच्य ठहरते हैं।

अवक्तव्य चतुष्कोटि विकल्पोऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्य विशेषणम्।।४६।।

अन्वय :– अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्पः = **(चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है यह)**, अपि = **(भी)**, न कथ्यताम् = **(नहीं कहा जा सकता)** असर्वान्तं = **(समस्त धर्मों से रहित)**, अविशेष्यविशेषणं = **(विशेषण विशेष्यभाव से रहित होता हुआ)**, अवस्तु स्यात् = **(अवस्तुरूप ठहरता है)**।

भावार्थ :– बौद्धों को वस्तु में सत् आदि चार प्रकार के विकल्पों को अवक्तव्य नहीं कहना चाहिये। जो सर्वधर्मो से रहित है, वह अवस्तु है, और उनसे विशेष्य, विशेषण भाव भी नहीं बन सकता है।

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः संज्ञिनः सतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः।।४७।।

अन्वय – सतः संज्ञिनः = **(सत्ता से युक्त संज्ञी पदार्थ का ही)**,द्रव्याद्यन्तरभावेन = **(अन्य द्रव्य आदि की अपेक्षा से)** निषेधः = **(अभाव किया जाता है)**, असद्भेदः भावस्तु = **(असत्‌रूप वस्तु तो)**, विधिनिषेधयोः = **(विधि और निषेध का)**। स्थानं न = **(स्थान नहीं होती)**।

कारिकार्थ :– जो संज्ञी सत् (विधि) स्वरूप होता है, उसी का परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से निषेध होता है। जो सर्वथा असत् है वह विधि और निषेध का स्थान नहीं हो सकता है।

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सर्वान्तैः परिवर्जितम्।
वस्त्वेवाऽवस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्।।४८।।

अन्वय – सर्वान्तैः = **(समस्त धर्मों से)**, परिवर्जितं = **(रहित)**, अवस्तु = **(अवस्तु)**, अनभिलाप्यं = **(कथन रहित)**, स्यात् = **(हो)**, प्रक्रियायाः = **(प्रक्रिया के)**, विपर्ययात् = **(विपर्यय से)**, वस्तु = **(वस्तु)**, एव = **(ही)**, अवस्तुतां = **(अवस्तुपने को)**, याति = **(प्राप्ति हो जाती है)**।

कारिकार्थ :– जो सर्वधर्मों से रहित है, वह अवस्तु है और जो अवस्तु है वह अनभिलाप्य है। प्रक्रिया के विपरीत हो जाने से वस्तु ही अवस्तुपने को प्राप्त हो जाती है।

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थ विपर्ययात्।।४६।।

अन्वय – चेत् = **(यदि बौद्धों के अनुसार)** सर्वान्ताः = **(समस्त धर्म)**, अवक्तव्याः = **(अवक्तव्य हैं ऐसा मानने पर)**, तेषां = **(उनके यहाँ)**, पुनः वचन किम् = **(और उनके यहाँ वचन कैसे बनेंगे)**, चेत् = **(यदि)**, संवृत्तिः = **(संवृति से अंगीकार करो तो)**, परमार्थ विपर्ययात् = **(परमार्थ की विपरीत होने से)**, एषा = **(यह संवृत्ति)**, मृषा एव = **(असत्य ही हैं)**।

कारिकार्थ :– यदि सभी धर्म अवक्तव्य हैं तो उनका कथन क्यो किया जाता है। यदि उनका कथन संवृत्ति से किया जाता है, तो परमार्थ से विपरीत होने के कारण वह मिथ्या है।

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः।
आद्यन्तोक्ति द्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटं।।५०।।

अन्वय – किं अशक्यत्वात् = **(क्या अशक्य होने से पदार्थ अवक्तव्य है)** किम् अभावात् = **(क्या उसका अभाव है)**, किम् अबोधतः = **(क्या ज्ञान न होने के कारण)**, आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् = **(आदि और अन्त के दो पक्ष तो बनते नहीं)**, व्याजेन कि = **(छल करने से क्या)**, स्फुटं = **(स्पष्ट रूप से)**, उच्यताम् = **(कहो)**।

कारिकार्थ :– तत्त्व अवाच्य क्यों है? क्या अशक्य होने से अवाच्य है, या अभाव होने से अवाच्य है, या ज्ञान न होने से अवाच्य है। पहला और अंत का विकल्प तो ठीक नहीं है। यदि अभाव होने से तत्त्व अवाच्य है तो इस प्रकार के बहाने से क्या लाभ है। स्पष्ट कहिये कि वस्तु तत्त्व का सर्वथा अभाव है।

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते।।५१।।

अन्वयः— अभिसंधिमत् चित्तं = **(जिस चित्त ने दूसरों को मारने को विचार किया वह तो क्षणिक होने से)**, न हिनस्ति = **(मारता नहीं है)**, अनभिसंधि मत्हिनस्ति = **(जिसने मारने का विचार नहीं किया वह मारता है)**, तद्द्वयोपेतं = **(इन दोनों से भिन्न तीसरा ही चित्त)**, बध्यते = **(बंध को प्राप्त होता है)**, बद्धं = **(जो बंधा हुआ है वह)**, न मुच्यते = **(छूटता नहीं है)**।

भावार्थ :— हिंसा करने का जिसका अभिप्राय नहीं है, वह हिंसा करता है और जिसका हिंसा करने का अभिप्राय है, वह हिंसा नहीं करता है। जिसने हिंसा का न अभिप्राय किया और न हिंसा की वह चित्त बंध को प्राप्त होता है। और जिसका चित्त बंध हुआ उसकी मुक्ति नहीं होती, किन्तु दूसरे की ही मुक्ति होती है।

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्त सन्तति नाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्ग हेतुकः।।५२।।

अन्वय :— नाशस्य = **(नाश के)**, अहेतुकत्वात् = **(अहेतुक होने से)**, हिंसाहेतुः = **(हिंसा का कारण)**, हिंसकः न = **(हिंसक नहीं होगा)**, चित्तसंततिनाशः = **(चित्त संतति के निरोधरूप)**, मोक्षस्य = **(मोक्ष है वह भी)**, अष्टांगहेतुकः न = **(अष्टांग हेतुक नहीं मानना चाहिए)**।

भावार्थ :— जब विनाश का कोई कारण नहीं होता तब हिंसक, हिंसा का हेतु नहीं ठहरता। और चित्त संतति के नाशरूप मोक्ष भी अष्टांग हेतुक जो स्वीकार किया गया है, वह बनता नहीं।

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतु समागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत्।।५३।।

अन्वय — यदि = **(यदि)**, विरूपकार्यारम्भाय = **(विसदृश कार्य के प्रारम्भ के लिये)** हेतुसमागमः = **(हेतु का समागम होता है तो)**, असौ= **(यह हेतु व्यापार)**, आश्रयिभ्यां = **(अपने आश्रयियों से)**, अनन्यः = **(अभिन्न ही होगा)**, अविशेषात् = **(कोई भेद न होने से)**, अयुक्तवत् = **(अपृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह)**।

कारिकार्थ :— यदि सदृश कार्य की उत्पत्ति के लिये हेतु का समागम होता है, तो पृथक् पदार्थों की तरह नाश और उत्पाद को अभिन्न होने के कारण

नाश का हेतु भी नाश और उत्पाद से अभिन्न होगा।

स्कन्धसन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।

स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत्।।५४।।

अन्वय – संवृतित्वात् = **(काल्पनिक होने से)** स्कंधसंततयः= **(स्कन्ध संततियाँ)**, असंस्कृताः एव = **(असंस्कृत ही हैं)**, खरविषाणवत् = **(खरविषाण की तरह)**, तेषां = **(उनमें अर्थात् स्कन्ध संततियों में)**, स्थिति उत्पत्ति व्ययाः = **(स्थिति उत्पत्ति और व्यय)**, न स्युः = **(नहीं हो सकते)**।

कारिकार्थ :– स्कन्धों की संततियाँ भी बौद्धों के यहाँ संवृतिरूप होने से अपरमार्थ भूत हैं। उनमें खरविषाण के समान स्थिति, उत्पत्ति और व्यय नहीं हो सकते हैं।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।५५।।

अन्वय – स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)** विरोधात् = **(विरोध होने से)**, उभयैकात्म्यं न = **(नित्यत्वैकान्त एवं अनित्यत्वैकान्त बनते नहीं हैं)**, अवाच्यतैकान्ते अपि = **(अवाच्यता के एकान्त में भी)**, अवाच्यं = **(अवाच्य)**, इति उक्तिः = **(यह वचन)**, न युज्यते = **(युक्त नहीं है)**।

कारिकार्थ :– स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकात्म्य नहीं बन सकता है। और अवाच्यतैकान्त मानने में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता है।

नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।

क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः।।५६।।

अन्वय – ते = **(हे नाथ आपके शासन में)** प्रत्यभिज्ञानात् = **(प्रत्यभिज्ञान के द्वारा ज्ञात वस्तु)**, तत् नित्यं = **(वह नित्य है)**, तत् = **(वह प्रत्यभिज्ञान)**, अकस्मात् न = **(निर्विषयक नहीं है)**, अविच्छिदा = **(अविच्छेद रूप से अनुभव होता है)**, बुद्ध्यसंचरदोषतः = **(वस्तु को कथंचित् क्षणिक न माना जायेगा तो बुद्धि का वहाँ संचरण नहीं हो सकने से)**, कालभेदात् = **(काल का भेद होने से)**.क्षणिकम् = **(वस्तु क्षणिक है)**।

भावार्थ :– प्रत्यभिज्ञान का विषय होने के कारण तत्त्व कथंचित् नित्य है। प्रत्यभिज्ञान का सद्भाव बिना किसी कारण के नहीं होता है, क्योंकि अविच्छेद रूप से वह अनुभव में आता है। हे भगवन्! आपके अनेकान्त मत में काल भेद होने से तत्त्व कथंचित् क्षणिक भी है। सर्वथा नित्य और सर्वथा

क्षणिक तत्त्व में बुद्धि का संचार नहीं हो सकता है।

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्।।५७।।

अन्वयः– ते = **(आपके अनेकान्त शासन में)**, वस्तु = **(पदार्थ)**, सामान्यात्मना = **(सामान्य रूप से)**, न उदेति = **(उत्पन्न नहीं होता है)**, न व्येति = **(नष्ट भी नहीं होता है)**, व्यक्तं अन्वयात् = **(अन्वय स्पष्ट रूप से देखा जाता है)**, विशेषात् = **(विशेष की अपेक्षा से)**, व्येति = **(नष्ट होती है)**, उदेति = **(उत्पन्न होती है)**, सह एकत्र = **(एक साथ)**, उदयादि सत् = **(उत्पद्, व्यय और ध्रौव्य तीनों एक साथ होते हैं)**

भावार्थ :– हे भगवन्! आपके शासन में वस्तु सामान्य की अपेक्षा से न उत्पन्न होती है, और न नष्ट होती है। यह बात सुस्पष्ट है कि सब पर्यायों में उसका अन्वय पाया जाता है। यह बात सुस्पष्ट है कि सब पर्यायों में उसका अन्वय पाया जाता है। तथा विशेष की अपेक्षा से वस्तु नष्ट और उत्पन्न होती है। एक साथ एक वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का होना सत् है।

कार्योत्पादः क्षयोः हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत्।।५८।।

अन्वय :– कार्योत्पादः = **(कार्य का उत्पाद ही)**, नियमात् = **(नियम से)**, हेतोः क्षयः = **(अपने उपादान कारण का विनाश है)**, लक्षणात् पृथक् = **(उत्पाद और विनाश ये दोनों अपने–अपने लक्षण से भिन्न है)**, जात्यादि अवस्थानात् न तौ = **(जात्यादिक के अवस्थान से नहीं)**, अनपेक्षाः = **(अपेक्षा से रहित उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य)**, खपुष्पवत् = **(आकाश पुष्प की तरह अवस्तु हैं)**।

भावार्थ :– एक हेतु का नियम होने से हेतु के क्षय होने का नाम ही कार्यका उत्पाद है। उत्पाद और विनाश लक्षण की अपेक्षा से पृथक्–पृथक् हैं। और जाति के अवस्थान के कारण उनमें कोई भेद नहीं है। परस्पर निरपेक्ष, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आकाशपुष्प के समान अवस्तु हैं।

घटमौलि–सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।५६।।

अन्वय – घटमौलिसुवर्णार्थी = **(घट, मुकुट और सुवर्ण के अर्थी)** अयंजनः = **(ये व्यक्ति)**, नाशोत्पादस्थितिषु = **(नाश, उत्पाद और स्थिति में)**, सहेतुकं = **(कारण सहित हैं)**, शोक–प्रमोद–माध्यस्थ = **(शोक, प्रमोद और माध्यस्थपने को)**, याति = **(प्राप्त होते हैं)**।

कारिकार्थ :– सुवर्ण के घट का इच्छुक मनुष्य, सुवर्ण के मुकुट का इच्छुक मनुष्य और केवल सुवर्ण का इच्छुक मनुष्य क्रमशः घट के नाश होने पर शोक को, मुकुट के उत्पन्न होने पर हर्ष को और दोनों ही अवस्थाओं में सुवर्ण की स्थिति होने से माध्यस्थभाव को प्राप्त होता है, यह सब सहेतुक होता है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम्।।६०।।

अन्वय – पयोव्रतः = **(दूध खाने के व्रत वाला)** दधि न अत्ति = **(दही नहीं खाता)**, दधिव्रतः = **(दही खाने के व्रत वाला)**, पयः न अत्ति = **(दूध नहीं खाता)**, अगोरसव्रतो = **(अगोरसव्रती)**, उभे न = **(दूध, दही दोनों नहीं खाता)**, तस्मात् = **(इसलिये)**, तत्त्वं = **(तत्त्व, पदार्थ)**, त्रयात्मकम् = **(उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है)**

कारिकार्थ :– जिसके दूध खाने का व्रत है वह दधि नहीं खाता है, जिसके दधि खाने का व्रत है वह दूध नहीं खाता है और गोरस नहीं खाने का व्रत है वह दोनों नही खाता है। इसलिए तत्त्व तीन रूप है।

* इति तृतीय परिच्छेदः *

कार्यकारण नानात्वं गुण गुण्यन्यतापि च।
सामान्य तद्वदन्यत्वं चैकान्तेव यदीष्यते।।६१।।

अन्वयः– कार्यकारणनानात्वं = **(कार्यकारण में सर्वथा भिन्नता)**, गुणगुण्यन्यता अपि च = **(गुण–गुणी में सर्वथा भिन्नता)**, सामान्यतद्वदन्यत्वं च = **(सामान्य और सामान्यवान में भिन्नता)**, एकान्तेन = **(एकान्त से)**, यदि इष्यते = **(यदि मानते हो तो)**।

भावार्थ :–यदि नैयायिक–वैशेषिक कार्य–कारण में, गुण–गुणी में और सामान्य–सामान्यवान में सर्वथा भेद मानते हैं तो (ठीक नहीं है)

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाऽभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वाऽस्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते।।६२।।

अन्वय :– भागाभावात् = **(निरंश होने से)**, एकस्य = **(एक की)**, अनेकवृत्तिः= **(अनेक में वृत्ति)**, न स्यात् = **(नहीं होगी)**, वृतिश्चेत् = **(यदि वृत्ति मान ली जावेगी तो)**, बहूनिषा = **(अनेकता माननी पड़ेगी)**, भागित्वात् वा = **(भाग हो जाने से)**, अस्य एकत्वं न स्यात् = **(इसके एकपना नहीं हो सकता)**, अनार्हते = **(जो अर्हत्मत को नहीं मानते उनके यहाँ पर)**, वृत्तेः = **(वृत्ति को मानने पर)**, दोषः = **(दोष आते हैं)**।

भावार्थ :– एक की अनेकों में वृत्ति नहीं हो सकती है,क्योंकि उसके भाग (अंश) नहीं होते हैं। और यदि एक के अनेक भाग हैं, तो भागवाला होने के कारण वह एक नहीं हो सकता है। इस प्रकार अर्हत्मत से विपरीत अनार्हतमत में अनेक दोष आते हैं।

देशकाल विशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युत सिद्धवत्।
समान देशता न स्यान्मूर्त कारणकार्ययोः।।६३।।

अन्वय :– देशकाल विशेषेऽपि = **(देश और काल की अपेक्षा से भी अवयव अवयवी आदि में भेद मानने पर)**, युत सिद्धवत् = **(पृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह)**, वृत्तिस्यात् = **(वृत्ति होगी)**, मूर्तकारणकार्ययोः = **(मूर्तकारण और कार्य में)**, समान देशता = **(एक देशपना)**, न स्यात् = **(नहीं बनेगा)**।

कारिकार्थ :– देश और काल की अपेक्षा भी उनमें भेद मानना पड़ेगा और तब युत–सिद्ध के समान उनमें भी वृत्ति माननी होगी। मूर्तिक कारण और कार्यमें जो समान देशता देखी जाती है, वह नहीं बन सकेगी।

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः।।६४।।

अन्वय – आश्रयाश्रयिभावात् = **(आश्रय, आश्रयिभाव होने से)** समवायिनां = **(समवायियों के)**, स्वातंत्रयं न इति = **(स्वतंत्रता नहीं है यदि ऐसा वैशेषिक कहें तो)**, समवायिभिः = **(समवायियों के साथ)**, अयुक्तः स सम्बन्ध = **(वह सम्बन्ध अयुक्त है)**, न युक्तः = **(अतः घटित ही नहीं होता)**।

कारिकार्थ :– यदि ऐसा कहा जाय कि समवायियों में आश्रयाश्रयीभाव होने के कारण स्वतंत्रता नहीं है, जिससे देश व काल की अपेक्षा भेद होने पर भी वृत्ति कहना ठीक नहीं है। जो स्वयं असम्बद्ध है वह एक का दूसरे के

साथ सम्बन्ध कैसे करा सकता है?

सामान्यं समवायश्चाऽप्येकैकत्र समाप्तितः।

अन्तरेणाऽऽश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः।।६५।।

अन्वय – सामान्यं च = **(सामान्य जिस प्रकार आश्रय के बिना नहीं रहता है)** समवायः अपि = **(समवाय भी)**, आश्रयमंतरेण = **(आश्रय के बिना)**, न स्यात् = **(नहीं रहते हैं)**, एकैकत्र = **(प्रत्येक पदार्थ में)**, समाप्तितः = **(पूर्णरूप से रहते हैं)**, नाशोत्पादिषु = **(अनित्यादि पदार्थों में)**, कः विधिः = **(सामान्य और समवाय की व्यवस्था कैसे बनेगी)।**

कारिकार्थ :– सामान्य समवाय अपने अपने आश्रयों में पूर्णरूप से रहते हैं और आश्रय के बिना उनका सद्भाव नहीं हो सकता है। तब नष्ट और उत्पन्न होने वाले पदार्थों में उनके रहने की व्यवस्था कैसे बन सकती है।

सर्वथाऽनभिसम्बन्धः सामान्य समवाययोः।

ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि ख–पुष्पवत्।।६६।।

अन्वय – सामान्यसमवाययोः = **(सामान्य और समवाय सम्बन्ध का)** सर्वथा = **(किसी भी प्रकार से)**, अनभिसम्बन्धः = **(सम्बन्ध नहीं है)**, ताभ्यां = **(सामान्य और समवाय के साथ)**, अर्थः = **(पदार्थ)**, न संबद्धः = **(सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होता इसलिए)**, तानि त्रीणि = **(वे तीनों)**, खपुष्पवत् = **(आकाशपुष्प की तरह असत् ठहरते हैं)।**

भावार्थ :– सामान्य और समवाय का परस्पर में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। सामान्य और समवाय के साथ पदार्थ का भी सम्बन्ध नहीं है। अतः सामान्य, समवाय और पदार्थ ये तीनों ही आकाशपुष्प के समान अवस्तु हैं।

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।

असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ।।६७।।

अन्वयः– अणूनां = **(परमाणुओं का)**, अनन्यतैकान्ते = **(अनन्यता का एकान्त मानने पर)**, संघाते अपि = **(समुदाय रूप अवस्था में भी)**, विभागवत् = **(विभक्त पदार्थों की तरह)**, असंहतत्वं स्यात् = **(समुदाय ही नहीं बनेगा)**, भूतचतुष्कं = **(भूतचतुष्टय)**, सा भ्रान्तिः एव = **(भ्रान्तिरूप ही ठहरेगा)।**

भावार्थ :– अनन्यतैकान्त में परमाणुओं का संघात होने पर भी विभाग के

समान अन्यत्व ही रहेगा। और ऐसा होने पर पृथिवी आदि चार भूत भ्रान्त ही होंगे।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्य लिङ्गं हि कारणम्।
उभयाऽभावतस्तत्स्थं गुण – जातीतरच्च न।।६८।।

अन्वय :– कार्यभ्रान्तेः = **(कार्य–भूत चतुष्क की भ्रान्ति से)**, अणुभ्रान्तिः = **(उसके कारण रूप जो अणु हैं उनको भी भ्रान्त मानना पड़ेगा)**, हि = **(क्योंकि)**, कारणं = **(कारण)**, कार्यलिङ्ग = **(कार्य द्वारा जाना जाता है)**, उभयाभावात् गुणजातीत रच्च = **(दोनों के अभाव हो जाने से)**, तत्स्थं = **(उनमें रहने वाले)**, गुण जातीतरच्च = **(गुण, जाति, क्रिया आदि)**, न = **(सिद्ध नहीं होगे)**।

भावार्थ :– कार्य के भ्रान्त होने से अणु भी भ्रान्त होंगे। क्योंकि कार्य के द्वारा कारण का ज्ञान किया जाता है। तथा कार्य और कारण दोनों के अभाव में उनमें रहने वाले गुण, जाति आदि का भी अभाव हो जावेगा।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाऽभावोऽविनाभुवः।
द्वित्व संख्या विरोधश्च संवृत्तिश्चेन्मृषैव सा।।६९।।

अन्वय – एकत्वे = **(कार्य और कारण की सर्वथा एकता स्वीकार करने पर)** अन्यतराभावः = **(उन दोनों में से किसी एक का अभाव हो जायेगा)**, शेषाभावः = **(एक का अभाव होने पर शेष का भी अभाव हो जायेगा)**, अविनाभुवः = **(वह दूसरे के साथ अविनाभावी है)**, द्वित्वसंख्या विरोधश्च= **(यह कार्य है, यह कारण है, इस प्रकार जो द्वित्व संख्या की प्रतीति का भी विरोध होगा)**, चेत् = **(यदि)**, संवृत्तिः = **(कल्पना से मान ली जावे तो)** सा मृषा एव = **(वह कल्पना असत्य ही होती है)**।

कारिकार्थ :–कार्य और कारण को सर्वथा एक मानने पर उनमें से किसी एक का अभाव हो जायेगा। और एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होगी ही। क्योंकि उनका परस्पर में अविनाभाव है। द्वित्व संख्या के मानने में भी विरोध होगा। संवृत्ति के मिथ्या होने से द्वित्वसंख्या को संवृत्तिरूप मानना भी ठीक नही है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।७०।।

अन्वय – स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)** विरोधात् = **(विरोध आने से)**, उभयैकात्म्यं न = **(अन्यता और अनन्यता दोनों सम्भावित नहीं होती)**, अवाच्यतैकान्ते अपि = **(अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी)**, अवाच्यं = **(अवाच्य)**, इति = **(इस प्रकार)**, उक्तिः न युज्यते = **(वचन युक्त नहीं होता)**।

कारिकार्थ :– स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकात्म्य नहीं बन सकता है। और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

द्रव्य पर्याययोरैक्यं तपोरव्यतिरेकतः।
परिणाम विशेषाच्च शक्तिमच्छक्ति भावतः।।७१।।
संज्ञा संख्या विशेषाच्च स्वलक्षण विशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा।।७२।।

अन्वय – द्रव्यपर्याययोः = **(द्रव्य और पर्याय इन दोनों में)** ऐक्यं = **(एकता है)**, तयोः = **(इन दोनों की)**, अव्यतिरेकतः= **(अलग अलग उपलब्धि नहीं होती)**, परिणाम विशेषात् = **(परिणाम के विशेष से)**, शक्तिमच्छक्तिभावतः = **(शक्ति मच्छक्तिभाव से)**, संज्ञा–संख्या विशेषात् = **(संज्ञा तथा संख्या की विशेषता से)**, स्वलक्षण विशेषतः = **(अपने लक्षणों की भिन्नता से)**, प्रयोजनादिभेदात् च = **(और प्रयोजन आदि के भेद से)**, तन्नानात्मं = **(उन दोनों में अनेकता भी है)**, न सर्वथा = **(सब प्रकार से नहीं है)**।

भावार्थ :– द्रव्य और पर्याय में कथंचित् ऐक्य (अभेदपना) है, क्योंकि उन दोनों में अव्यतिरेकपना पाया जाता है। द्रव्य और पर्याय में कथंचित् नानापना भी है, क्योंकि उन दोनों में परिणाम का भेद है, शक्तिमान और शक्तिभाव का भेद है, संज्ञा का भेद है, संख्या का भेद है, स्वलक्षण का भेद है और प्रयोजन का भेद है। यह भेद कथंचित् है सर्वथा नहीं।

* इति चतुर्थ परिच्छेदः *

यद्यापेक्षिक सिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिक सिद्धौ च न सामान्यविशेषता ।।७३।।

अन्वयः— यदि = **(यदि धर्म और धर्मी की सिद्धि)**, आपेक्षिकसिद्धिः स्यात् = **(सर्वथा अपेक्षाकृत ही मानी जाये तो)**, द्वयं न व्यतिष्ठते = **(दोनों की व्यवस्था नहीं बन सकती है)**, अनापेक्षिकसिद्धौ च = **(और सर्वथा अनापेक्षिक सिद्धि मानने पर)**, सामान्यविशेषता न = **(सामान्य और विशेष भाव नहीं बन सकता)**।

भावार्थ :— यदि पदार्थों की सिद्धि आपेक्षिक होती है तो दोनों की सिद्धि नहीं हो सकती है। और आपेक्षिक सिद्धि मानने पर उनमें सामान्य विशेष भाव नहीं बन सकता है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।७४।।

अन्वय :— स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)**, विरोधात् = **(विरोध होने से)**, उभयैकात्म्यं न = **(अपेक्षा एवं अनपेक्षा का उभय एकान्त बनता नहीं है)**, अवाच्यतैकान्ते= **(अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर)**, अवाच्यं इति उक्तिः = **(अवाच्य है यह उक्ति भी)**, न युज्यते = **(घटित नहीं होती है)**।

कारिकार्थ :—स्याद्वाद, न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाॅ विरोध आने के कारण उभय का एकान्त भी नहीं बन सकता है और अवाच्यतैकान्त पक्ष में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नही किया जा सकता है।

धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्ध्यत्यन्योऽन्य वीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारक ज्ञापकाङ्गवत्।।७५।।

अन्वय — धर्मधर्म्यविनाभावः = **(धर्म और धर्मी का अविनाभाव)** अन्योन्यवीक्षया= **(परस्पर की अपेक्षा से)**, सिद्ध्यति = **(सिद्ध होता है)**, न स्वरूपम् = **(इनका स्वरूप नहीं)**, कारकज्ञापकांगवत् = **(कारक और ज्ञपक के अंगों की तरह)**, एतत् हि स्वतो = **(यह स्वयं सिद्ध होता है)**।

कारिकार्थ :— धर्म और धर्मी का अविनाभाव ही परस्पर की अपेक्षा से सिद्ध होता है, उनका स्वरूप नहीं, स्वरूप तो कारक और ज्ञापक के अंगों की तरह स्वतः सिद्ध होता है।

* इति पंचम परिच्छेदः *

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः।
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थ मतान्यपि।।७६।।

अन्वय – हेतुतः = **(हेतु से)** सर्वं सिद्धं = **(सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं)**, चेत् = **(यदि ऐसा एकान्त माना जाये तो)**, प्रत्यक्षादि गति न = **(प्रत्यक्षादि प्रमाण से किसी भी तत्त्व की सिद्धि नहीं होगी)**, आगमात् = **(आगम से ही)**, सर्वं सिद्धं = **(सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं)**, चेत् = **(यदि ऐसा होता एकान्त स्वीकार किया जावे तो)**, विरूद्धार्थमतानि अपिं = **(परस्पर विरूद्ध अर्थ का कथन करने वाले मत भी सिद्ध हो जायेंगे)**।

कारिकार्थ :– यदि हेतु से सब पदार्थों की सिद्धि होती है, तो प्रत्यक्ष आदि से पदार्थों का ज्ञान नहीं होना चाहिए। और यदि आगम से सब पदार्थों की सिद्धि होती है, तो परस्पर विरूद्ध अर्थ के प्रतिपादक मत भी सिद्ध हो जायेगे।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।७७।।

अन्वय – स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)** विरोधात् = **(विरोध आने से)**, उभयैकात्म्यं = **(उभय अर्थात् हेतुवाद एवं आगमवाद)**, न = **(नहीं बनता है)**, अवाच्यतैकान्ते= **(अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर)**, अवाच्यमिति = **(अवाच्य है इस प्रकार)** उक्तिः अपि = **(उक्ति भी)**, न युज्यते = **(बनती नहीं है)**।

भावार्थ :– स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त नहीं बन सकता है। और अवाच्यतैकान्त में भी 'अवाच्य' शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतु–साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यामागम साधितम्।।७८।।

अन्वयः– वक्तरि अनाप्ते = **(वक्ता के आप्त न होने पर)**, हेतोः = **(हेतु के द्वारा)**, यत साध्यं = **(जो साध्य होता है)**, तत् हेतुसाधितम् = **(वह हेतु साधित कहलाता है)**, आप्ते वक्तरि = **(वक्ता के आप्त होने पर)**, तद्वाकयात् = **(उसके वाक्य से जो)** साध्यं = **(साध्य होता है)**, आगम साधितम् = **(वह आगम साधित कहलाता है)**।

भावार्थ :– वक्ता के अनाप्त होने पर जो हेतु से सिद्ध किया जाता है वह हेतु साधित है। और वक्ता के आप्त होने पर जो उसके वचनों से सिद्ध होता है वह आगमसाधित कहा जाता है।

* इति षष्ठ परिच्छेदः *

अन्तरंगार्थतैकान्ते बुद्धि वाक्यं मृषाऽखिलम्।
प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणादृते कथं।।७६।।

अन्वय :– अन्तरंगार्थतैकान्ते = **(एकान्त से अन्तरंगरूप पदार्थ अर्थात् स्वसंविति रूप ज्ञान को स्वीकार करने पर)**, अखिलं = **(सम्पूर्ण)**, बुद्धिवाक्यं = **(बुद्धि रूप वाक्य)**, मृषा = **(असत्य ठहरते हैं)**, अतः प्रमाणाभासमेव = **(इसलिए इन वाक्यों में प्रमाणभासता ही आती है)**, तत् = **(वह प्रमाणाभासता)**।

भावार्थ :– एकान्त से अन्तरङ्ग पदार्थ की सत्ता को स्वीकार किया जाये तो सब बुद्धि और वाक्य मिथ्या हो जावेंगे। और मिथ्या होने से दे प्रमाणाभास ही होंगे। किन्तु प्रमाण के बिना प्रमाणाभास कैसे बन सकता है।

साध्यसाधन विज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्ति मात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञा हेतु दोषतः।।८०।।

अन्वय – साध्यसाधन विज्ञप्तेः = **(साध्य साधन की विज्ञप्ति को)** यदि विज्ञप्तिमात्रता = **(यदि विज्ञान मात्र ही स्वीकृत की जावे तो)**, प्रतिज्ञाहेतुदोषतः = **(प्रतिज्ञा एवं हेत के दोष से)**, न साध्यं = **(साध्य नहीं बन सकता)**, न च हेतुः = **(और हेतु भी नहीं बन सकता)**, च = **(और च शब्द से दृष्टान्त भी नहीं बन सकता)**।

कारिकार्थ :– साध्य और साधन के ज्ञान को यदि विज्ञानमात्र ही माना जाय तो प्रतिज्ञादोष और हेतुदोष के कारण न कोई साध्य बन सकता है और न हेतु।

बहिरंगार्थतैकान्ते प्रमाणाभास निह्नवात्।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम्।।८१।।

अन्वय – बहिरंगार्थतैकान्ते = **(बहिरंगरूप पदार्थ घट, पट आदि ही एकान्त से वास्तविक हैं)** प्रमाणाभास निह्नवात्= **(प्रमाणाभास का लोप होने से)**, सर्वेषां विरुद्धर्थाभिधायिनाम = **(समस्त विरुद्धअर्थ का कथन**

करने वालों के यहाँ), कार्यसिद्धिः = **(विरूद्धकार्य भी सिद्ध हो जावेंगे)**।
कारिकार्थ :— केवल बहिरंग अर्थ के सद्भाव को ही एकान्त से मानने पर प्रमाणाभास का निह्नव हो जाने से विरूद्धअर्थ का प्रतिपादन करने वाले सब लोगों के कार्य की सिद्धि हो जावेगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिवाच्यमिति युज्यते।।८२।।

अन्वय — स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)** विरोधात् = **(विरोध आने से)**, उभयैकात्म्यं न = **(उभय अर्थात् अन्तरंगार्थ एवं बहिरंगार्थ का एकान्त बनता नहीं है)**, अवाच्यतैकान्ते = **(अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर)** अवाच्यम् इति उक्तिः = **(अवाच्य है इस प्रकार का कथन)**, अपि = **(भी)** न युज्यते = **(युक्त नहीं होता है)**।
कारिकार्थ :— स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त नहीं बन सकता है। और अवाच्यतैकान्त मानने में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभास निह्नवः।
बहिःप्रमेयाऽपेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ।।८३।।

अन्वयः— ते = **(हे वीरनाथ! आपके शासन में)**, भावप्रमेयापेक्षायां = **(भाव रूप प्रमेय की अपेक्षा में)**, प्रमाणाभासनिह्नवः = **(प्रमाणाभास का लोप बन जाता है)**, बहिःप्रमेयापेक्षायां = **(बहिरंग प्रमेय की अपेक्षा की जाती है तो)**, प्रमाणं = **(प्रमाणता)**, तन्निभं च = **(प्रमाणाभासता बन जाती है)**।
भावार्थ :— हे भगवन्! आपके मत में भाव (ज्ञान) को प्रमेय मानने की अपेक्षा से कोई ज्ञान प्रमाणाभास नहीं है। और बाह्य अर्थ को प्रमेय मानने की अपेक्षा से ज्ञान प्रमाण और प्रमाणाभास दोनों होता है।

जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्धेतु शब्दवत्।
मायादि भ्रान्ति संज्ञाश्च मायाद्यैः स्वैः प्रमोक्तिवत्।।८४।।

अन्वय :— संज्ञात्वात् = **(संज्ञा होने से)**, हेतुशब्दवत् = **(हेतु शब्द की तरह)**, जीवशब्दः = **(जीव शब्द)**, सबाह्यार्थः = **(बाह्य अर्थ से युक्त है)**, प्रमोक्तिवत् = **(प्रमा शब्द की तरह)**, मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च = **(माया आदि**

भ्रान्ति शब्द), स्वैः मायाद्यैः = **(अपने मायादि अर्थ से युक्त होते हैं)।**

भावार्थ :– जीवशब्द संज्ञा शब्द से हेतु शब्द की तरह बाह्य अर्थ सहित है। जिस प्रकार प्रमा शब्द का बाह्य अर्थ पाया जाता है, उसी प्रकार माया आदि भ्रान्ति की संज्ञाएँ भी अपने भ्रान्तिरूप अर्थ से सहित होती हैं।

बुद्धिशब्दार्थ संज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।

तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः।।८५।।

अन्वय :– तिस्रः बुद्धि शब्दार्थसंज्ञाः = **(ये तीनों बुद्धि, शब्द एवं अर्थ संज्ञाएं)**, बुद्धयादिवाचिकाः तुल्या = **(बुद्धि, शब्द और अर्थ की वाचक समान हैं)**, तत्प्रतिबिम्बकाः = **(इन संज्ञाओं के प्रतिबिम्बक)**, बुद्धयादिबोधाश्च तुल्या = **(बुद्धि, शब्द एवं अर्थरूप बोध हैं वे भी बुद्धि, शब्द एवं अर्थ को जानने वाले होने से समान हैं)।**

कारिकार्थ :– बुद्धिसंज्ञा, शब्द संज्ञा और अर्थसंज्ञा ये तीनों संज्ञाएँ क्रमशः बुद्धि, शब्द और अर्थ की समानरूप से वाचक हैं। और उन संज्ञाओं के प्रतिबिम्ब स्वरूप बुद्धि आदि का बोध भी समानरूप से होता है।

वक्तृ श्रोतृ प्रमातृणां बोध वाक्य प्रमाः पृथक्।

भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्याऽर्थौ तादृशेतरौ।।८६।।

अन्वय – वक्तृश्रोतृप्रमातृणां = **(वक्ता, श्रोता और प्रमाता के)**, वाक्यबोध प्रमाः पृथक् = **(वाक्य, बोध और प्रमा ये भिन्न–भिन्न हैं)**, भ्रान्तौ एव = **(वाक्य, बोध एवं प्रमा को भ्रान्ति स्वरूप मानने पर)**, प्रमाभ्रान्तौ = **(प्रमाण में भ्रान्ति रूपता आने पर)**, तादृशेतरौ = **(प्रमाण, अप्रमाण रूप)**, बाह्यार्थौ = **(बाह्य अर्थ इष्टानिष्ट रूप पदार्थ)।**

भावार्थ :– वक्ता, श्रोता और प्रमाता को जो बोध, वाक्य और प्रमा होते हैं वे सब पृथक्–पृथक् व्यवस्थित हैं। प्रमाण के भ्रान्त होने पर अन्तर्ज्ञेय और बहिर्ज्ञेयरूप बाह्य अर्थ भी भ्रान्त ही होंगे।

बुद्धि शब्द प्रमाणत्वं बाह्यार्थे सति नाऽसति।

सत्याऽनृतव्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु।।८७।।

अन्वय – बाह्यार्थेसति = **(बाह्यार्थ के होने पर)** बुद्धिशब्द प्रमाणत्वं = **(बुद्धि एवं शब्द में प्रमाणता आती है)**, असति न = **(नहीं होने पर नहीं)**, एवं = **(इसी प्रकार)** अर्थाप्त्यनाप्तिषु = **(अर्थ की प्राप्ति और अप्राप्ति के निमित्त को लेकर)**,

सत्यानृतव्यवस्था युज्यते = **(सत्य और असत्य की व्यवस्था बनती है)।**

कारिकार्थ :– बुद्धि और शब्द में प्रमाणता बाह्य अर्थ के होने पर होती है, बाह्य अर्थ के अभाव में नही। अर्थ की प्राप्ति होने पर सत्य की व्यवस्था और प्राप्त न होने पर असत्य की व्यवस्था की जाती है।

* इति सप्तम् परिच्छेदः *

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ।।८८।।

अन्वयः– दैवादेव = **(देव अर्थात् भाग्य से ही)**, अर्थसिद्धिः चेत् = **(अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा एकान्त स्वीकार करने पर)**, पौरुषतः = **(पुरुषार्थ से)**, दैव = **(भाग्य)**, कथं = **(कैसे होगा)**, दैवतः चेत् = **(यदि दैव से दैव की सिद्धि मानी जाय तो)**, अनिर्मोक्षः = **(मोक्ष के अभाव का प्रसंग आयेगा)**, पौरुषं निष्फलं भवेत् = **(पुरुषार्थ भी निष्फल हो जावेगा)।**

भावार्थ :– यदि दैव से ही अर्थ की सिद्धि होती है, तो पुरुषार्थ से दैव की सिद्धि कैसे होगी। और दैव से ही दैव की सिद्धि मानने पर कभी भी मोक्ष नहीं होगा। तब मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना निष्फल ही होगा।

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्व–प्राणिषु पौरुषम्।।८९।।

अन्वय :– चेत् = **(यदि)**, पौरुषात् एव सिद्धिः = **(पुरुषार्थ से ही अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा माना जाय तो)**, दैवतः पौरुषं कथं = **(दैव से जो पुरुषार्थ की सिद्धि होती हुई दिखाई देती है, वह कैसे होगी)**, पौरुषात् चेत् = **(यदि पौरुष से ही पुरुषार्थ की सिद्धि मानी जाय तो)**, सर्वप्राणिषु पौरुषं = **(सर्वप्राणिओं में पुरुषार्थ)**, अमोघं स्यात् = **(सफल होने का प्रसंग प्राप्त होगा)।**

भावार्थ :– यदि पौरुष से ही अर्थ की सिद्धि होती है, तो दैव से पौरुष की सिद्धि कैसे होगी। और पौरुष से ही पौरुष की सिद्धि मानने पर सब प्राणियों के पुरुषार्थ को सफल होना चाहिए।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।६०।।

अन्वय :– स्याद्वादन्यायविद्विषां = **(स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ)**, विरोधात् = **(विरोध आने से)**, उभयैकात्म्यं न = **(दैव और पौरुष के निरपेक्षता रूप उभय एकान्त भी नहीं बनता)**, अवाच्यतैकान्ते = **(अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर)**, अवाच्यं = **(अवाच्य)**, इत्यपि = **(इस प्रकार भी)**, उक्तिः न युज्यते = **(कथन भी नहीं बन सकता)**।

भावार्थ :– स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकात्म्य नहीं बनता है। और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

अबुद्धिपूर्वाऽपेक्षायामिष्टाऽनिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षामिष्टाऽनिष्टं स्वपौरुषात्।।६१।।

अन्वय – अबुद्धिपूर्वापेक्षायां = **(अबुद्धि पूर्वक हुए कार्य की अपेक्षा में)** इष्टानिष्टं = **(इष्टानिष्ट कार्य)**, स्वदैवतः = **(अपने दैव से हुए हैं ऐसा माना जाता है)**, बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायां = **(बुद्धिपूर्वक जो कार्य किये जाते हैं इस अपेक्षा में)**, इष्टानिष्टं = **(इष्ट अनिष्ट जो कार्य होते हैं)**, स्वपौरुषात् = **(अपने पुरुषार्थ से हुए हैं ऐसा माना जाता है)**।

कारिकार्थ :– किसी को अबुद्धिपूर्वक जो इष्ट और अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है, वह अपने दैव से होती है। और बुद्धिपूर्वक जो इष्ट और अनिष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है वह अपने पौरुष से होती है।

* इति अष्टमः परिच्छेदः *

पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाऽकषायौ च अध्येयातां निमित्ततः।।६२।।

अन्वय – परे = **(दूसरे प्राणी में)** दुःखात् = **(दुःख उत्पन्न करने से)**, यदि = **(यदि)**, ध्रुवं = **(एकान्त से)**, पापं = **(पाप का बंध)**, सुखतः = **(सुख उत्पन्न करने से)** पुण्यं = **(पुण्य का बन्ध माना जाय तो)** अचेतन = **(अचेतन पदार्थ)**, अकषायौ = **(कषाय रहित वीतराग के भी)** निमित्ततः =

(निमित्त होने से), बध्येयातां = (बंध मानने का प्रसंग प्राप्त होगा)।
कारिकार्थ :– यदि दूसरों को दुःख देने से पाप का बंध और सुख देने से पुण्य का बंध होता है, तो दूसरों के सुख और दुख में निमित्त होने से अचेतन पदार्थ और कषाय से रहित जीवों को भी कर्म बंध होना चाहिए।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युंज्यान्निमित्ततः।।९३।।

अन्वय – स्वतः = (अपने आप में) दुःखात् = (दुःख उत्पन्न करने से), ध्रुवं = (एकान्त से), पुण्यं = (पुण्य का बंध), सुखतः च = (और सुख उत्पन्न करने से) पापं = (पाप का बन्ध माना जाय तो), निमित्ततः = (पुण्य, पाप के निमित्त होने से), वीतरागः = (वीतराग), विद्वान् मुनिः = (विद्वान् मुनिजन), ताभ्यां = (पुण्य, पाप दोनों से), युञ्ज्यात् = (बंधे हुए माना जाना चाहिए)।
भावार्थ :– यदि अपने को दुख देने से पुण्य का बंध और सुख देने से पाप का बंध होता है, तो वीतराग और विद्वान मुनि को भी कर्मबंध होना चाहिए, क्योंकि वे भी अपने सुख और दुख में निमित्त होते हैं।

निरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।९४।।

अन्वय :– स्याद्वादन्यायविद्विषाम् = (स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ), विरोधात् = (विरोध होने से), उभयैकात्म्यं न = (उभय का एकान्त भी नहीं बनता), अवाच्यतैकान्ते = (अवाच्यता के एकान्त में), अवाच्यमिति = (अवाच्य है इस प्रकार), अपि = (भी), उक्तिः = (कथन) न युज्यते = (युक्त नहीं होता)।
भावार्थ :– स्याद्वाद, न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभय का एकान्त नहीं बन सकता है। और अवाच्यतैकान्त में भी अवाच्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखाऽसुखम्।
पुण्य पापास्रवो युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवाऽर्हतः।।९५।।

अन्वय :– चेत् = (यदि), स्वपरस्थं =(अपने और दूसरे में स्थित), विरोधात् = (विरोध आने से), सुखासुखम् = (सुख दुःख), विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं =

(विशुद्धि और संक्लेश के अंग हैं तो), पुण्यपापास्रवो = (पुण्य, पाप का आस्रव), युक्तो = (युक्त है), न चेत् = (यदि नहीं हैं तो), अर्हतः तव = (हे अर्हन्त आपके मत में), व्यर्थः = (निष्फल हैं)।

भावार्थ :– यदि अपने और दूसरों में होने वाला सुख, दुःख यदि विशुद्धि का अंग है, तो पुण्य का आश्रव होता है, और यदि संक्लेश का अंग है, तो पाप का आश्रव होता है। हे भगवन्! आपके मत में अपने और दूसरे में स्थित सुख और दुःख विशुद्धि और संक्लेश के कारण नहीं है, तो पुण्य और पाप का आश्रव व्यर्थ है।

❋ इति नवम् परिच्छेद ❋

अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयाऽनत्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा।।९६।।

अन्वय – चेत् = (यदि) अज्ञानात् = (अज्ञान से), बंधः = (बंध होता है), ध्रुवः = (एकान्त से), ज्ञेयानंत्यात् = (ज्ञेय पदार्थ अनंत होने से), न केवली = (कोई सर्वज्ञ नहीं बन सकता है), ज्ञानस्तोकात् = (अल्पज्ञान से), विमोक्षः चेत् = (मोक्ष होता है ऐसा स्वीकार किया जाय तो), बहुतः अज्ञानात् = (बहुत से अज्ञान से) अन्यथा = (मुक्ति की प्राप्ति न होकर बंध ही प्राप्त होगा)।

कारिकार्थ :– यदि अज्ञान से नियम से बंध होता है, तो ज्ञेय पदार्थ अनंत होने से कोई भी केवली नहीं हो सकता है यदि अल्प ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, तो बहुत अज्ञान से बंध की प्राप्ति भी होगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नाऽवाच्यमिति युज्यते।।९७।।

अन्वय :– स्याद्वादन्यायविद्विषाम् = (स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ), विरोधात् = (विरोध होने से), उभयैकात्म्यं न = (उभय का एकान्त भी नहीं बनता), अवाच्यतैकान्ते = (अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर), अवाच्यम् = (अवक्तव्य), इत्यपि = (इस प्रकार भी), उक्तिः न युज्यते = (कथन घटित नहीं हो सकता है)।

भावार्थ :– स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ विरोध आने के कारण उभयैकान्त भी नहीं बन सकता है। अवाच्यता के एकान्त को भी अंगीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अवाच्यैकान्त में अवाच्य यह शब्द भी

प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है।

अज्ञानान्मोहिनो बंधो नाऽज्ञानाद्वीत मोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा।।९८।।

अन्वय – मोहिनः = **(मोह युक्त जीव के)** अज्ञानात् = **(अज्ञान से)**, बन्धः = **(कर्म बन्ध होता है)**, वीतमोहतः = **(मोह रहितके)**, अज्ञानात् न = **(अज्ञान से कर्म बन्ध नहीं होता है)** अमोहात् = **(मोह रहित)**, ज्ञानस्तोकात् = **(अल्प ज्ञान से)**, मोक्षः स्यात् = **(मुक्ति प्राप्त होती है)**, मोहिनः = **(मोही जीव के)**, ज्ञान स्तोकात् = **(अल्पज्ञान से)**, अन्यथा = **(मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती)**।

भावार्थ :– मोह सहित अज्ञान से बन्ध होता है और मोह रहित अज्ञान से बन्ध नहीं होता है। इसी प्रकार मोह रहित अज्ञान से बन्ध नहीं होता है। इसी प्रकार मोह रहित अल्पज्ञान से मोक्ष होता है, किन्तु मोह सहित अल्पज्ञान से मोक्ष नहीं होता है।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धाऽनुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धितः।।९९।।

अन्वय :– कर्मबन्धानुरूपतः = **(कर्म बन्ध के अनुसार)**, कामादिप्रभवः = **(कामादि के उत्पाद रूप)**, चित्रः = **(विविध प्रकार का भाव संसार)**, तच्च कर्म = **(और वह कर्म)**, स्वहेतुभ्यः = **(अपने–अपने कारणों से होता है)**, ते जीवाः = **(वे जीव)**, शुद्धय शुद्धितः = **(शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं)**।

भावार्थ :– इच्छा और नाना प्रकार के कार्यों की उत्पत्ति कर्मबन्ध के अनुसार होती है। और उस कर्म की उत्पत्ति अपने हेतुओं से होती है। जिन्हें कर्मबन्ध होता है वे जीव शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

शुद्धियशुद्धी पुनः शक्ति ते पाक्याऽपाक्य शक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः।।१००।।

अन्वय :– पाक्यापाक्यशक्तिवत् = **(पाक्य एवं अपाक्य शक्ति की तरह)**, पुनः ते शुद्धयशुद्धी शक्ति = **(वे शुद्धि और अशुद्धि की शक्ति दो प्रकार की होती हैं)**, तयोः व्यक्ती = **(उन दोनों की अभिव्यक्ति)**, साद्यनादी = **(सादि और अनादि है)**, स्वभावः = **(वस्तु का यह स्वभाव)**, अतर्कगोचरः = **(तर्क**

का विषय नहीं है)।

भावार्थ :- पाक्य और अपाक्य शक्ति की तरह शुद्धि और अशुद्धि ये दो शक्तियाँ हैं। शुद्धि की व्यक्ति सादि और अशुद्धि की व्यक्ति अनादि है। क्योंकि स्वभाव तर्क का विषय नहीं होता है।

तत्त्वज्ञानं प्रमाण ते युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वाद नय संस्कृतं।।१०१।।

अन्वय – ते = **(हे नाथ, आपके मत में)** तत्त्वज्ञानं प्रमाणम् = **(तत्त्वज्ञान प्रमाण है)**, युगपत्सर्वभासनम् = **(एक साथ सब पदार्थों का अवभासन होता है वह अक्रमभावि तत्त्वज्ञान है)**, स्याद्वादनय संस्कृतं = **(स्याद्वाद एवं नय से संस्कारित)**, यत् ज्ञानं = **(जो मति आदि ज्ञान हैं)**, तत् = **(वह)**, क्रमभावि = **(क्रम से होने वाला तत्त्वज्ञान है)**।

कारिकार्थ :- हे भगवन्! आपके मत में तत्त्वज्ञान को प्रमाण कहा है। वह तत्त्वज्ञान अक्रमभावी और क्रमभावी के भेद से दो प्रकार का है। जो एक साथ सम्पूर्ण पदार्थों को जानता है, ऐसा केवलज्ञान अक्रमभावी है। तथा जो क्रम से पदार्थों को जानते हैं, ऐसे मति आदि चार ज्ञान क्रमभावी हैं। *अक्रमभावी ज्ञान स्याद्वाद रूप होता है। किन्तु क्रमभावी ज्ञान स्याद्वाद और नय दोनों रूप होता है।*

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्याऽऽदान हान धीः।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्याऽस्य स्वगोचरे।।१०२।।

अन्वय :- आद्यस्य = **(आदि का ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान का फल)**, उपेक्षा = **(उपेक्षा है)**, शेषस्य = **(शेष अर्थात् मति आदि चार ज्ञानों का फल)**, आदान हान धीःपूर्वा वा = **(ग्रहण करना, त्याग करना और माध्यस्थ भाव रखना)**, वा सर्वस्य अस्य = **(इन सभी ज्ञानों का)**, स्वगोचरे = **(अपने विषय में)**, अज्ञाननाशः = **(अज्ञान का नाश होना यह साक्षात् फल है)**।

भावार्थ :- प्रथम जो केवलज्ञान है, उसका फल उपेक्षा है। अन्य ज्ञानों का फल आदान और हान बुद्धि है। अथवा उपेक्षा भी उनका फल है। वास्तव अपने विषय में अज्ञान का नाश होना सब ज्ञानों का फल है।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि।।१०३।।

अन्वय – हे नाथ! तव = **(आपके)** केवलिनामपि = **(केवलियों के भी मतानुसार)**, स्यात् निपातः = **(स्यात् यह निपात शब्द)**, अर्थयोगित्वात् = **(अर्थ के साथ संबंधित होने से)**, वाक्येषु = **(वाक्यों में)** अनेकान्त द्योती = **(अनेकान्त का द्योतक)**, गम्यं **(गम्य रूप)**, प्रति विशेषणम् = **(अर्थ के प्रति विशेषण माना गया है)**।

भावार्थ :– हे भगवन्! आपके मत में स्यात् शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध होने के कारण 'स्यादस्ति पटः ' इत्यादि वाक्यों में अनेकान्त का द्योतक होता है। और गम्य अर्थ का विशेषण होता है। स्यात् शब्द निपात है, तथा केवलियों और श्रुतकेवलियों को भी अभिमत है।

स्याद्वादः सर्वथैकान्त त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंग नयापेक्षो हेयाऽऽदेय विशेषकः।।१०४।।

अन्वय :– सर्वथैकान्त त्यागात् = **(सर्वथा एकान्त के त्याग से)**, स्याद्वादः= **(स्याद्वाद होता है)**, किंवृतचिद्विधिः = **(कथंचित् इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हैं)**, सप्त भंगनयापेक्षो = **(सप्तभंग और नयों की अपेक्षा वाला है)**, हेयोदेयविशेषकः = **(हेय एवं उपादेय तत्त्व की विशेष व्यवस्था इसी से होती है)**।

भावार्थ :– सर्वथा एकान्त के त्याग से ही स्याद्वाद होता है। कथंचित् इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हैं। सप्तभंग और नयों की यह अपेक्षा वाला एवं हेयोपादेयतत्त्व की विशेष व्यवस्था इसी स्याद्वाद से होती है।

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्व प्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।१०५।।

अन्वय :– सर्वतत्वप्रकाशने = **(सर्वतत्त्वों का जिनसे प्रकाशन होता है ऐसे)**, स्याद्वाद केवलज्ञाने = **(स्याद्वाद और केवलज्ञान में)**, साक्षात् = **(प्रत्यक्ष)**, असाक्षात् च भेदः = **(और परोक्षकृत भेद है)**, अन्यतमं हि = **(इसके अतिरिक्त ज्ञान)**, अवस्तु भवेत् = **(अवस्तुरूप हो)**।

भावार्थ :– सर्वतत्त्वों का जिससे प्रकाशन होता है ऐसे स्याद्वाद और केवलज्ञान हैं। इनमें प्रत्यक्ष और परोक्षकृत भेद हैं। इनसे अतिरिक्त ज्ञान अवस्तु स्वरूप है।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्याद्वाद प्रविभक्ताऽर्थ विशेष व्यञ्जको नयः।।१०६।।

अन्वय – सधर्मणा एव = **(सपक्ष के साथ ही)**, साधस्य साध्यर्म्यात् = **(अपने साध्य के साधर्म्य के साथ)**, अविरोधतः = **(बिना किसी विरोध के)**, स्याद्वाद प्रविभक्तार्थ विशेषव्यंजकः नयः = **(स्याद्वाद द्वारा विषयीकृत अर्थ विशेष का व्यंजक होता है वह नय है)**।

भावार्थ :– सपक्ष के साथ ही अपने साध्य के साधर्म्य से जो बिना किसी विरोध के श्रुतप्रमाण रूप स्याद्वाद द्वारा विषयीकृत अर्थ विशेष का व्यंजक होता है वह नय है।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।१०७।।

अन्वय :– अविभ्राट् भावसंबंधः = **(कथंचित् अविष्वक् भाव संबंध स्वरूप)**, त्रिकालानां = **(त्रिकालवर्ती)**, नयोपनयैकान्तानां = **(नयों और उपनयों के एकान्तों का)**, समुच्चयः = **(समुच्चय है)**, द्रव्यमेक मनेकधा = **(वही द्रव्य है और एक रूप भी तथा अनेक रूप भी है)**।

भावार्थ :– कथंचित् अविष्वक् भाव सम्बन्ध स्वरूप जो त्रिकाल विषयक नयों और उपनयों के एकान्तों का समुच्चय है वही द्रव्य है और वह द्रव्य एक भी है और अनेक भी है।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्।।१०८।।

अन्वय – मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत् = **(यदि मिथ्याभूत एकान्तों का समूह मिथ्या रूप है तो)** मिथ्यैकान्तता नः न = **(वह मिथ्या एकान्तता हमारे यहाँ नहीं है)**, निरपेक्षा नयाः मिथ्या = **(निरपेक्ष नय मिथ्या हैं)** सापेक्षाः = **(सापेक्ष नय)**, वस्तु = **(वस्तु स्वरूप हैं)**, तेऽर्थकृत् = **(वे ही अर्थक्रियाकारी हैं)**।

भावार्थ :– मिथ्याभूत एकान्तों का समुदाय यदि मिथ्या है तो वह मिथ्या एकान्तता हमारे यहाँ नही है। निरपेक्ष नयमिथ्या हैं और सापेक्ष नय वस्तुस्वरूप हैं तथा वे ही अर्थ क्रियाकारी हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथाऽन्यथा च सोऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा।।१०६।।

अन्वय :– सः = **(वह अर्थ तत्त्व)**, तथा अन्यथा च अवश्यं = **(विधि एवं निषेध प्रकार से अवश्य ही समर्थित हुआ है)**, विधिना वारणेन वा वाक्येन = **(विधि अथवा निषेध वाक्यों के द्वारा)**, नियम्यते = **(नियमित किया जाता है)**, अन्यथा = **(इससे भिन्न मान्यता में)**, अविशेष्यत्वं = **(कुछ भी विशेषता नहीं आ सकती)**।

भावार्थ :– अर्थतत्त्व विधि एवं निषेध प्रकार से अवश्य समर्थित हुआ है इसीलिए वह अर्थतत्त्व विधिरूप वाक्य द्वारा अथवा निषेध रूप वाक्य द्वारा नियमित किया जाता है। इससे भिन्न प्रकार की मान्यता में उसमें विशेष्यता नहीं आ सकती है।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषा वाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना।।११०।।

अन्वय :– तदतद्वस्तु = **(तत् और अतत् स्वभाव वाली वस्तु है)**, वाक् = **(वचन)**, तदेवेति अनुशासती = **(विधि स्वरूप का ही प्रतिपादन करता है)**, एषा सत्या न = **(यह सत्य नहीं है)**, मृषावाक्यः = **(मृषा वचनों से)**, तत्त्वार्थदेशना कथं = **(तत्त्वार्थ देशना कैसे हो सकती है)?**

भावार्थ :– तत्–अतत् स्वभाववाली वस्तु है और इसी स्वभाववाली वस्तु का प्रतिपादन वाक्य करता है। जब इस प्रकार की व्यवस्था है तब ऐसा कहना कि वचन विधि स्वरूप का ही प्रतिपादन करता है सर्वथा झूठ है। ऐसे मृषा वचनों से तत्त्वार्थदेशना कैसे हो सकती है?

वाक्स्वभावोऽन्य वागर्थ प्रतिषेध निरङ्कुशः।
आह च स्वार्थ सामान्यं तादृग्वाक्यं खपुष्पवत्।।१११।।

अन्वय :– अन्यवागर्थ प्रतिषेध निरङ्कुशः =**(अन्य वचन के प्रतिपाद्य अर्थ के प्रतिषेध करने में निरङ्कुशः होता हुआ)**, स्वार्थसामान्यं च आह =**(स्वार्थ सामान्य को कहता है)**, वाक्स्वभावो =**(यह वचन का स्वभाव है)**, तादृग् वाच्यं =**(इस प्रकार का वाच्य)**, खपुष्पवत् =**(आकाश पुष्प के समान अवस्तु रूप है)**।

भावार्थ :– अन्य वचन के प्रतिपाद्य अर्थ के प्रतिषेध करने में निरङ्कुश होना और अपने स्वार्थ सामान्य का प्रतिपादन करना यह वचन का स्वभाव है।

केवल निषेधमुख से ही वचन अपने अर्थ का प्रतिपादन करता है सो ऐसा कथन ठीक नहीं है। कारण इस प्रकार का वाच्य खपुष्प के समान असत् माना गया है।

सामान्यवाग् विशेषे चैन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेत विशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः।।११२।।

अन्वय – सामान्यवाग् = **(सामान्यवाक्), विशेषेचेत् = (विशेष का प्रतिपादन करते हैं), न = (ऐंसा मानना ठीक नहीं है), शब्दार्थो = (अन्यापोहरूप शब्दों का जो अर्थ है), मृषा हि सा = (वह मिथ्या है), अभिप्रेतविशेषाप्तेः = (अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन), सत्यलांछनः = (सत्य से चिन्हित), स्यात्कारः = (स्याद्वाद है)।**

भावार्थ :– अस्ति आदि सामान्य वाक्य अन्यापोहरूप विशेष का प्रतिपादन करते हैं, ऐसा मानना ठीक नहीं है। क्योंकि अन्यापोहरूप शब्द का अर्थ नहीं है। अतः अन्यापोह का प्रतिपादन करने वाले वचन मिथ्या हैं। और अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन स्यात्कार है।

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याऽविरोधि यत्।
तथैवाऽऽदेय हेयत्वमिति स्याद्वाद–संस्थितिः।।११३।।

अन्वय :– यत् = **(जो)**, विधेयम् = **(विधेय है, जिसका विधान किया जाता है)**, ईप्सितार्थाङ्गं = **(ईपित्सत अर्थ क्रिया का कारण है)**, प्रतिषेध्य = **(प्रतिषेध्य के साथ)**, अविरोधि = **(अविरोधी है)**, तथैवादेय हेयत्वमिति = **(उसी प्रकार वस्तु का आदेय–हेयपना सिद्ध होता है)**, इति = **(इस प्रकार)**, स्याद्वादसंस्थितिः = **(इस प्रकार स्याद्वाद की समीचीन सिद्धि होती है)।**

भावार्थ :– प्रतिषेध्य का अविरोधी जो विधेय है वह अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का कारण है। विधेय को प्रतिषेध्य का अविरोधी होने के कारण ही वस्तु आदेय और हेय है। इस प्रकार से स्याद्वाद की सम्यक्सिद्धि होती है।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थ विशेष प्रतिपत्तये।।११४।।

अन्वय :– हितम् = **(हित को)**, इच्छताम् = **(चाहने वालों के लिये)**,

सम्यक् = (सच्चा), मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये = (मिथ्या उपदेश में भेद विज्ञान कराने के लिए), इति = (इस प्रकार), इयमाप्तमीमांसा = (यह आप्त मीमांसा), विहिता = (बनाई गई है)।

भावार्थ :– अपने हित को चाहने वालों के लिए सच्चे और मिथ्या उपदेश में भेद विज्ञान कराने के लिए यह आप्त मीमांसा बनायी गयी है।

* समाप्तम् *

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टसहस्री आचार्य विद्यानंद सं० श्री बंशीधर निर्णयसागर प्रेस बम्बई
2. अनेकान्त वर्ष ५ किरण ६,७ तथा १०–११
3. अनेकान्त वर्ष १४ किरण १, ११, १२
4. आप्तपरीक्षा आचार्य विद्यानन्द, सं० दरबारीलाल कोठिया वीर सेवा मंदिर सरसावा, सहारनपुर
5. आप्तमीमांसा भाष्य पं० जुगलकिशोर मुख्तार वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट प्रकाशन
6. आप्तमीमासा का हिन्दी विवेचन प० मूलचन्द शास्त्री प्रकाशन श्री शान्तिवीर दिग. जैन सस्थान, श्री महावीरजी, १६७०
7. आप्तमीमासा का आधुनिक हिन्दी अनुवाद डॉ० रमेशचन्द जैन प्रका अखिल भारतवर्षीय दिग० जैन शास्त्री परिषद
8. आप्तमीमांसा तत्त्वदीपिका व्याख्या प्रो० उदयचन्द जैन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रका० गणेशवर्णी दि० जैन सस्थान वी नि० सं० २५०१
9. गद्य चिन्तामणि वादीभसिह
10. जिनशतक स्वामी समन्तभद्र, अनु. प. पन्नालाल साहित्याचार्य
11. जैन शिलालेख सग्रह स० सग्राहक डॉ विद्यानन्द जोहरापुरकर भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
12. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश क्षु० जिनेन्द्र वर्णी भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी
13. जैन साहित्य का इतिहास नाथूराम प्रेमी
14. तत्त्वार्थसूत्र आचार्य उमास्वामी अनु० पं. फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री प्रका० गणेशवर्णी जैन ग्रन्थमाला
15. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा डॉ नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक अ. भा. दि. जैन वेद्वत् परिषद, सागर

16. न्यायकुमुदचन्द श्री प्रभाचन्द्राचार्य पं० महेन्द्र कुमार शास्त्री प्रकाशक माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला

17. महापुराण, आचार्य जिनसेन

18. युक्त्यनुशासन स्वामी समन्तभद्र सं० आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार

19. रत्नकरण्डश्रावकाचार स्वामी समन्तभद्र सं० मोहनलाल शास्त्री प्र. सरल जैन ग्रन्थ भण्डार जवाहर गंज जबलपुर

20. वसुनन्दी श्रावकाचार आ० वसुनन्दी भारतीय ज्ञानपीठ

21. वृहद्स्वयंभू स्तोत्र स्वामी समन्तभद्र सं पं जुगलकिशोर मुख्तार

22. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद

23. सागार धर्मामृत,पं. आशाधर प्रका. जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय

24. श्रवणवेलगोला का इन्सक्रपशन्स डॉ लेविस राईस

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान बीना
एक परिचय

बुन्देलखण्ड की पावन प्रसूता वसुंधरा बीना (सागर) म.प्र. में २० फरवरी १९९२ को संत शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनि श्री १०८ सरलसागर जी महाराज के पुनीत सानिध्य में बाल ब्र. संदीप जी 'सरल' के भागीरथ प्रयासों से इस संस्थान का शुभारम्भ किया गया है। यह संस्थान जैनागम एवं जैन संस्कृति की अमूल्य धरोहर के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन व प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित है तथा अपने इष्ट उद्देश्यों को मूर्तरूप देने हेतु रचनात्मक कार्यों में जुटा हुआ है। सस्थान के अभ्युदय उत्थान में समस्त आचार्यों एवं मुनिराजों का आशीर्वाद मिल रहा है।

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान के उद्देश्य :-

१ जैन दर्शन/धर्म/संस्कृति/साहित्य विषयक प्राचीन हस्तलिखित प्रकाशित /अप्रकाशित ग्रन्थों/पाण्डुलिपियों का अन्वेषण एकत्रीकरण सूचीकरण एवं वैज्ञानिक तरीके से संरक्षित करना।

२. अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन करवाना।

३. जैन विद्याओं के अध्येताओं व शोधार्थियों को शोध अध्ययन एवं मुनिसंघों के पठन पाठन हेतु जैनागम साहित्य सुलभ कराना व अन्य आवश्यक संसाधन जुटाना।

४. सेवानिवृत्त प्रज्ञापुरुषों, श्रावकों एवं त्यागीवृन्दों के लिए स्वाध्याय/शोधाध्ययन सात्विक चर्या के साथ उन्हें संयमाचरण का मार्ग प्रशस्त करने हेतु अनेकान्त प्रज्ञाश्रम/समाधि साधना केन्द्र के अन्तर्गत समस्त सुविधाओं के संसाधन जुटाना।

संस्थान द्वारा संचालित गतिविधियाँ

१. पाण्डुलिपियों का संग्रहण –

अनेक असुरक्षित स्थलों से प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को "शास्त्रोद्धार शास्त्रसुरक्षा अभियान" के अन्तर्गत संकलन का कार्य द्रुत गति से चल रहा है। १५ प्रान्तों के लगभग ४५० स्थलों से ८००० हस्तलिखित ग्रन्थों का संकलन करके सूचीकरण का कार्य किया जा चुका है। लगभग ५० दुर्लभ ताड़पत्र ग्रन्थों का भी संकलन किया जा चुका है। इन ग्रन्थों का पूर्ण विवरणात्मक परिचय अनेकान्त भवन ग्रन्थरत्नावली १,२,३ के माध्यम से पुस्तकाकार के रूप में संस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

२. पाण्डुलिपियों का कम्प्यूटराईजेशन –

शास्त्र भण्डार के सभी हजारों ग्रन्थों को सूचीबद्ध करना तथा उल्लेखनीय विशिष्ट शास्त्रों की सी. डी. बनाने के कार्य हेतु संस्थान सचेष्ट है, ताकि सभी का एकत्र संकलन होकर संरक्षित हो सके, इनका उपयोग शोधार्थी भी कर सकें।

३. शोध ग्रन्थालय –

इसमें अद्यतन धर्म, सिद्धांत, अध्यात्म, न्याय व्याकरण, पुराण, बाल साहित्य और दार्शनिक विषयों से संबंधित लगभग ८००० से भी अधिक ग्रन्थों का संकलन किया जा चुका है। ग्रन्थालय में लगभग ६० साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक शोध पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती हैं। शोध ग्रन्थालय विशाल दो हालों में व्यवस्थित रूप से स्थापित किया गया है, ग्रन्थराज लगभग ७० अलमारियों में विराजित हैं। इन ग्रन्थों का उपयोग स्थानीय श्रावकों के अलावा शोधार्थियों मुनिसंघों में भी किया जाता है।

४. अनेकान्त दर्पण द्विमासिक पत्रिका प्रकाशन –

अनेकान्त ज्ञानमंदिर की गतिविधियों एवं शोधपरक प्रवृत्तियों को

बढावा देने के उद्देश्य से संस्था द्वारा शोधपत्रिका का प्रकाशन किया जाता है।

५. अतिथि भोजनालय –

शोधसंस्थान में आगत त्यागी व्रतियों, विद्वानों एवं अतिथियों को शुद्ध भोजन उपलब्ध हो, इस दृष्टि से भोजनशाला सुचारू रूप से दानदाताओं के सहयोग से चल रही है।

६. प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन –

शोधसंस्थान द्वारा समाज में धार्मिक एवं नैतिक सदाचरण के प्रचार–प्रसार हेतु प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन स्थानीय एवं अन्य नगरों मे बृहद् स्तर पर किया जाता है। पूजन प्रशिक्षण शिविर एवं प्राकृत भाषा प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से संस्थान की एक अलग पहचान बनती जा रही है।

७. हस्तलिखित ग्रन्थ प्रदर्शनी –

संस्थान द्वारा देश के प्रमुख शहरों मे इस प्रदर्शनी का आयोजन इस उद्देश्य से किया जा चुका है कि युवा पीढी एवं समाज हमारी अमूल्य धरोहर हस्तलिखित ग्रन्थ, ताडपत्र ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कर इसके संरक्षण हेतु आगे आयें।

८. अनेकान्त पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र –

संस्थान ने इस वर्ष ही इस केन्द्र को स्थापित किया है। इसके माध्यम से नष्ट हो रहीं दुर्लभ पाण्डुलिपियों को विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों एवं वैज्ञानिक तरीके से सुरक्षित किया जाता है।

९. विभिन्न स्थानों पर अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना –

भगवान महावीर स्वामी की २६००वीं जन्म जयंती के पावन प्रसंग पर

२६ स्थानों पर अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना करने का उपक्रम संस्थान द्वारा किया जा चुका है। अभी तक १६ स्थानों पर ये वाचनालय प्रारम्भ किये जा चुके हैं।

संस्थान का आगामी रूप

श्रुतधाम के रूप में संस्थान का आगामी स्वरूप श्रुतोपासकों के लिए निकट भविष्य में देखने को मिलेगा। इस दिशा में संस्थान प्रयासरत है। इस वर्ष संस्थान ने अपने आगामी विकास हेतु शहर के निकट ६ एकड़ भूमि क्रय कर ली है, इसी भूमि पर श्रुतधाम के अन्तर्गत संस्थान का विकास निम्न योजनाओं के अन्तर्गत होगा।

१. अनेकान्त प्रज्ञाश्रम/समाधि साधना केन्द्र,

२. आगम अनुयोग श्रुत मंदिर,

३. तीर्थंकर उद्यान, ४. जिनालय, ५. देशना मण्डप,

६. वर्णी संग्रहालय एवं दुर्लभ पाण्डुलिपि प्रदर्शनी कक्ष

संस्थान के प्रकाशन

1. पंच कल्याणक गजरथ समीक्षा, 2. समाधि समीक्षा, 3. त्योहार समीक्षा, 4. चातुर्मास समीक्षा, 5. आचार्य वादिराज रचित प्रमाण निर्णय, 6. अनेकान्त भवन ग्रन्थरत्नावली भाग –1,2,3, 7. प्रारम्भिक प्राकृतक प्रवेशिका, 8. परीक्षामुख प्रश्नोत्तरी, 9. आप्तमीमांसावृत्तिः

आपका सहयोग हमें इस रूप में मिल सकता है

१. शिरोमणी संरक्षक सदस्य – ५१,०००

२. परम संरक्षक सदस्य – १५,०००

उपरोक्त राशि ध्रौव्य फण्ड में रहेगी,

हर प्रकाशन मे सदस्य का नाम रहेगा।

समस्त प्रकाशन भेट स्वरूप प्रदान किये जावेगे।

३. संरक्षक सदस्य – ११,०००

४. जिनवाणी सदस्य – ५,०००

उपरोक्त राशि जिनवाणी प्रकाशन फण्ड में रहेगी। इस राशि से ग्रन्थों का प्रकाशन होगा। अनेकान्त दर्पण के हर अंक में नाम प्रकाशित होगा। सभी प्रकाशित ग्रन्थ भेट स्वरूप प्रदान किये जावेंगे।

५. अतिथि व्यवस्था सदस्य – १५००

इस राशि से भोजनशाला का संचालन होगा।

वर्ष मे एक दिन सदस्य की ओर से आहार दान दिया जावेगा।

अनेकान्त दर्पण भेंट स्वरूप प्रदान किये जावेगें।

६. आजीवन सदस्य – ११००

इस राशि से पत्रिका अनेकान्त दर्पण का प्रकाशन किया जावेगा।

अनेकान्त दर्पण भेट स्वरूप प्रदान किये जावेंगे।

७. अलमारी हेतु – ३०००

ग्रथों के रखरखाव हेतु दातार के नाम से अलमारी रखी जावेगी।

८. एक ग्रंथ का संरक्षण – ५०१

इस राशि से एक ग्रंथ की सुरक्षा की जायेगी।

सहयोग राशि का ड्राफ्ट/चैक अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोधसंस्थान, बीना के नाम भेज सकते है।